आत्म-जागृति ग्रन्थ-माला पुष्प १६.

सुखी कैसे बनें?

राय बहादुर श्री० सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी आनरेरी मजिस्ट्रेट, ब्यावर की ओर से तरुण-राजस्थान, जैन पथ-प्रदर्शक, जैन-मित्र और श्वेताम्बर जैन के ग्राहकों को सादर भेंट।

प्रकाशक—

आत्म-जागृति कार्यालय, जैन गुरुकुल, ब्यावर.

मुद्रक—

दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

संवत् १६८६ वि०   प्रति १२५०

सुखी कैसे बनें ?

जो देश विदेश से पक्का माल नहीं मंगाकर अपने घर में ही उसे तैयार करता है, वह सुखी तथा समृद्धिवान् हो सकता है। हर साल भारत में विदेश से इस प्रकार पक्का माल आता है :—

[१] कपड़ा व सूत-१,१४,४२,२१,०१८), [२] शक्कर-१६,१६,४०,४३०), [३] दवाइयें-२,४०,१४,०००), [४] बिस्कुट-४,४०,४८,६११), [५] भोजन का मसाला-१,१०,६१,१७०), [६] फल तथा तरकारी-१,४३,४२,३२१), [७] शराब-३,४२,६४,८३८), [८] तम्बाकू व सिगरेट-२,४६,१०,६६९), [९] स्टेशनरी, कागज़ व पेन्सिल आदि-४,४८,१२,६५०), [१०] तैल सेन्ट आदि-७,७४,१०,९७०), [११] खिलौने-६२,११,१७८), [१२] बटन-२७,६०,२६०), [१३] फरनीचर-२१,६८,२७४), [१४] चमड़ा-१०,७४,३४०), [१५] चमड़ा कमाने व रंगने का सामान-२,१३,२२,७७२), [१६] साबुन-१,४२,५१,२७८), [१७] मोमबत्तियां-२,२०,१०६), [१८] कांच का सामान-२,४२,८८,२३९), [१९] रेलवे का सामान-५४,७२,८२,२२०), [२०] मोटर और साइकल-६,१९,५९,३५४), [२१] मशीनरी २४,०८,४४,७२४), [२२] लोहे का सामान और औज़ार-११,२४,०७,१६८), [२३] रंग-४,७०,५१,१००)।

इस प्रकार की अधाधुन्ध विदेशी माल की आमद जबतक बन्द न होगी, तब तक हम सुखी नहीं हो सकते।

॥ उन्नति ॥

उन्नति शब्द सबको परमप्रिय है, कारण ऊर्ध्व-गमन, ऊंचे जाना जीव का मूल स्वभाव है; जैसे तुम्बी मिट्टी के लेप से समुद्र के तल में पड़ी रहती है और बन्धन टूटते ही ऊंची आती है, इसी प्रकार जितने अंश में दोष घटते हैं, उतने अंश में यह आत्मा उच्च श्रेणी में प्राप्त होता है।

अपना जीव अनन्त निगोद, असंख्य एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय, नरक, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय के भव की स्थिति को उल्लंघन करके संज्ञी मनुष्य पंचेन्द्रिय होगया है, (बहुत पवित्र होगया है) यदि इस समय थोड़ासा सु-पुरुषार्थ किया जाय, तो निश्चय ही सफल संसार के अपार दुःख से छूट सकते हैं।

हमारा धर्म 'जैन' है और विजय पाना ही हमारा स्वभाव है। सबके प्रथम हमको नीति, न्याय, सत्य और परोपकार के गुण प्राप्त करके धर्म की नींव नैतिक शुद्धि से मजबूत करनी चाहिये। आज उन्नति की इच्छा रखते हुए हम यदि उन्नति के घातक कार्य करें और जानते हुए भी

उसको न छोड़ें, तो ऐसी कायरता (डरपोकपन) कितनी निन्द्य है ? यह बुद्धिमान स्वयं विचार करें।

झूठ, कपट और अनीति का दोष आज भारत की प्रजा पर ज्यादा है, परन्तु सविशेष व्यापारी समाज पर है, इस दोष को बुरा तो सब कोई कहते हैं, परन्तु इस दोष को नष्ट करने वाले हजारों में से दो-चार भी दिखलाई नहीं पड़ते, इन दोषों के मूल कारण अविद्या, दरिद्रता, परतन्त्रता और फिजूल-खर्ची है। अपन जैनी लोग प्रायः ब्योपारी हैं, अपने भाई, सज्जन, मित्र व पुत्रादि झूठ, कपट व ठगाई से बचें, ऐसे उपाय करेंगे तो यह भाव अनुकम्पा है। पापों से बचाना यह भावदया है और शरीरादि के दुःख दूर करना यह द्रव्य दया है। द्रव्य-दया में भाव-दया हो, या न भी हो, परन्तु भाव-दया में द्रव्य-दया निश्चय से होती है।

झूठ-कपट करने का मूल कारण सामाजिक फिजूल-खर्ची है। यदि करियावर मौसर और लग्न प्रसंग का सांसारिक खर्च बन्द करके वही द्रव्य समाज के बालक व कन्याओं के उत्तम शरीर, बुद्धि, सदाचार और आजीविका के साधन की शिक्षा में लगाया जाय, तो अनीति अन्याय घट सकते हैं।

कई मनुष्य कहते हैं कि हमें पेट के लिये भूठ, कपट, ठगाई आदि की जरूरत नहीं है, परन्तु सामाजिक खर्च के अर्थ, ये पाप करने पड़ते हैं। हजारों ऐसे-ऐसे प्रसङ्ग बन चुके हैं, जहां सामाजिक खर्च के कारण १३-१४ वर्ष की बाल कन्याएँ ४०-४५ वर्ष के वय के दादाजी के तुल्य वृद्ध पति से ब्याही गई दृष्टि-गोचर होती हैं। इससे विधवा-वृद्धि, व्यभिचार प्रचार, गर्भपात और भयंकर पाप दिनों दिन बढ़ते जारहे हैं। जिससे समाज पापों से भारी होकर नष्ट होरहा है। कई मनुष्य लग्न करियावर आदि के खर्च से कर्जदार होगये हैं और चिन्ता से शरीर, बुद्धि व आयु का नाश कर रहे हैं।

सामाजिक खर्च से प्रजा निर्धन होगई है और ऐसे हजारों गृहस्थ हैं, जिनकी सम्पत्ति ऐसे खर्च से चली गई है। आज वे अपनी सन्तान को विद्या-कला भी नहीं पढ़ा सकते।

सामाजिक खर्च करने की ताकत सौ में से दो के पास भी पूरी नहीं है और उसका पालन सबको करना पड़ता है, इससे अनीति का अवलम्बन स्वभाविक ही लेना पड़ता है। कहा है कि "आवश्यकता से पीड़ित मनुष्य क्या पाप न करे ?"

जितने धनवान हैं, वे खर्चा कर सकते हैं, परन्तु धन का संग्रह कितने पापों से हुआ है और पुनः कितने पाप बढ़ते हैं, इसका विचार करना उन्हें जरूरी है। तथा उनको देख हजारों गरीब कुटुम्बों को भी खर्च करना पड़ता है, इस दुःख के निमित्त भी धनी बनते हैं और पाप संचय करते हैं।

उन्नति की इच्छा हो तो जो शक्ति फिजूल खर्च होती है, उसे रोक कर अच्छे कामों में लगाना चाहिये।

कोई प्रश्न करे कि हमारे बाप दादे क्या समझदार नहीं थे जिन्होंने इन रिवाजों को चलाया है। उसका सप्रेम यही उत्तर है कि महावीर प्रभु या उनके प्रधान श्रावक आनन्दजी व कामदेवजी ने कहां करियावर किये हैं। उनके भी माता पिता थे और स्वर्गवासी हुए थे।

करियावर की उत्पत्ति—किसी सेठ के पुत्र ने पिता की मृत्यु के रंज से भोजन छोड़ दिया तो चार कुटुम्बियों ने उसके घर पर भोजन की थाली ले सत्याग्रह किया कि आप खाओ तो हम भी खायँगे। इससे सादा भोजन तो शुरू हुआ परन्तु मीठा भोजन वह सेठ का पुत्र खाता नहीं था उसे शुरू कराने के लिये पुनः लापसी आदि बनवा कर थाली आदि पुरुसा कर बैठ गये और मीठा खाना शुरू

कराया। इससे कई लोग पिता भक्ति की प्रशंसा करने लगे, यह देख दूसरों ने भी नकल करना चाहा और चार की जगह दस कुटुम्बी आवें तो ज्यादा अच्छा दिखे और विशेष पितृ भक्ति मालूम पड़े, अतः उसने वैसा किया। तीसरे ने २५ को बुलाया फिर सैकड़ों और अब तो हजारों को बुलाकर रूढ़ि बना डाली। बुद्धिमानों को इस रिवाज का त्याग करना परम धर्म है। कारण मरे के पीछे वैराग्य आवे, त्याग बढ़े कि हलवा, लाडू, घेवर और मालपुए आरोगे जायँ? यह विवेकी पुरुषों की दृष्टि से अनुचित है, निराधारों को भोजन दे पुण्य सम्पादन कराना था उस जगह बराबरी के मालदार पुण्य के पात्र कैसे बन सकते हैं?

प्रिय पाठक! समाज की दशा नीचे के अङ्कों से देख कर कुम्भकर्ण की निद्रा को त्याग करिये।

शिक्षा सम्बन्धी संख्या सौ में से पढ़े हुए—

देश	शिक्षित पुरुष	स्त्री	बालक बालिकाएँ जो अभी पढ़ रहे हैं
इंगलैंड	९३॥	९१॥	२६।
संयुक्त अमेरिका	९५॥	९३	२७॥
डेनमार्क	१००	१००	३५॥

जर्मनी	१००	१००	३६॥
जापान	६८	६६	३८॥
फिलिपाइन	७०॥	६१	
फ्रान्स	६६॥	६४	२८॥
भारत	५।	१॥	३।
बंगाल	६॥	१॥।	

(त्यागभूमि माघ १९८५ में उद्धृत)

आयु व वार्षिक आमदनी प्रति मनुष्य के पीछे—

देश	सन् १९२१	सन् १९२६	आयु
अमेरिका	१११६	३३२८	५५॥
इंगलैंड	६८६	१४५६	५१॥
जर्मनी	६७८	१	४६॥
फ्रान्स	५४६	१२९२	४८॥
इटली	३३३	५४०	४६
भारत	३०	३०	२३॥

(जनवरी १९२८ के मौसयाल नवयुवक से उद्धृत)

नोट—भारत के हरएक मनुष्य की वार्षिक कमाई का औसत ३०) रुपया ही पड़ता है। उसमें से भी ५॥=) गवर्नमेण्ट टैक्सादि के लेलेती है। बाकी वार्षिक आमदनी एक मनुष्य के पीछे २४।≈) आती है।

भारत में विधवाएँ—

एक वर्ष की ४९७, दो वर्ष की ४९४, तीन वर्ष की १२५७, चार वर्ष की १२५७, पांच वर्ष की ६७०७, छः से दश की ८५०३७, ग्यारह से पंद्रह वर्ष की २२३१४७, सोलह से बीस वर्ष की ३९६१७२=कुल दो करोड़ से ज्यादा विधवाएं भारत में हैं।

ऊपर बताई हुई अपनी हालत का खूब ठंडे मगज़ से विचार करें और अंतरात्मा से पूछें कि, क्या इतनी दुःख-मय निर्धन और परतंत्र दशा में अपने को करियावर, विवाह व अन्य खर्च करने चाहियें ?

अब सब खर्च बंद करके, सब शक्तियाँ समाज-सुधार में लगाना ही सच्चे जैन गृहस्थ का धर्म है।

धन का दुरुपयोग।

(लेखक—श्री० पं० भजामिश्रङ्करजी दीक्षित)

भारतवर्ष एक गरीब देश है, यहां के आदमियों की औसत आमदनी सिर्फ छः पैसे प्रति दिन है। इन्हीं छः पैसों में वे धनवान भी शामिल हैं, जिनकी हर महीने लाखों

रुपयों की आमदनी है। अगर धनवानों को छोड़कर आमदनी का औसत लगाया जावे, तो एक आदमी की एक दिन की आमदनी केवल तीन पैसे रह जाती है। दूसरे देशों के मुकाबले में हमारा देश बिलकुल कंगाल ठहरता है। यह हालत होते हुए भी हमारे बहुत से भाई इससे बिलकुल अनजान हैं। इसकी वजह सिर्फ यही है कि हमारे यहां शिक्षा की बड़ी कमी है। जिस देश में सौ में से ५ आदमी पढ़े लिखे हों, और उनमें भी बहुत से विलायती रङ्ग में रँगे हुए तथा देश की हालत से अनजान हों, वहां यह दशा होनी एक साधारण-सी बात है। अगर हमें अच्छी तरह शिक्षा मिले और हम अपनी हालत देख कर काम करना सीखें, तो हमें यह दिन न देखना पड़े। अब सवाल यह है, कि हमें ठीक-ठीक शिक्षा मिले तो कैसे मिले। सरकारी पाठशालाओं में अक्षर-ज्ञान के पश्चात् माईन की हिस्ट्री किंवा शेक्सपियर के नाटक पढ़ाये जाते हैं। देश, जाति, किंवा समाज की ओर ध्यान दिलाने वाली शिक्षा का वहां कोसों तक पता नहीं। यदि उसी शिक्षा के सहारे हम अपनी उन्नति करना चाहें, तो यह बात ठीक उसी ढङ्ग की होगी, जैसे बालू से तेल निकालने की बात।

अब हमें अपने सुधार का केवल एक ही मार्ग दिखाई देता है, और वह यह है कि हम स्वावलम्बी बनें। दूसरों के भरोसे न रहकर जिस दिन हम खुद अपनी सन्तान की शिक्षा का प्रबन्ध कर लेंगे, उसी दिन उन्नति हमारे सामने हाथ जोड़े खड़ी होगी।

अब शिक्षा के लिये धन का सवाल पेश होता है। समाज को उचित है कि वह अपने धन का इस मार्ग में सदुपयोग करे। किन्तु आज हम बिलकुल उल्टा देख रहे हैं। आज हमारे धन का ज्यादा उपयोग मृतक के बाद उसके नाम पर लोगों को खिलाने में होरहा है। इस क्रिया का नाम कहीं नुकता और कहीं करियावर है। किसी आदमी की मौत के बाद धन की यह होली, समाज का यह भयङ्कर-नाटक, मिथ्या नामवरी की यह पैशाचिक-लालसा आज हम लोगों में बड़े ज़ोर-शोर से फैल रही है। घर में धन हो या न हो, चाहे वह ऋणी ही हो, विधवा हो या अनाथ हो, बालक हो चाहे वृद्ध हो, चाहे इसके लिये रहने का घर और भोजन बनाने के बर्तन भी बेच देने पड़ें, किन्तु करियावर करना आवश्यक है। रूढ़ि के अन्धकार से घिरे हुए अधिकांश भाइयों ने, इसे कर्तव्य का एक अंग किंवा समाज की एक आवश्यक रीति मानली

है। किन्तु वे यह नहीं जानते कि कर्तव्य और समाज के विरुद्ध किये जाने वाले इस काम का, कोई शास्त्र, कोई ग्रन्थ या कोई विद्वान् समर्थन नहीं करता। इसकी उत्पत्ति इससे पहले वाले निबन्ध में बतलाई गई है। हमारी अधिकांश रूढ़ियों की उत्पत्ति ठीक इसी प्रकार हुई है। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों यह विधि और जोर पकड़ती गई। साधारण-सी बात रूढ़ि का रूप धारण कर इतनी विकराल होगई है कि आज हमारे भाई हजार दो-हजार ही नहीं, पचास हजार तक रुपये खर्च करके इसे पूरा करते हैं। यदि देखा जाय, तो इस व्यय से देश, समाज या राष्ट्र का कोई लाभ नहीं होता। केवल मिथ्या नामवरी के कारण आज हम अपने धन की होली खेल रहे हैं और जाति देश व धर्म को नष्ट कर रहे हैं।

मृत्यु के पश्चात् नुकता करनेवालों की धारणा है कि हमारे इस अधाधुन्ध खर्च करने से परलोक में मृतात्मा को शान्ति मिलेगी। किन्तु ध्यान रहे कि परलोक में कु-गति या सु-गति अपने-अपने कामों से मिलती है, किसी बढ़िया प्रकार का भोजन, पंचों को करादेने से नहीं। यही धन यदि हम विद्या-प्रचार की ओर लगावें तो हमारे देश, जाति और समाज का कितना अधिक कल्याण हो।

वणिक्-समाज आज भारत का सब से अधिक धनी समाज है। किन्तु शिक्षा में कई समाजों के पश्चात् इसका नम्बर आता है। इसका कारण यही है कि हम लोग मिथ्या नामवरी के इतने भूखे हैं कि अधिक से अधिक द्रव्य नष्ट करके अपनी इस लालसा की तृप्ति करते हैं। अच्छा हो, यदि यह समाज इस रूढ़ि को छोड़कर विद्या-प्रचार की ओर क़दम बढ़ावे। खर्च सदा ऐसा होना चाहिये, जो अधिक से अधिक उपयोगी हो। गाढ़े परिश्रम से पैदा किया हुआ धन एक दिन में फूँक देने से उसका कोई उपयोग हुआ नहीं समझा जावेगा। जो लोग खा जायँगे, उनकी गरीबी एक दिन के खाने से दूर नहीं होगी। इधर खिलाने वाले की तो बहुतसी पूंजी उसी दिन बैठ जावेगी।

यदि आपको यह पसंन्द है कि आपके पिता का नाम अमर रहे, तो अच्छे से अच्छे काम करो, आध्यात्मिक उन्नति करो, जीवमात्र पर दया करो और अपने में अधिक-से-अधिक दृढ़ता उत्पन्न करो। धन का इस प्रकार खर्च करो कि समाज का अज्ञान और गरीबी दूर हो। सैकड़ों व्यक्ति ऐसे हो चुके हैं, जिनने लाखों रुपये खर्च करके करियावर किये हैं। किन्तु आज उनका नाम कौन जानता है? कोई नहीं। केवल कुछ देर प्रशंसा पाने के लिये, थोड़ी

देर के दिखावे के लिये, अपनी गाढ़ी कमाई के धन को इस प्रकार फूंकदेना कदापि उचित नहीं है। इससे आपका या आपके पूर्वजों का नाम नहीं चलसकता। नाम चलना या डूबना आप पर निर्भर है। यदि भगवान् महावीर अपनी आध्यात्मिक उन्नति और अपने पवित्र व्यक्तित्व का परिचय न देते, तो क्या आज आप लोगों को उनके पिता महाराजा सिद्धार्थ या भगवान् की जन्मदात्री श्री त्रिशला देवीजी का नाम मालुम होता? कदापि नहीं। रुपयों की झोली ताप लेने से नामवरी कभी नहीं हो सकती।

सम्पत्ति और राज्य जनता के हैं, किसी विशेष व्यक्ति के नहीं। कुछ आदमी भूखों मरें और कुछ आदमी धन संग्रह कर तिजोरियाँ भरें; यही अन्याय है। इस अन्याय के पश्चात् जब हम उस इकट्ठे किये हुए धन को इस प्रकार नाश करदें, जिससे देश या समाज का कोई लाभ न हो, तो यह महा-अपराध है। यदि उसी धन का हम सदुपयोग करें, तो हमारी जाति, हमारे देश और समाज का बहुत लाभ हो।

अब कुछ बातें करियावर खाने वाले भाइयों से भी। आप लोग लोटा लेकर करियावर खाने तो जरूर चले जाते हैं, किन्तु आपने कभी यह भी सोचने की कृपा की है

कि हम जो लड्डू खाने जा रहे हैं, वे मृतक के पिण्ड-संस्कार के उपलक्ष्य में कराये हुए भोजन के हैं। यदि हमारे खालेने से ही मृतात्मा को शान्ति मिलेगी, तो कहना चाहिये कि यह एक प्रकार का प्रेत-भोज है। यदि हम इसी प्रेत-भोज को खालेते हैं, तो फिर हमारी पवित्रता कहां बाकी रहती है? फिर हम बड़ी-बड़ी डींगें किस बात पर मारते हैं?

भाइयो! मृतक के नाम पर भोजन करना, मृतक के स्त्री-पुत्र तथा घरवालों को दुःख के सागर में डुबोना तो है ही, साथ ही अनेकों विधवाओं और अनाथों के सर्वनाश का कारण भी बनना है। इस प्रथा को निर्मूल कर, यदि हम इसमें खर्च होने वाला करोड़ों रुपया शिक्षा में खर्च करने लगें, तो हमारा समाज बहुत शीघ्र उन्नत-समाजों की श्रेणी में गिने जाने योग्य हो जाय।

सामाजिक नियम वही है, जो समाज के लिये कल्याणकर हो। जिस नियम से समाज का नाश हो रहा हो, वह नियम, नियम नहीं—अन्ध-विश्वास का जाल है। इसे जितना शीघ्र तोड़ा जाय, उतना ही अधिक लाभ है।

इस कुरूढ़ि को तोड़ने से यदि कोई हमारी हँसी करे, तो हमें उसमें शर्माने या घबराने की कोई बात नहीं।

प्रत्येक सुधार बड़े त्याग और आत्म-बलिदान के पश्चात् हुआ करता है। जब रोमन कैथोलिक धर्म के विरुद्ध प्रोटेस्टेण्ट लोगों ने सुधार की आवाज़ उठाई, तो लाखों व्यक्ति केवल सुधार का नाम लेने के अपराध में जीवित ही अग्नि में झोंक दिये गये। लाखों की सम्पत्ति लूट ली गई। किन्तु इतने आत्म-त्याग के पश्चात् सुधारकों की विजय हो ही गई। यहां आप लोगों के सामने ऐसी भयकारी कोई परिस्थिति नहीं है। केवल हँसी होने या सामाजिक नियम टूटने का डर है। किन्तु जिस बात से हमारे समाज का परम-कल्याण हो, उसके लिये यदि थोड़ा त्याग भी करना पड़े, तो सहर्ष करना चाहिये।

सामाजिक नियम वही है, जो समाज के लिये लाभप्रद हो। यह बात हम पहले ही कह चुके हैं। ऐसी दशा में यह प्रथा सामाजिक-नियम की सीमा से बिलकुल बाहर है।

इस गन्दी-रूढ़ि को जब तक हमारा समाज पकड़े रहेगा, तब तक हमारी वास्तविक उन्नति बिलकुल असंभव है। क्या हम आशा करें कि सुधार-प्रेमी सज्जन इस समाज-नाशक पैशाचिक-रूढ़ि का अन्त कर, देश और जाति का कल्याण करेंगे?

—:०:—

जीवन और उसका उपयोग।

(लेखक श्री० पं० दयाकृष्णजी दीक्षित शास्त्री, साहित्याचार्य व काव्यतीर्थ)

संसार महीरुह एक वृक्ष है; उसकी शाखा प्रशाखायें अखिल प्राणी समूह है और फल उन प्राणियों के कर्तव्य-कर्म हैं। आत्मा, सुख, दुःख, कर्मविपाक को उपभोग करता है और तदनुसार सतत आचरण करता हुआ जीवन ढाँचे को उसी रूप में बना लेता है। उसको अन्य किसी भी व्यक्ति विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती और न वह किसी के आधार पर ही कार्य प्रारम्भ करता है। "स्ववीर्य गुप्ता हि मनो प्रसूतिः" आत्मा का अर्थ ही है सतत गमन करना। एकाकी स्वतः कर्म करना और भोगना "आत्मा स्वकर्म विपाकेन फलमश्नुते" आत्मा स्वकृत कर्म ही भोगता है। जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है, अन्य कृत कार्यों का नहीं, तब उसके लिये यह कहना कि अमुक व्यक्ति की स्मृति के लिये हम अमुक धन खर्च करेंगे, सर्वथा अनावश्यक और अयोग्य है। वह मृत व्यक्ति स्व-पुण्य-पाप से ही देवलोक तथा नारकीय कृत्यों को भोगता है। उसकी स्मृति के लिये कई हज़ार रुपयों का फिजूल खर्च करके सहस्रों

प्राणियों को केवल एक दिन बैठा कर जिमादेने से ही उसकी स्मृति कायम मुकाम नहीं रहती, तथा मृत व्यक्ति के पापों का क्षय होकर पुण्यों का उदय नहीं होता। उल्टा जो तत्त्व-दृष्टि से देखें; तो वह सारा खर्च उस मृत-आत्मा को पापों की ओर अग्रसर करता है और अपने जाल-पुञ्ज (कर्मदल) से उस मृत-आत्मा को इतना कसकर बांध लेता है कि जिससे कई एक दुःख-पूर्ण जन्म जन्मान्तर उस बेचारे को धारण करने पड़ते हैं। उस जीवन से केवल मृतात्मा को ही भयंकर दुःखों का अनुभव नहीं करना पड़ता, परन्तु साथ ही उसके कुटुम्बी सज्जन और मित्रों को भी पापों का भार व इस जीवन में अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं।

श्राद्ध की उत्पत्ति और उसका प्रभाव।

हमारी समझ में मृतात्मा का श्राद्ध केवल इसी उद्देश्य को लेकर शुरू हुआ है कि अमुक तिथि पर भाई बन्धुओं के साथ मिल कर स्वर्गवासी के गुणों का कीर्तन किया जावे उसके गुणों का स्मरण होजावे और दोषों से घृणा पैदा होवे। किन्तु समय के प्रभाव से यही श्राद्ध रूढ़ि रूप में पलट गया; और उसने इतना उग्र रूप धारण किया कि जिससे सारा समाज आज उस सर्व-नाशक नियम से

काँप उठा है। यदि देखा जावे, तो इस उग्रता को समाज में पैदा करने वाले हमारे धनी-मानी सेठ साहूकार ही हैं।

धनाढ्य लोग जिस नियम को चलादें, वेचारे गरीब भी तदनुसार उसी रूढ़ि का पालन चुपचाप करते जाते हैं; गरीबी से घबड़ाकर हृदय-ज्वाला से संतप्त होकर मुख से आह निकालना उन वेचारों के लिये समाज में पाप समझा जाता है। घर में बच्चों के लिये अन्न वस्त्रादि भलेही न हों, पर मृतात्मा के लिये कर्ज़ लेकर श्राद्ध या करियावर अवश्य ही होना चाहिये। चाहे स्त्री के आभूषणों को गिरवी रक्खो, चाहे घर बेंचो और चाहे अनीति अन्याय से धन कमाकर लाओ। लेकिन सैकड़ों हज़ारों रुपये खर्च करके उन धनाढ्यों की बनाई हुई कुरीति का अवश्य पालन करो। इस प्रकार गरीब मनुष्य प्राणाधार आजीविका के साधनों को भी बेंचकर अथवा कर्ज़ लेकर रूढ़ियों को पालते हैं और बाद में पेट काट-काट कर उस कर्ज को अदा करते हैं। दिन-रात परिश्रम से कमाना और भर पेट भोजन न करके शोकाग्नि से संतप्त होना क्या मृतात्माओं को गरीबों की आहों से नारकीय दुःख देना नहीं है? ज्ञानियों का फरमान है कि मृत्यु समय अथवा मृत्यु के बाद यदि उसका कोई कुटुम्बी रोता है या श्लेष्म गिराता है तो मरने वाला

मनुष्य मोह से आकुल हो अशुभ ध्यान से अनन्त दुःख-पूर्ण कुगति में चला जाता है।

इसी बात की पुष्टि करते हुए अंग्रेजी में भी एक विद्वान् ने मृत्यु समय कहा है, Don't disturb me please, let me die peacefully अर्थात् कृपा करके मुझे तंग मत करो शान्ति से मरने दो। एवं इस बात से सिद्ध होगया कि मृतात्मा अपने कुटुम्बी जनों के दुःखों को देख कर स्वर्ग में भी दुःखी होता है और उन्हीं दुःखों से उसका ध्रुव अधः पतन होता है। यदि हम इस कुरीति को समूल नष्ट करना चाहें, तो हमें चाहिये कि हम धनी-मानी ही अगुआ बन कर समाज के आगे ऊँची आवाज उठावें, " महाजनो येनगतः स पन्था " जिस मार्ग से बड़े आदमी अग्रसर होते हैं, उसी पथ से अन्य साधारण स्थिति के मानव भी अनुगामी होजाते हैं। यदि देश, समाज तथा बन्धु बान्धवों को ऊंचा उठाना हो, गरीबों को दुःखी देख कर दिल में दया लाना हो और जैन सिद्धान्त के मूल मन्त्र का हृदय में जाप करना हो और धनियों को अपने सिर से यदि इस कलंक को धोना हो, तो धनी-मानी व्यक्तियों को चाहिये कि कटिबद्ध होकर इन कुरीतियों को दूर करने के लिये भगीरथ प्रयत्न करें। यदि वे चाहते हैं कि हम

पितृ-पितामह के नाम को चिरस्मरणीय रखने के लिये करियावर करते हैं, तो हम उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि वे बुद्धि से सोचें कि अमर नाम पाने वाले जगत् के उद्धारक अनेक महा-पुरुषों ने कैसे उत्तम कार्य किये हैं।

अमर नाम और कार्य

संसार में बहु संख्यक व्यक्तियाँ अमर नाम को पागई और आज दिन भी प्रातःकाल में श्रद्धा के साथ उनका स्मरण किया जाता है। उनके विषय में इतिहास साक्षी है, कि उनकी चिरस्थायिनी कीर्ति खिलाने पिलाने (करियावर) से हुई या उनके कार्य से? फिजूल खर्च से क्षणिक कीर्ति होती है, साथ-साथ कई अपवाद भी बोलते हैं। जो लोग कीर्ति को जितनी अधिक रखना चाहते हैं, वे उतना ही त्याग तथा तप करते हैं। कोई-कोई लोग चिरस्मरणीय यशोराशि के लिये बाग, बगीचे, कुआँ, तालाब बनवाते हैं और कोई धर्मशाला तथा मन्दिर बनवाते हैं, किन्तु कुछ दिनों बाद जब यही स्थान हमारे कुकर्म की जगह बन जाते हैं, तो पुण्य की जगह पाप अधिक होता है और लोग टीका करके उलटा बदनाम करने लग जाते हैं। अतः तत्त्वदर्शियों ने भविष्य की समस्त बातों को दृष्टि में रख कर कहा है "सर्वेषामेव दानानां ब्रह्म दानं विशिष्यते"

अर्थात् संसार में जो लोग अपने नाम को सृष्टि में दीर्घकाल तक रखना चाहते हैं, तो सब दानों से बढ़कर विद्या का दान करें। जिस रुपये से कारियावर करते हैं, उसी रुपये से स्कूल, कालेज और पाठशालायें स्थापित कर दें अथवा गरीब सन्तान को छात्रवृत्ति देकर विद्या पढ़ावें अथवा प्राचीन पुस्तकों तथा ज्ञानवर्द्धक अर्वाचीन पुस्तकों को प्रकाशित करें, तो उनका नाम तथा कीर्ति जगत में कायम मुकाम रह सकती है। ऐसे इतिहास में अगणित उदाहरण मौजूद हैं, जिन्होंने विद्या का सर्वोत्तम दान देकर संसार में अमर नाम किया है। अनेक ग्रन्थों के अध्ययन करने पर भी हमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला कि द्रव्य के बल पर किसी की कीर्ति फैली हो। क्या हम आशा करें कि धन के बल पर नामवरी पाने के इच्छुक भाई कर्त्तव्यों के बल पर नामवरी प्राप्त करेंगे?

॥ अहिंसा परमोधर्मः ॥

रेशम व चर्बी के वस्त्र

(सं० श्री० पं० भजामिशंकरजी दीक्षित)

अन्य जीवों की रक्षा करना आपनी रक्षा करना है।

क्या आप यह जानते हैं कि रेशम के वस्त्र रेशम के नहीं—बल्कि जीवों की आँतों के हैं?

कुछ भाइयों का कहना है कि "शास्त्रों में रेशमी-वस्त्रों का उल्लेख है, धर्मस्थान, मन्दिरजी और मरण-क्रिया में इनका उपयोग करना श्रेष्ठ है, ऐसा बड़े लोग कहते आये हैं" सज्जनो! विचारो कि वह जमाना कौनसा था; जब रेशम काम में लाना पाप न था। उस समय रेशम वनस्पतियों से उत्पन्न होता था, आज की तरह कीड़ों की आँतों से नहीं तैयार किया जाता था। यदि उस समय इसी भांति कीड़ों की आँतों से रेशम तैयार किया जाता, तो हमारे धर्म-प्राण पूर्वज इसे पहनने की आज्ञा कदापि न देते। जहां एक कपासिये, बाजरी या गेहूं के दाने का संघट्टा स्पर्श करना भी व्रत-नियम में प्रतिज्ञा-भङ्ग माना है,

यहाँ लाखों कीड़ों का नाश कर निकाले हुए रेशम से बने हुए वस्त्र पहनने की आज्ञा कैसे दी जासकती है ? वनस्पति से आज भी रेशम तैयार किया जा सकता है, किन्तु उसमें खर्च अधिक होता है। आज चालीस-हजार कीड़े मरें, तब एक गज रेशम तैयार होता है। इसी रेशम पर पालिश करने में जो चर्बी लगती है, वह तो अलग ही है। आज का रेशम बेचारे गरीब कीड़ों की आँतें हैं। वे अपने शरीर की रक्षा के लिये इसे मुँह की तरफ से निकाल कर अपने शरीर के चारों ओर लपेट लेते हैं। हम मोह के वश होकर रेशम नहीं—दीन कीड़ों की आँतें खरीदते हैं। रेशमी वस्त्र कितना अ-पवित्र होता है, यह जानना हो, तो रेशम के कारखानों में जाकर देखलें। यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि कर्मों का कर्जा चुकाना पड़ेगा। कोई यह कहकर छुट्टी नहीं पासकता कि "हम कब कीड़े मारने को कहते हैं, लोग अपना पेट भरने के लिये मारते हैं।" किन्तु सोचने की बात यह है कि कसाई भी तो अपने पेट ही के लिये बकरा, गाय और पाड़े को मारता है। यदि कोई मांसाहारी कहे कि "हमें क्या पाप है, हमने तो सीधा मोल लिया है, पाप लगे तो मारने वाले को लगे।" क्या यह कहने वाला आदमी उस पाप से छूट सकता है ? कदापि नहीं।

चोरी का माल खरीदने वाला जिस तरह अपराधी है, उसी तरह पाप द्वारा तैयार की हुई चीज़ का प्रत्येक खरीदार पाप का भागी है।

हाथ में एक कीड़ा लेकर यदि कोई कहे कि तुम इस कीड़े को मार डालो, तो मैं तुम्हें एक लाख रुपया दूंगा; किन्तु इस लाख रुपये की परवा न करके अपने धर्म पर आरूढ़ रहने वाले दयालु मित्रो! केवल अज्ञान के वश होकर, प्रति वर्ष लाखों रुपये का रेशम खरीद कर करोड़ों कीड़ों के प्राण क्यों लेते हो? क्या इससे तुम्हारे धर्म-पालन में बाधा नहीं पहुँचती?

धर्म-बन्धुओ! आओ, आज से प्रतिज्ञा करो कि रेशमी-वस्त्र न तो मोल लेंगे, न बेचेंगे और न अपने काम में लेंगे। यदि आप इस अ-पवित्र पदार्थ से अपना सम्बन्ध तोड़ लेंगे, तो एक महान् पाप से बच जायँगे।

पाप करना सरल है, किन्तु उसका नाश करना बहुत कठिन है। पाप मनुष्य से बड़ी कठिनता से छूटता है, किन्तु इसके छूट जाने पर मनुष्य को अपार आनन्द होता है। अतः उठो और प्रयत्न करो कि विदेशी शकर की भाँति रेशमी-वस्त्र भी सारी जाति में कोई काम में न

लेवें। यदि यह बात तुम्हारी शक्ति के बाहर है,
कम-से-कम तुम खुद ही इस बात की प्रतिज्ञा करो
जीवन भर कभी रेशमी-वस्त्रों का उपयोग न करें
इस भाँति लाखों कीड़ों की जान तो बचेगी ही, साथ ही
अपनी आत्मा की रक्षा भी कर लोगे। "रेशमी-वस्त्र क
जीवों की आँतें हैं" ऐसे बोर्ड दुकान और घर में लगा
धन की बचत के साथ ही साथ पाप से भी बच जाओ

धर्म-क्रिया में रेशमी वस्त्र पहनने की बात पर
ज़रा विचार करो। भला जीवों की आँतें भी पवित्र
सकती हैं? करोड़ों जीवों के रक्त से रँगा हुआ रेशम प
कर धार्मिक-क्रिया करने से पुण्य कैसे हो सकता है? अ
आज तक की भूल का पश्चात्ताप करो और भविष्य
करोड़ों जीवों की हिंसा से बनने वाले रेशम का स
करना भी पाप समझो। तुम अपने हृदय को रेशम
समान नरम बनाओ, कपट, झूठ, कठोरता को छो
जिससे तुम्हारी आत्मा पवित्र हो।

घोर-पाप से बचो—हमारे प्राण भी बचाओ।

हे दया सागरो! ज़रा ध्यान तो दो, धन के म
धर्म का नाश तो होता ही है, साथ ही हम लाखों जी
के प्राण तुम्हारे शौक की पूर्ति के लिये चले जाते ह

एक तुम्हारे पूर्वज मेघरथ राजा थे, जिन्होंने एक जीव की हिंसा करने की अपेक्षा अपने प्राण दे देना श्रेष्ठ समझा था; एक तुम हो, जो केवल बाह्याडम्बर के लिये धर्म और धन नाश करके लाखों प्राणियों के वध का कारण बनते हो।

मैं बहुत कोमल कीड़ा हूं, गर्मी सर्दी से अपने सुकुमार शरीर की रक्षा करने के लिये अपनी आंतें अपने शरीर पर लपेट लेता हूं, किन्तु स्वार्थी मनुष्य उबलते हुए गर्म पानी में हमें जीवित डालकर मार डालते हैं और हमारे शरीर पर से हमारी आंतें जिसे लोग रेशम कहते हैं उतार लेते हैं। स्वार्थपरता का इससे अधिक क्या प्रमाण हो सकता है? यदि आप यह जानते हुए भी रेशम पहनते हैं, तो पहनते रहिये, करोड़ों जीवों की हत्या के कारण बनते रहिये, रुई की मौजूदगी में गरीब कीड़ों की आंतें अपने शरीर में लपेटे फिरिये, किन्तु ध्यान रखिये कि इन सब कर्मों का प्रति-फल भोगना पड़ेगा। क्या हम आशा करें कि आप लोग करोड़ों जीवों के रक्त से रँगा हुआ आंतों का कपड़ा पहनना छोड़ कर, शुद्ध देशी वस्त्र धारण करेंगे?

शरणागत,

दुःखी-कीड़ा

भाइयो! मिल के बने हुए और खासकर विलायती कपड़ों में भी क्या लगता है, इसका आपको पता है ! यदि नहीं, तो खूब ध्यानपूर्वक सुनलो कि उसमें शुद्ध चर्बी लगी होती है। हम लोग अहिंसा का पाठ तो खूब जपते हैं, किन्तु गाय की चर्बी से भीजा हुआ विदेशी-वस्त्र बड़े शौक से पहन लेते हैं। केवल भारत में प्रतिवर्ष ६७५०१० पशुओं को इसलिये मारा जाता है कि उनकी चर्बी मिलों में काम आसके। यदि हम लोग मिलों का कपड़ा पहनना छोड़कर खद्दर पहनना शुरू करदें, तो इतने जीवों का वध निश्चित् ही बन्द होजावे। हम लोग प्रतिवर्ष १ अरब २५ करोड़ रुपये का विदेशी-वस्त्र खरीदते हैं, जिसमें अधिकांश टके केवल चमक-दमक के होते हैं। और चमक-दमक चर्बी से ही लाई जाती है। तो इसका यह मतलब है कि ज्यादा नहीं तो ऊपर-ऊपर के २५ करोड़ रुपये तो जरूर ही चर्बी की कीमत हम लोग देते हैं। क्या यही हमारा धर्म है ? क्या यही हमारी अहिंसा है ? पाप प्रत्यक्ष में किया जावे या कारण बनकर परोक्ष में करवाया जावे, फल अवश्य भोगना पड़ता है। आज भारत में १० करोड़ आदमी दोनों समय भर पेट भोजन नहीं पाते और हम विदेशी कपड़ों में अपना धन नाश करते हैं। यदि हम थोड़ासा त्याग करें और अपने शरीर

को खद्दर का बोझ उठाने का कष्ट दें, तो करोड़ों कीड़ों और लाखों गायों के साथ ही हमारे भूखे मरते हुए भाइयों के भी प्राण बच जायँ।

यदि वास्तव में हमें अहिंसा-व्रत पालन करना है और करोड़ों कीड़ों की तथा लाखों गायों की जान बचानी है, तो हमें आज से ही हाथ की बुनी-कती खादी पहनने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये। इसका और कोई उपाय नहीं है। या तो करोड़ों कीड़ों को उबलवा कर रेशम और लाखों गायें कटवा कर विदेशी मिल का वस्त्र पहनो और अपने धर्म का नाश करो, या खादी पहनकर कीड़ों, गायों और धर्म की रक्षा करो। कहिये, आपको कौनसा मार्ग पसन्द है? हमारा विश्वास है कि आप लाखों कीड़ों और गायों के वध द्वारा तैयार किया हुआ रेशम और विदेशी वस्त्र छोड़कर हाथ का कता और हाथ का बुना हुआ खद्दर ही स्वीकार करेंगे। ये चर्बी लगाने वाली मिलें हमारे धर्म को तो मिट्टी में मिलाती ही हैं, साथ ही मैञ्चेस्टरी सूत खरीद कर हमारे धन को विदेशियों के हवाले कर देती हैं।

विलायत का बना हुआ कपड़ा, इन सब की अपेक्षा अधिक भयंकर है। भारत में कुछ मिलें ऐसी भी हैं, जो

चबें भी उन्हीं चीजों को खरीदें और देश का व्यापार नष्ट होकर यूरोप-अमेरिका का चमके। इन्हीं सब कारणों से भारतीय-व्यवसाय नष्ट-प्रायः होगया है। हमने अपना धर्म नष्ट किया, धन विदेशियों के हवाले कर दिया, साथ ही अपने देशाभिमान को भी विदेशियों ही के पैरों तले रौंदवा डाला। आज एक भारतीय, मैन्चेस्टर का श्वेत धोती-जोड़ा पहन कर, लंकाशायर के बने कपड़े का कोट-पैंपट डाटकर या चमड़े से बनी हुई फैल्ट-कैप लगाकर गर्व करता है। अन्य लोगों से अपने आपको बड़ा समझता है। किन्तु यह नहीं जानता कि मुझे इसके लिये लज्जा आनी चाहिये। हमारे धर्म, धन, सभ्यता और आत्माभिमान के ऊपर आज गायों का रक्त और चर्बी पोती हुई है। हम अहिंसावादी होकर, पाप करने में सहायता पहुँचाते हैं, यह कितनी लज्जा-जनक बात है।

धर्म-शास्त्रों में लिखा है—पाप करो मत, करने वाले को सहायता मत दो—और जो पाप करे, उसकी प्रशंसा भी मत करो। यदि इस दृष्टि से देखा जावे, तो विलायती वस्त्र धारण करने वालों को गायों के वध का पाप जरूर लगेगा। क्योंकि चर्बी से पालिश किये हुए कपड़े की तारीफ करना, मानों पाप करने वाले की तारीफ करना

चर्बी का उपयोग नहीं करतीं (जैसे ब्यावर में रायबहादुर सेठ कुन्दनमलजी की महालक्ष्मी मिल में बना हुआ कपड़ा इस दोष से सर्वथा रहित होता है ।) किन्तु विलायत की तो सभी मिलें चर्बी का ही उपयोग करती हैं । इसके अतिरिक्त हमसे ही रुई खरीद कर ५० गुनी कीमत में फिर हमारे सिर मढ़ देना इन विलायती मिलों का नित्य का धन्धा हो रहा है । इनके ही कारण, भारत का सब व्यवसाय नष्ट हो रहा है । आज, ढाके की मलमल का कहीं पता नहीं, उसका स्थान मैन्चेस्टर और लंकाशायर के बने हुए, चर्बी से ओत-प्रोत वस्त्रों ने लेलिया है । इसका कारण हमारी मुर्दादिली है । एक यूरोपियन, केवल देशाभिमान के कारण यथा-सम्भव यूरोप की ही बनी चीज का इस्तेमाल करता है, इसके लिये चाहे उसे दाम अधिक ही देने पड़ें । किन्तु वह समझता है कि यदि हम लोग इन चीजों को बाहर रहते हुए इस्तेमाल न करेंगे और इनका हमारे द्वारा प्रचार न होगा, तो हमारे देश का व्यापार चमकेगा कैसे ? इसके विपरीत, एक भारतीय, अधिक दाम देकर यूरोप की बनी हुई ऐसी निकम्मी किन्तु भड़कदार चीजें खरीदेगा, जिनसे भारत को तो कुछ लाभ निमित्त ही नहीं होता, साथ ही हमें आदर्श मानने वाले

बच्चे भी उन्हीं चीजों को खरीदें और देश का व्यापार नष्ट होकर यूरोप-अमेरिका का चमके। इन्हीं सब कारणों से भारतीय-व्यवसाय नष्ट-प्रायः होगया है। हमने अपना धर्म नष्ट किया, धन विदेशियों के हवाले कर दिया, साथ ही अपने देशाभिमान को भी विदेशियों ही के पैरों तले रौंदवा डाला। आज एक भारतीय, मैन्चेस्टर का श्वेत धोती-जोड़ा पहन कर, लंकाशायर के बने कपड़े का कोट-पैंयट डाटकर या चमड़े से बनी हुई फैल्ट-कैप लगाकर गर्व करता है। अन्य लोगों से अपने आपको बड़ा समझता है। किन्तु यह नहीं जानता कि मुझे इसके लिये लज्जा आनी चाहिये। हमारे धर्म, धन, सभ्यता और आत्माभिमान के ऊपर आज गायों का रक्त और चर्बी पोती हुई है। हम अहिंसावादी होकर, पाप करने में सहायता पहुँचाते हैं, यह कितनी लज्जा-जनक बात है।

धर्म-शास्त्रों में लिखा है—पाप करो मत, करने वाले को सहायता मत दो—और जो पाप करे, उसकी प्रशंसा भी मत करो। यदि इस दृष्टि से देखा जावे, तो विलायती वस्त्र धारण करने वालों को गायों के वध का पाप जरूर लगेगा। क्योंकि चर्बी से पालिश किये हुए कपड़े की तारीफ करना, मानों पाप करने वाले की तारीफ करना

है। यहीं तक नहीं, जब हम उस चर्बी को अपने शरीर में लगाते हैं, अर्थात् विलायती-वस्त्र धारण करते हैं, तो फिर तो पाप का अधिकांश हमें ही लगना चाहिये। क्या किसी दिन आपने यह बात सोची भी है?

भाइयो! रेशम के पश्चात् विलायती वस्त्र और तदुपरान्त चर्बी लगाने वाली मिलों के कपड़े सर्वथा त्याज्य हैं। ये सब अ-पवित्र साधनों से तैयार किये जाते हैं। अतः अब भी सम्हलो और रेशम तथा विलायती-वस्त्रों को धारण करना छोड़ो। ये हमारे धर्म को तो नाश करते ही हैं, धन का भी पाप-मार्ग में उपयोग होता है। हमारा दृढ़-विश्वास है कि आप लोग उपर्युक्त बातों पर शान्ति-पूर्वक विचार करके, अपने धन और धर्म तथा करोड़ों कीड़ों और लाखों गायों के नाश का कारण न बनेंगे।

❀ ताजा समाचार ❀

दीपलिया निवासी श्रीयुत् प्रेमराजजी बांठया ने अपने घर होनेवाले लग्नादि व्यय का १० प्रतिशत ज्ञान-दान में देना तथा रेशम, हाथीदाँत, विदेशी शक्कर और केशर का त्याग स्वीकार किया है। —सम्पादक.

जैन सीरीज़—

जैन-शिक्षा

(प्रथम भाग)

सुख चाहो विद्या पढ़ो, विद्या सुख की खान ।
तीन लोक की सम्पदा, रही ज्ञान में आन ॥

प्रकाशक—
आत्म-जागृति कार्यालय,
बगड़ी (मारवाड़)

संवत् १९८५
प्रति ४०००
मूल्य —)॥
(ज्ञानप्रचारार्थ)

मुद्रक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

विषयानुक्रम

जैन शिक्षा—

(पहिला भाग)

सुख चाहो विद्या पढ़ो, विद्या सुखकी खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही ज्ञान में आन॥

प्रकाशक—
श्री आत्म-जागृति कार्यालय,
बगड़ी (मारवाड़)
वाया सोजत रोड़।

नम्र-निवेदन ।

इतना निवेदन आवश्यक है कि जो आज बच्चे हैं वे ही कल समाज के भाग्य-विधाता होंगे । Child is the father of man. समाज व देश का भावी संचालन बच्चों के हाथ में ही है । अतः बच्चों को उच्च व धार्मिक आदर्श जीवन प्रेमी बनाने योग्य शिक्षा देना आवश्यक है। भावी प्रजा विज्ञान में निपुण, स्वस्थ, नीतिवान और सुखी बने, ऐसी शिक्षा देने के लिये हमें चाहिये कि पाठ्य पुस्तकों द्वारा ही ऐसा ज्ञान देने का यत्न करें । इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर यह शिक्षा-माला (जैन सीरीज़) लिखी गई है । उसका यह पहिला भाग प्रकाशित किया जा रहा है । दूसरे तीसरे और चौथे भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित किये जायेंगे ।

इस सीरीज़ की अनिवार्य उपयोगिता जानकर इसका सस्ता प्रचार करने के लिए उदारचित्त गृहस्थों ने प्रकाशन में आर्थिक सहायता दी है । अतः हम इसको सस्ती कीमत पर देने तथा आय को पुनः ज्ञान-प्रचार में लगाने में समर्थ हुए हैं । अतः अर्थदाताओं को धन्यवाद है ।

सीरीज़ के मूल लेखक महा पुरुषों व सहयोग देने वाले सज्जनों के प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं और इस सेवा का शुभअवसर मिलने से हम अपने आपको धन्य समझते हैं । ऐसी ही सेवा के अवसर पुनः २ प्राप्त हों, यही इच्छा है । अन्त में विद्वानों से हमारी नम्र प्रार्थना है कि इस शिक्षामाला में रही हुई त्रुटियां हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि दूसरी आवृत्ति में शुद्धि-वृद्धि की जाकर अपूर्णता मिटाई जा सके ।

विनीत—

मंत्री, आत्म-जागृति कार्यालय,

बगड़ी (मारवाड़) ।

ॐ

वीतरागायनमः

जैन शिक्षा—

(पहिला भाग)

स्वर—
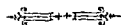
अ आ इ ई उ ऊ (ऋ ॠ ऌ ॡ) ए ऐ ओ औ अं अः

(इस प्रकार भी होते हैं।)

अ आ ओ औ अं अः

स्वरों की पहिचान—

अं, अः, ऐ, ए, ओ, अ, उ, ॠ, ऋ, औ, ओ, ॡ, आ, इ, ऊ, ई, ऌ, आ, ओ, अः, अं—

स्वरों का जोड़ना—

आई, आए, आओ ।

व्यञ्जन—

क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ ।
ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न ।
प फ ब भ म । य र ल व ।
श ष स ह । क्ष त्र ज्ञ ।

व्यञ्जनों की पहिचान—

प, य, ष, ज्ञ, व, ख, झ, ज्ञ, भ, म, ङ, ट, ड,
ट, ण, त, द, न, क, ग, च, घ, ञ, ढ, ण, श,
ल, र, य, छ, झ, ष, ध, फ, ह, क्ष, स, श, ज्ञ, त्र

अक्षरों का जोड़ना—

आज, ईश, और, अंग, तप, घट, गण, घर ।

व्यञ्जनों में स्वरों का मिलना—

जब व्यञ्जनों में स्वर मिलते हैं तब उनका आकार इस प्रकार होता है:—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ऐ ओ औ अं अः

ा ि ी ु ू ृ ॄ े ै ो ौ ं ः

क का कि की कु कू कृ कॄ के कै को कौ कं कः

अ

जप । हम । गज । दम । भरत । नगर । अशरण । गणधर । अरणक । सच कह । नमन कर । मत लड़ । सबक रट । कपट तज । सरल बन । मन वश कर । खल मत बन । गणधर भज । ऋण मत कर । समझ कर कह । कपट मत कर । अजर अमर बन । गरम मत बन । पर धन मत हर । तन मन धन बल रख । मखमल पर पग मत धर ।

आ

आम । दास । चाचा । खाना । छकाय । आकाश । हजार । सामायक । नवकार । उपकार । पाठशाला । महाशय । दान कर । मान हटा । क्षमा धर । दया पाल । समता रख । चरखा चला । पाठशाला जा । नवकार जप । छकाय जान । सामायक कर । अज्ञान

नाश कर। काका माला लाया। महाराज पास जा। भगवान् का भजन कर। उपवास महा दवा मान। माता का मान कर। रामा! सड़ा आम मत ला! मा बाप का कहा मान। पाप का काम मत कर। मन लगा कर ज्ञान पढ़।

इ ि = खि गि कि

ई ी = जी घी पी

शिक्षा। पिता। वीर। सीता। काकी। विहार। चारित्र। अजीव। जमीन। दीपावली। हीरा-मोती। रविवार। सुमति जिन। विनय कर। समकिती बन। शील पाल। नीति सीख। खादी पहन। सादगी रख। धीरज धर। पहिला नाम रख। हिसाब याद कर। सब का मित्र बन। चार गति जान। विमान पर चढ़। सिर मत हिला। रीस मत कर। अविनीत मत बन। मिठाई कम खा। गरीब का आदर कर। भगवान महावीर की जय। आदिनाथजी वीतराग की जय। माता पिता की शिक्षा मान। बिना छना पानी पीना नहीं। चरबी वाला कपड़ा मत पहिन। सब की हितकारी आज्ञा मान। भयभीत जीव का पालनकर।

उ ु = कु सु मु बु रु।
ऊ ू = मू, फू, रू, चू।

गुरु। गुण। शुभ। रूप। मूल।
दयालु। कुमार। युवक। सपूत। जरूर।
मुनिराज। समुदाय। फलफूल। भरपूर। सूत निकाल। सुपुत्र बन। जीवन सुधार। उतावल मत कर। पाप मूल अभिमान। धूल मत उड़ा। सुख दुख मत मान। साधुजी का कथन सुन। बुहारी सदा नरम रख। गुरुजी की बात सुन। दुखी पर करुणा कर। भूत का डर तज। किसी की बुराई मत कर। गज सुकुमार सरीखी क्षमा रख। ज्ञान का मूल विनय मान। पढ़ाई का पूरा सामान रख। पढ़ना बहुत ही जरूरी समझ। चक्षु का भूषण ज्ञान पढ़ना। कान का भूषण उपदेश सुनना। जीभ का भूषण सच कहना। हाथ पग का भूषण उपकार करना। भूल कर भी झूठ मत कह।

ए े = ले, दे, चे, त्रे।
ऐ ै = जै, ज्ञै, छै, है।

खेत। मेरा। देश। कैसा। भैया।

कलेजा। केसर। वैभव। वैराग्य।
हाथ पैर। उपदेश। जैनशाला।

यह जैन है। जैनी दयालु होता है। सच कहता है। शील पालता है। उदारता रखता है। बिना पूछे चीज न उठाता। बैर मत कर। मैला मत रह। हमेशा उपदेश सुनना। आगे देख कर चल। भूख से कम खा। करे सेवा, पावे मेवा। खादे देशी कपड़े पहन। देशी कपड़ा खादी कहावे। जगत अनादि से है। मेघरथ राजा बड़े दयालु थे। केवल ज्ञानी सब जानते। यह कैसा बढ़िया पाठ है। बीमारी आने पर उपवास करने से आराम मिलता है।

ओ ो = गो, भो, टो, जो।
औ ौ = कौ, रौ, चौ, ढौ।

मोक्ष। बोल। ढोल। बोयण। गोचरी। नौ।
कौआ। पौष। औषध। कौतुक।

सदा संतोषी बनो। चोरी मत करो। रोना बुरा है। गौतम गुणवान् थे। रोज भला काम करो। मीठा और सच बोलो। ठौर साफ कर बैठो। गौ का दूध पीओ। लोभ पाप का मूल है।

किसी को दुख न दो। जगत को भगवान् नहीं बनाते। हाथ की शोभा दान देना है। कठोर वचन से किसी का जी मत दुखाओ। मीठा सच तथा हितकारी बोलो।

अं ँ = हं, मं ऑं हाँ।

अः ः = तः, नः, योः, त्रः, ज्ञः।

(ँ अर्धचंद्र अर्थात्, आधा अनुस्वार। अनुस्वार, अर्ध चंद्र और विसर्ग किसी भी स्वर से मिले हुए व्यञ्जन या स्वर के साथ आसकते हैं। शिक्षक उदाहरण देकर उच्चारण सहित समझा दें)

हंस। वंश। संघ। चाँद। कहाँ। नमः। पुनः। हिंदवासी। पहुँचाना। वंदे वीरं, ओं (ॐ) भगवन्। निंदा मत करो। लोभ दुखदायी है। अतः संतोष धरो। चंदनबालाजी सती हुई। कंकर मत मारो। शान्तिनाथजी सोलवें भगवान् हुए। लोगों के दुःख मिटाओ। कंजूस न बनो। पाप से दुःख मिलता है। पंडित बनकर अहिंसा फैलाओ। सब सुखों का मूल अहिंसा है। भगवान कभी संसार में नहीं आते हैं। भगवान् एक नहीं हैं, अनंत हैं। पौषधशाला में सामायिक और पौषध

करते हैं। मोक्ष के चार दरवाजे हैं,—क्षमा, विनय सरलता और संतोष। नरक के चार दरवाजे हैं-रीस, घमंड, कपट और लोभ।

मिले हुए अक्षर। (संयुक्ताक्षर)

(शिक्षक यह पाठ बराबर समझावें)

अक्षर दो प्रकार के हैं। १ पाई (।) वाले और २ बिना पाई "।" के

पाई वाले—ख, ग, घ, च, ज, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स,

बिना पाई के—क, ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, फ, र, ह

पाई वाला अक्षर जब दूसरे से मिलता है तब उसकी पाई (।) मिट जाती है। जैसे—आत्मा, अच्छा, सज्जन। ठण्ढा। बिना पाई के अक्षर जब दूसरे से मिलते हैं तब प्रायः वैसे ही बने रहते हैं। जैसे—मङ्गल, बुद्धि, मक्खन, वाक्य।

"र" जब आगे के अक्षर में मिलता है तब वह उसके ऊपर "॑" रूप में लगता है। जैसे—धर्म अर्थ, मर्म। "र" जब पीछे के अक्षर में मिलता है तब नीचे "्र" रूप में लगता है जैसे-प्रभु, प्रेम, नम्र।

नीति शिक्षण।

१—सवेरा।

सवेरा हो गया है। चिड़ियाँ बोलती हैं। बिछौना छोड़ दो। भगवान का नाम याद करो। टट्टी पेशाब मत रोको। टट्टी पेशाव रोकने से रोग होते हैं। साफ जगह में जाओ। मा बाप को नमन करो। नमन करने से बहुत लाभ होते हैं।

किताब को उठाओ। पाठ बराबर समझो। समझ कर याद करो। केवल रटो मत। जो लोग पाठ समझने का आलस करते हैं वे हानि उठाते हैं। समझने से पाठ तुरंत याद होता है। बिना समझे महनत करने पर भी बराबर याद नहीं होता।

२—पाठशाला

रामलाल पाठशाला को जाता है। रास्ते में और लड़कों को बुलाता जाता है। वह सबसे हिल मिलकर रहता है। कभी लड़ाई नहीं करता है। किसी की चुगली नहीं खाता है। उसे कोई

चिढ़ाता है तो वह चुप रहता है। चिढ़ाने वाले सदा के लिए चिढ़ाना छोड़ देते हैं। अज्ञानी लड़के ही चिढ़ाते हैं। तुम कभी किसी को मत चिढ़ाओ।

कभी किसी से मत लड़ो। लड़ना बुरी आदत है। किसी पर रीस मत करो। कभी रोओ मत। रीस से शरीर का लोहू सूखता है। रीस से बुद्धि बिगड़ती है और बहुत दुःख उठाने पड़ते हैं। सदाचारी लड़के सदा शांत रहते और उद्योग करते हैं।

३—सच बोलना

सत्यचंद्र सदा सच ही बोलता था। एक दिन उसके हाथ से गुरुजी की पोथी फट गई। उसने यह बात नहीं छुपाई। वह तुरंत ही गुरुजी के पास गया। पहिले उनके सामने सिर झुकाया। फिर सच बात कहकर माफी माँगी। गुरुजी ने माफी दे दी और सच बोलने के लिए उसकी शोभा की। बालको, सदा सच बोलो।

दोहा

साँच बराबर तप नहीं। झूठ बराबर पाप॥
जाके हिरदे साँच है। ताके हिरदे आप॥१॥

सफाई

सफाई से शरीर निरोग रहता है। गंदे हाथों से भोजन कभी नहीं करना चाहिये। इससे मैल पेट में जाता है और रोग पैदा होते हैं। नाक को साफ़ रखना चाहिये। अगर मैला हो तो तुरंत दूर जाकर साफ़ कर देना चाहिये। उस मैले पर धूल भी डाल देना चाहिये। कोरा पानी ही शरीर पर डाल कर नहीं नहाना चाहिये। शरीर के मैल को भली भांति दूर करना चाहिये। गंदी जगह में कभी नहीं खेलना चाहिये। शरीर और कपड़े साफ़ रखने चाहिये।

याद रखो

नित ही पढ़ना। ऊँचा चढ़ना।
सीखो पाठ। सब है ठाठ।
पाठ याद कर। समझ समझ कर।
महनत करना। दिल में धरना।
नित सच कहना। सुख से रहना।
तजो लड़ाई। मिले बड़ाई।
बनना भले। दुख सब टले।
ऐसा ज्ञान। लो तुम मान।

६—खेलना

पढ़ने के समय जी लगाकर पढ़ना चाहिये। खेलने के समय खेलना भी चाहिये। पढ़ते समय खेल में जी मत लगाओ। दिन भर मत खेलो। गंदी जगह में नहीं खेलना चाहिये। बुरे लड़कों के साथ नहीं खेलना चाहिये। खेलते समय नहीं लड़ना चाहिये। भले लड़के आपस में नहीं लड़ते। भोजन करके मत दौड़ो। खेलकर एक दम पानी नहीं पीना चाहिये।

७—नीति

जो अच्छे रास्ते पर ले जायें, ऐसे कामों को नीति कहते हैं। नीति पर चलने वाले को नीतिवान पुरुष कहते हैं। नीति के बहुत प्रकार हैं। मुख्य ये हैं—

१—सबका भला करना।
२—सच बोलना।
३—ईमानदारी रखना।
४—चालचलन सीधे रखना।
५—संतोष रखना।
६—क्षमा रखना।

७—विनय करना।
८—सदा उद्योगी रहना।
९—एकता रखना।
१०—सबके गुण लेना।

इन से बहुत सुख मिलते हैं।
(इनको समझकर कंठस्थ कर लें)

८—नीति

धर्म महल के समान है। नीति उसकी नींव है। लोक धर्म-क्रिया तो करते हैं परन्तु न्याय नीति की ओर आजकल पूरा ध्यान नहीं देते। झूठ बोलना, दगा करना, झूठी साक्षी देना, निंदा करना, एकता न रखना, बुरे रिवाज़ों का सेवन आदि अनीति है।

पुराने ज़माने में जैनी लोग बड़े नीतिवान् थे। उनकी सब जगह प्रतीति थी। अब वह प्रतीति वापिस जमानी चाहिये। जब नीति का खूब पालन होता था तब जैनी लोग करोड़ों की संख्या में थे। अब नीति में कमी हुई। इससे घटकर जैनी पौने बारह लाख ही रह गए हैं और हर साल घट रहे हैं। मनुष्य संख्या ही नहीं घटती है; आरोग्य,

धन, कीर्ति, सुख आदि भी घट रहे हैं। अब नीति का पालन करके सुधार करना चाहिये।

९—नीति का फल

जगत में नीति से ही सब काम चलते हैं। नीति का दूसरा नाम न्याय है। न्याय को सत्य भी कहते हैं। जहां सत्य है वहां न्याय है। जहां नीति है वहां सब सुख आसानी से मिलते हैं। नीतिवान कभी दुखी नहीं होता। वह विद्या, बुद्धि, हुनर, कला, धर्म, सब में श्रेष्ठ होता है। आज नीति का पालन नहीं करने से लोग दुखी होते हैं। अगर नीति का पालन किया जाय तो सब सुख मिल जाते हैं।

दोहा—

जहां नीति है सुख वहां, दुख न वहां पे होय।
जो सुख चाहो तुम सदा, नीति न त्यागो कोय॥

१०—धर्म.

कर्तव्य को धर्म कहते हैं। जिस काम के करने से सुख हो उसे धर्म कहते हैं। धर्म रूपी महल की नींव नीति है। जैसे वृक्ष का आधार मूल (जड़)

पर है वैसे धर्म का आधार नीति पर है। जहां नीति है वहां धर्म है। बिना नीति के धर्म कभी नहीं रह सकता।

मनुष्य और जानवर में यही फरक है कि मनुष्य नीति का पालन कर के धर्म करने के लायक बनता है। धर्म के भी दो प्रकार हैं—एक सुधर्म दूसरा कुधर्म। जो नीति से विरुद्ध चलाते हैं वे कुधर्म कहाते हैं। धर्म में झगड़े कभी नहीं होते। झगड़े हो वहां कुधर्म अर्थात् अधर्म समझना चाहिये। हम अनीति व अधर्म का सदा त्याग करेंगे।

११ भला लड़का.

रामा एक भला लड़का था। वह सदा सच ही बोलता था। सब से मेल रखता था। अपना पाठ समझ कर याद करता था। किसी की चुगली नहीं खाता था। भोजन, कपड़ा या किसी दूसरी चीज़ के लिए नाराज़ नहीं होता था। जो मिलता उसी में आनन्द मानता था। मन लगा कर काम करता था। रोटी खूब चबा चबा कर खाता था। मिरची नहीं खाता था। इससे उसका शरीर बड़ा

मजबूत था। हम भी ऐसे ही गुण धारण कर सुखी बनें।

१२ चंगे कैसे रहें ?

साफ़ हवा में सोना चाहिये। सोते समय खिड़कियां खुली रखनी चाहिये। खिड़कियाँ खुली रहने से साफ हवा आती है। साफ़ हवा से बुद्धि बढ़ती है और रोग नहीं होते। मुँह ढाँक कर नहीं सोना चाहिये। मुँह ढाँके रहने से नाक से निकली हुई जहरीली हवा बाहर नहीं जाती। इससे शरीर बिगड़ता है। एक बिछौने पर एक से अधिक नहीं सोना चाहिये।

१३ गहने

बालकों को गहने नहीं पहिनने चाहिये। माता पिता को चाहिये कि झूठा प्यार न दिखावें। गहनों के कारण कई बार बालकों को चोर लेजाते हैं और थोड़े से जेवर के लिए उन्हें मार डालते हैं। कई जगह ऐसी घटनाएँ हुई हैं।

१४—प्रश्नोत्तर।

प्रश्न—विद्या की प्राप्ति कैसे होती है ?
उत्तर—विनय करने से।

प्रश्न—सुख कैसे मिलता है ?

उत्तर—सत्पुरुषों की आज्ञा पालन करने से।

प्रश्न—रोग कब होता है ?

उत्तर—ज्यादा भोजन या कुपथ्य करने से।

प्रश्न—निरोग कैसे रह सकते हैं ?

उत्तर—शुद्ध हवा, पानी तथा पथ्य भोजन से।

प्रश्न—बलवान कैसे बना जाता है।

उत्तर—मिहनत के काम हाथ से करने से।

प्रश्न—कोई बुलावे तो क्या करना चाहिये ?

उत्तर—"जी हाँ" ऐसा कह कर तुरन्त पास जाना चाहिये।*

कहावतें

१—साँच को आँच नहीं।

२—पहिला सुख निरोगी काया।

३—करोगे सेवा तो पाओगे मेवा।

४—भला कर भला होगा बुरा कर बुरा होगा।

५—दो ही अक्षर नित प्रति पढ़े सो पंडित होय।

६—संतोषी परम सुखी।

---

* शिक्षक महोदय प्रश्नोत्तर व कहावतों को अच्छी तरह समझा कर कंठस्थ करावें व अनेक प्रसंगों में इनका अनुभव युक्त उपयोग करावें।

७—दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान।
८—अकल बड़ी के भैंस ? अकल बड़ी है।*

३६—पेंसिल को छोटी करो

एक बार मोहन एक पेंसिल लाया। उसने अपनी बहिन से कहा—सीता बहिन इसको छोटी करो लेकिन इसे न तोड़ो, न काटो।

सीता के समझ में कोई तरकीब नहीं आई। वह बोली—भाई, मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता। आप ही सिखा दो।

मोहन ने कहा—बहिन देखो मैं बताता हूँ। ऐसा कह कर उसने उस पेंसिल के पास एक बड़ी पेंसिल रख दी। फिर कहा—सीता छोटी पेंसिल उठाओ। सीता ने असली पेंसिल उठाली और बोली—भाई, आपने अच्छी बुद्धि लगाई।

मोहन बोला—बहिन हरेक कठिनाई विचारने से तुरन्त दूर हो जाती है।

१६—अनूठे उपदेश

वीर बनो तुम, धीर बनो तुम माता के आज्ञाकारी।
ईश्वर पर कर पूर्ण भरोसा, काम करो भारी भारी॥

पढ़ने से तुम जी न चुराओ, पढ़ना है अति सुखकारी।
सत्य मार्ग से पद न हटाओ, रहो सदैव सदाचारी ॥
कहना वही सदा जो सच है, दीनों का तुम देना साथ।
पूज्य जनों की मानो शिक्षा, और झुकावो उनको माथ
विना कामके कुछ नहिं होता, लड़को करना सीखो काम
आलस को तुम दूर भगाओ, जिससे जग में पाओ नाम

श्रीयुत
बालसखा नाथमल हिंमतसिंह।

हित शिक्षा।

पाठ—१

मुक्ति द्रव्य त्याग न्याय धान्य।
अर्हंत सिद्धि आचार्य उपाध्याय ॥
प्रतिक्रमण प्रायश्चित सत्यव्रत तीर्थंकर।

जीवों की रक्षा करो। धर्म सार वस्तु है। आलस्य छोड़ कर विद्या पढ़ो। लक्ष्मी का दान दो। हम गुण पूजक हैं। हम आत्मा हैं। सबकी आत्मा समान है। उपाश्रय में जाओ। मुनि दर्शन करो। व्याख्यान सुनो। सब से प्यार करो। आरोग्यता के वास्ते व्यायाम करो तथा मिहनत

का सब काम हाथों से करो। पुस्तक पढ़ो। स्वच्छता रक्खो। जयजिनेन्द्र कहो। जैन धर्म अच्छा है। स्वर्ग में सदा प्रकाश है। सच्चा प्रकाश ज्ञान है। तत्व नौ हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

उत्तम काम करो। पुष्प मत तोड़ो। आत्मा ही परमात्मा बन सकता है। गुरु शिष्य को पढ़ाते हैं। श्रावक के बारह व्रत होते हैं।

मा-बाप को प्रणाम।

पाठ—२

प्रश्न—	उत्तर—
बहिन तू क्या करती है?	माँ को प्रणाम करती हूँ।
किस लिये?	मा-बाप को प्रणाम करना अपना कर्तव्य है।
क्या मैं भी प्रणाम करूँ?	हाँ, भाई, रोज प्रणाम किया करो।
इससे क्या लाभ होता है?	इससे अपने अपराधों की माफी मिलती है। उनकी प्रीति बढ़ती है। वे हरेक काम में अपने

	को ज्यादा मदद देते हैं।
	वे आशीष देते हैं।
और किसको प्रणाम करना चाहिये ?	साधुजी, गुरुजी और हम से बड़े, ये सब हमको हित शिक्षा देते हैं इसलिये उपकारी हैं।

हाथ पैर।

पाठ—३

ये हाथ हैं। हाथ दो होते हैं। हाथ से भोजन करते हैं, पानी पीते हैं। और क्या ? माता पिता के पाँव दाबना और गरीबों को भोजन देना। अपना सब काम हाथों से करो। अपने ही हाथ से काम अच्छा होता है। हाथों की शोभा अच्छे कामों से होती है, गहनों से नहीं। हाथों में फुर्ती रखो। भले कार्य करो। बिना पूछे किसी की चीज मत उठाओ।

हम पाँव से चलते हैं। सदा पाँव से चलो। बिना खास काम गाड़ी में मत बैठो। पावों के बल चलने से बीमारी नहीं आती। सुबह शाम घूमने जाओ। पाठशाला जाने में चूक मत करो। साधु जी के दर्शन के लिए जाओ। नीचे देख कर चलो।

गरीब की सहायता के लिए दौड़ो ।

हाथ पांव को परहित में नित,
मेरे मित्र काम लाओ ।
दान और सेवा में दे चित्त,
यश बस खूब कमा जाओ ॥

जीभ, आंख, कान ।

पाठ—४

करो जीभ से मीठी बात ।
बोलो सत्य और प्रिय भ्रात ॥
आँख तुम्हारी से प्रियवरो ।
साधु जनों के दर्शन करो ॥
पढ़ो पुस्तकें चलो देख कर ।
लगे न जिससे तुमको ठोकर ॥
कान तुम्हारे होते दो ।
उनसे पाठ सदा सुन लो ॥
सुनो साधुजी के उपदेश ।
बुरी बात को तजो हमेश ॥

दुःख

पाठ—५

मा–रमण, क्यों रोता है भैया ?

रमण–मुझे लकड़ी की लग गई है। बड़ी पीड़ा हो रही है।

मा—आ बेटा, आ! मैं जरा तेरी चोट पर तेल लगा दूँ। इससे पीड़ा जल्दी ठीक हो जायगी।

रमण—मा, मुझे बड़ा ही दुःख हो रहा है।

मा—हाँ, बेटा लगने से दुःख होता ही है। तुम किसी को दुःख मत देना।

रमन—हां, मा, मैं कभी किसी को दुःख नहीं पहुँचाऊँगा।

× × × ×

चचा—रसिक! मुँह उतारे क्यों बैठा है?

रसिक—काका, बहिन झूठ बोलती है।

चचा—क्या झूठ बोलती है, बेटा?

रसिक—वह मुझसे कहती है तूने मेरी पुस्तक फाड़ डाली।

चचा—अच्छा बेटा, मैं बहिन को समझादूँगा। उसने तेरा झूठा नाम ले लिया। जैसे तुझे दुःख हुआ वैसे दूसरोंको भी होता है। इसलिए तूभी कभी झूठ मत बोलना।

× × × ×

माया—उदास क्यों है, बेटी शान्ति?

शान्ति—मायाजी, किसी ने मेरी दावात चुराली?

माया—इससे क्या हो गया?

शान्ति—मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। मैं मा को जाकर क्या कहूँगी ?

मामा—देखा बेटी, दावान चुराए जाने से तुझे कितना दुःख हुआ ? ऐसे ही औरों को भी होता है। इसलिए बेटी बिना पूछे किसी की भी चीज मत छूना। ऐसा करना चोरी है।

शान्ति—हाँ माताजी, मैं तो ऐसा कभी नहीं करूँगी। मैं जानती हूँ चोरी करना बड़ा पाप है।

भावना—चौपाई।

पाठ—६

सच बोलें सच बात विचारें। भले काम कर जन्म सुधारें
देश जाति का मान बढ़ावें। एकाकर सन्मान कमावें
छोटे बड़े सभी मिल जावें। गिरे हुए को तुरत उठावें
बीते झगड़ों को बिसरावें। आगे के हित नेह जुटावें
भाई भाई को न सतावें। कड़ी बात से जी न दुखावें
दुखियों के दुख दूर करावें। सबको सुख देकर सुख पावें
विपत पड़े पर साथ न छोड़ें। बुरी बातसे नित मुख मोड़ें
दया धर्म को खूब निभावें। अरिहंतों को सीस झुकावें

पढ़ने के कायदे।

पाठ—७

सीता पाठशाला को जाती थी। उसके छोटे भाई सोहन ने पूछा—बाई, पाठशाला को क्यों

जा रही हो ? सीता ने उत्तर दिया भाई, वहां अच्छी-अच्छी बातें सीखते हैं। महापुरुषों के उपदेश मालूम होते हैं। इससे हमारी बुद्धि निर्मल होती है। फिर हम भी उनके जैसे बन सकते हैं। हम भी लोगों को उपदेश देकर सुधार सकते हैं। भाई सोहन, दुनियाँ में ऐसा कोई काम नहीं जो पढ़ लिखने से नहीं हो सके। विद्या सब गुणों की खान है।

रेशम और खद्दर

पाठ—८

मोहन को कपड़ों का बड़ा शौख था। एक दिन उसने अपने पिताजी से रेशमीन कोट बनवाने का कहा। पिता जी ने कहा,—"मोहन रेशम पहिन कर काहे को पाप बढ़ाते हो।" पाप ! यह शब्द सुन कर मोहन को अचरज हुआ। उसने कहा—पिताजी, इसमें पाप किस बात का ? हाँ कीमत तो ज्यादे लगती है।

पिताजी ने कहा—बेटा कीमत की बात नहीं है। तुम्हें मालूम है यह कैसे बनता है ?

मोहन—यह तो मालूम नहीं। रूई की तरह रेशम भी उगता होगा और उससे कपड़ा बनता होगा।

पिताजी—अरे तुझे यह भी मालूम नहीं। रेशम कीड़ों के मुँह की तांत है! लाखों कीड़ों को मारने से यह तयार होता है। इससे कितना पाप होता है?

मोहन—तो पिताजी, ऐसा कपड़ा कौन सा है जिसमें पाप न हो।

पिताजी—खद्दर का। इसमें चर्बी भी नहीं लगती। मिलके कपड़ों में भी चर्बी की कलप लगती है। इसके लिए लाखों गाय भैंस आदि जानवर मारे जाते हैं। इसलिये खादी के कपड़े काम में लाना चाहिये।

मोहन-पिताजी! मैं आज से सदा के लिये पवित्र कपड़े ही पहिनूंगा। मैंने अज्ञानता से रेशमीन कोट मँगाया सो माफ करें।

धर्म-सेवा

पाठ—९

गुरु—तुम इतने सुखी और आनन्दी कैसे हो?
विद्यार्थी—माता पिता की कृपा से।
गुरु—तुम्हारे माता पिता सुखी कैसे हैं?
विद्यार्थी—जैन धर्म के प्रताप से।

गुरु—जैन धर्म क्या सिखाता है ?

विद्यार्थी—दया करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य पालन करना, संतोष रखना।

गुरु—इससे तुमको क्या लाभ होगा ?

विद्यार्थी—हमारे सब प्रेमी बनेंगे, वैरी कोई न होगा। सब लोग हमारा विश्वास करेंगे। हमारी बड़ाई होगी और धंधा भी खूब चलेगा। वैभव खूब मिलेगा तो भी धर्म सेवा में लगा जावेंगे। हमारे जैसे नए जैन बनावेंगे, सबको मदद पहुँचावेंगे।

गुरु—जब तुम्हारे सब सुखों का मूल जैन-धर्म ही है तो जैन धर्म को अधिकार है कि वह तुम्हारी सब वस्तुओं का भोग जब चाहे माँग सके ?

विद्यार्थी—जी हाँ, सब वस्तुओं ही का क्या धर्म के वास्ते हम अपनी देह का भी आत्म-भोग देने को तयार हैं।

गुरु—धन्य हो, वीर पुत्रो ! और तो क्या धर्म के लिए प्राण की भी परवा न करना सच्चा आत्म-भोग है।

१०—वीर-शिक्षा

पाठ—१०

हे वीर बाल, तू वीर प्रभु का पुत्र है तो बहादुर बन, हिम्मत रख। सत्कार्य में पीछा मत हट। हे प्यारे बालक, तू जैन है। इस लिए प्रफुल्लित बन। रीस और वैर को छोड़। सब से प्रेम कर और जाहिर कर कि मैं जैन समाज में जन्मा हूँ, अतः प्रत्येक जैन को सगा भाई समझूँगा चाहे वह ब्राह्मण, राजपूत, ओसवाल या अछूत हो।

हे वीरपुत्र ! चाहे तेरे पास कुछ भी न हो तो भी तू धर्म का विश्वास कर, न्याय नीति को मत छोड़ और आनन्द से बोल कि, मेरा जैन जीवन है। धर्म के पालन से कभी दुःख नहीं होता। जैन समाज ही मेरा पालना, विलास भूमि और यात्रा धाम है।

प्यारे महावीर पुत्र ! जगत को यही जाहिर कर कि, वीतराग ही देव है; निर्ग्रंथ ही गुरु है; अहिंसामय जैन धर्म ही धर्म है। उसमें जाति-पांति का भी कोई भेद नहीं है, हरएक मनुष्य जैन धर्म का पालन करके आत्म कल्याण कर सकता है। खरा मर्द बन कर जैनी मृत्यु से भी नहीं डरता।

जैन इतिहास,

भगवान महावीर

पाठ—११

प्रिय बालको ! क्या तुमने भगवान महावीर का नाम सुना है ? भगवान महावीर जैन धर्म के चौवीसवे उद्धारक हो गए हैं। धर्म उद्धारक को तीर्थंकर कहते हैं।

ये बालक अवस्था से ही बड़े ज्ञानी विनयी, क्षमावान और शूरवीर थे। एक समय अपने बाल मित्रों के साथ बैठे हुए आप चन्द्रमा की चांदनी में अच्छी २ कथाएँ कह रहे थे। उस समय वहां एक राक्षस आया। उसने विचारा कि ये शब्द के पण्डित ही हैं या बलवान और गुणवान भी। उस ने इनकी परीक्षा करने की ठानी।

राक्षस—महावीर कुमार, आप क्या गप्पें मार रहे हैं ?

महावीर—गप्पें कैसी भाई ? हम तो उत्तम उत्तम बातें कर रहे हैं ?

राक्षस—कुमार, आपने अपने शरीर बल से सब को हरा दिया है परन्तु जब तक आपने मुझे नहीं जीता तब तक आपका 'महावीर' अर्थात् "बड़ा शूर वीर" नाम रखना ठीक नहीं। यदि

आप मुझ से युद्ध करके जीतें तो आप को सच्चा महावीर मानूँ।

सारे बालक महावीर के पराक्रम को जानते थे। वे बोले, "देव! आप शीघ्र ही इसका गर्व उतारिये।

महावीर बोले—भाई अपना युद्ध प्रेम का होता है, द्वेष का नहीं।

राक्षस—मैं भी परीक्षा ही के लिए युद्ध करना चाहता हूँ, न कि द्वेष वश।

दोनों में युद्ध शुरू हुआ। महावीर ने राक्षस को तत्काल ही नीचे गिरा दिया। और वे उसके ऊपर बैठ गए, नीचे पड़ते ही उसने राक्षसी शक्ति से बढ़ना शुरू किया। वह एक दम पहाड़ जितना ऊँचा हो गया। सब लड़के भयभीत होने लगे परन्तु महावीर तो उसके ऊपर निडर होकर डटे रहे। जब उन्होंने देखा कि लड़के बहुत घबरा रहे हैं तो अपनी एक अँगुली से उसे दबाया। वह हवा से फूले हुए कपड़े की तरह नीचे दब गया। महावीर के बल, क्षमा, निर्भयता व शूरवीरता की सब ने प्रशंसा की।

प्यारे विद्यार्थियो! आप भी उनकी ही संतान हैं तो वैसे ही बली, विद्वान, वीर और धीर बनें।

पार्श्वनाथ भगवान—

पाठ १२

वनारस नगरी में एक बाबा आया था। उस के लंबी दाढ़ी और लंबे केश थे। वह चौरासी धूनी जला कर तप करता था। गाँव के सब लोग उसको बन्दन करने के लिए जाते थे। एक दिन पार्श्वनाथ कुमार खेलते खेलते वहां चले गए। उन्हों ने बाबा से कहा, "अरे बाबाजी यह क्या कर रहे हो? धर्म कर रहे हो कि पाप?"

बाबाजी–कुमार तुम क्या बोल रहे हो?

कुमार–मैं सत्य बोल रहा हूँ। देखिये! आप की लकड़ी में साँप जल रहे हैं। आप सत्य धर्म को समझते ही नहीं। धर्म वही है जिससे सब जीवों को सुख और शान्ति मिले, किसी को दुःख न हो। आप तो धर्म क्या कर रहे हैं, धर्म के नाम पर पाप बढ़ा रहे हैं।

कुमार पार्श्वनाथ का यह कहना ही था कि बाबा का मुँह क्रोध से लाल होगया। उन्हों ने कुल्हाड़ा उठाया और चट से लकड़ी पर दे मारा। कुल्हाड़ा लगते ही लकड़ी फट गई और भीतर से जलते

हुए नाग और नागिन निकल पड़े। चारो ओर सन्नाटा सा छा गया।

कुमार ने उन प्राणियों का इलाज किया और उन्हें धर्म का उपदेश सुनाया। इस उपदेश के प्रताप से वे मरकर देवलोक में देवता हुए। इनके नाम धरणेन्द्र और पद्मावती हैं।

प्यारे बालको, यह सदा याद रखो, धर्म वही है जिससे किसी को भी दुःख न हो। आप सदा दया धर्म का पालन करें और दुखियों का पालन करके उनको भली सीख दें।

वीर बाल (अयवंता कुमार)

पाठ १३

बाल मित्रों के साथ उत्तम खेल खेलते हुए एकबार अयवंता कुमार गुरु होकर दूसरे सब लड़कों को हित-शिक्षा देने लगे। लड़कों की एक सुन्दर सभा जुड़ी हुई थी। इतने में श्री गौतम भगवान राह चलते दिखाई दिए। एक त्यागी मुनि को देखकर अयवंता कुमार बड़ी नम्रता से उनके चरणों में जागिरे और वन्दना की। सब लड़कों ने भी वन्दना की।

अयवंता कुमार गौतम देव को अपने घर ले आए। यह देख कर उनकी माता बड़ी प्रसन्न हुई। गौतम स्वामी को भक्ति-पूर्वक निर्दोष भोजन देकर वे उनके साथ प्रभु महावीर स्वामी के दर्शन के लिए गए। भगवान महावीर के उपदेश से ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने संयम अंगीकार किया और मोक्ष की प्राप्ति की।

मुनिवरों को देखते ही तुरन्त नमस्कार करके अन्न-वस्त्र पुस्तकादि से उनकी भक्ति करना चाहिये।

वीर बाला (चंदन बाला)

पाठ १४

चंदनबाला एक बाल-ब्रह्मचारिणी महान् सती होगई है। यह चम्पा नगरी के दधीवाहन राजा की कन्या थी। शत्रु-सेना के साथ युद्ध करते करते इसके पिता मारे गए। इस पर विपत्ति आई पर यह सत्य और शील में खूब दृढ रही। इस की माता धारिणी सती ने शील रक्षा के लिए देह छोड़दी। उन्होंने देवलोक प्राप्त किया।

चन्दन बाला हमेशा ज्ञान ध्यान करती थी। वह महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ा करती थी और दुःख में धीरज रखती थी।

तत्त्व-विभाग ।

नवकार मंत्र ।

पाठ १६

१—नमो अरिहंताणं-अरिहंत देव को नमस्कार करता हूँ ।

२—नमो सिद्धाणं-सिद्ध भगवान को नमस्कार करता हूँ ।

३—नमो आयरियाणं-आचार्य महाराज को नमस्कार करता हूँ ।

४—नमो उवज्झायाणं-उपाध्याय मुनि को नमस्कार करता हूँ ।

५—नमो लोए सव्व साहूणं—लोक में विराजमान सकल साधु साध्विओं को नमस्कार करता हूँ ।

एसो पंच णमुक्कारो-ये पंच पदों को किया हुआ नमस्कार,

सव्व पाव पणासणो—सब पापों का सर्वथा नाश करने वाला है ।

मंगलाणं च सव्वेसिं—सब मंगलों में,

पढमं हवई मंगलं-यह श्रेष्ठ मंगल है ।

नवकार का अर्थ नमस्कार है और मंत्र का

अर्थ उत्तम वाक्य है। पंचपरमेष्टि प्रभु को रोज स्मरण करके उनके समान अनंत ज्ञानादि गुण अपने में भी प्रगट करने का चिंतवन करना चाहिये इसे भावना कहते हैं।

उठते समय, सोते समय, और हर एक कार्य करते समय, नवकार मंत्र का अर्थ और भावना सहित चिंतवन करना चाहिये।

अपन जैन हैं, इसलिये हमेशा, मंगलाचरण में नवकार गिनकर रोज थोड़ा भी समय जैन तत्त्व-ज्ञान की पुस्तक पढ़ना व विचारना चाहिये।

जैसे शरीर का आधार भोजन है, इसी प्रकार जीव का आधार ज्ञान है। अपन रोज भोजन करते हैं, वैसे कुछ समय तक, रोज ज्ञान ध्यान का नियम भी रखना चाहिये।

चौबीस तीर्थकरों के नाम

पाठ १७

१—श्री ऋषभ देव—स्वामी
२—श्री अजितनाथ–स्वामी
३—श्री संभवनाथ—स्वामी
४—श्री अभिनंदन—स्वामी
५—श्री सुमतिनाथ—स्वामी

६—श्री पद्म प्रभु—स्वामी
७—श्री सुपार्श्वनाथ-स्वामी
८—श्री चन्द्रप्रभु—स्वामी
९—श्री सुविधिनाथ-स्वामी
१०—श्री शीतलनाथ-स्वामी
११—श्री श्रेयांस नाथ-स्वामी
१२—श्री वासुपूज्य—स्वामी
१३—श्री विमलनाथ—स्वामी
१४—श्री अनन्त नाथ-स्वामी
१५—श्री धर्मनाथ—स्वामी
१६—श्री शान्ति नाथ-स्वामी
१७—श्री कुंथुनाथ—स्वामी
१८—श्री अरनाथ-स्वामी
१९—श्री मल्लिनाथ-स्वामी
२०—श्री मुनि सुव्रत-स्वामी
२१—श्री नमिनाथ—स्वामी
२२—श्री नेमी नाथ—स्वामी
२३—श्री पार्श्वनाथ—स्वामी
२४—श्री महावीर—स्वामी

जीव और अजीव

पाठ १८

जीव—उन्हें कहते हैं जिनको सुख दुःख होता हो जिन में जान हो। जैसेः– आदमी, गाय, बकरी, घोड़ा, कुत्ता, कबूतर, चिड़िया, मछली, आदि।

दुःख दियाँ दुख होत है, सुखदियाँ सुख होय।
आप हने नहिं और को, हने न आपको कोय॥

अजीव–उन्हें कहते हैं जिनको सुख दुख न हो, जिनमें जान न हो। जैसेः– सूखी लकड़ी, ईंट, कुर्सी, टेबल, कागज, पुस्तक, कुर्ता, टोपी, रोटी आदि।

प्रश्न—१.जीव किसे कहते हैं ?
२. जीव के कुछ नाम कहो।
३. अजीव किसे कहते हैं ?
४. अजीव के कुछ नाम कहो।
५. जीव को जान कर क्या करना चाहिये ?

जीव तत्त्व।

पाठ १९

संसार में जीव दो प्रकारके हैं। त्रस और स्थावर।

१—त्रस जीव उसे कहते हैं, जो हलचल कर सके।
जैसे कीड़े, चींटी, गाय, मनुष्य आदि।

२—स्थावर जीव स्वयं हलचल नहीं कर सकते
यानि एकही जगह पड़े रहते हैं।

स्थावर जीवों को एक स्पर्श इन्द्रिय अर्थात् शरीर ही होता है। स्थावर के पाँच प्रकार हैं। जैसे:-

१, पृथ्वी काय—कची मिट्टी, नमक, मोती, हीरे, खड़ी और सब खनिज पदार्थ।

२, अपकाय—कचा पानी (कुआ, नदी, तालाब, समुद्र आदि के)

३, तेउ काय—अग्नि के प्रकार, दीपक, बिजली, चूल्हे-भट्टी आदि की अग्नि।

४. वाउकाय—हवा—पवन के जीव, सब दिशाओं का पवन, गुंजवा, आंधी आदि।

५. वनस्पतिकाय—शाक, भाजी, हरे पेड़, अनाज, काई, कंदमूल कांदे आदि।

दोहा–जीव भेद संसार में, त्रस अरु स्थावर दोय।
त्रस वे जो हलचल करें, स्थावर जो स्थिर होय॥
स्थावर इन्द्रिय एक गुन, भेद कहीं हैं पाँच।
पृथिवी जल अगनी तथा, वायु वनस्पति साँच॥

---

१ गुन=गाहिन।

त्रस काय।

पाठ २०

त्रस जीवों के मुख्य चार प्रकार हैं। १ बेइन्द्रिय, २ तेइन्द्रिय, ३ चौरेन्द्रिय और ४ पंचेन्द्रिय।

१ बेइन्द्रिय—दो इन्द्रिय (शरीर और मुँह) वाले जीव जैसे कीड़े, जोंक, अलसिया, शंख, छीप आदि।

२ तेइन्द्रिय—तीनइन्द्रिय (शरीर, मुँह, और नाक) वाले जीव। जैसे, कीड़ी, मकोड़ी, जूँ, खट-मल आदि।

३ चौरेन्द्रिय—चार इन्द्रिय (शरीर, मुँह, नाक और आँख) वाले जीव। जैसे-मक्खी, मच्छर, भौंरे, पतंग, टिड्डी आदि।

३ पंचेन्द्रिय—पांच इन्द्रिय (शरीर, मुँह, नाक, आँख, और कान) वाले जीव। जैसे-गाय, मगर, पक्षी आदि तिर्यंच, मनुष्य, देवता और नर्क के जीव।

चौपाई—हों जिनके शरीर मुख दो ही।
बे-इन्द्रिय कहलावे सो ही॥
तन मुख और नाक जो पाते।
वे त्रस तेइन्द्रिय कहलाते॥

तन मुख नाक आँख जो राखे।
चउरेन्द्रिय सब उन को भाखे॥
तन मुख नाक आँख अरु काना।
पंचेन्द्रिय अस जीव बखाना॥

शिक्षा—इन जीवों को जान कर हमें किसी को दुःख नहीं देना चाहिये क्योंकि दुःख देने से दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई जीव दुखी हो तो उसका दुःख दूर करने का उद्यम करना चाहिये वह हमारा पवित्र काम है।

पांच इन्द्रियाँ

२१—पाठ।

१ स्पर्श इन्द्रिय-ठंडा, गर्म, मुलायम, भारी आदि स्पर्श जानने वाली चमड़ी (शरीर)।

२ रस इन्द्रिय—मीठा, खट्टा, खारा आदि स्वाद जाननेवाली और बोलनेवाली जीभ (मुंह)।

पांच इंद्रियों की प्राप्ति क्रम से इस प्रकार होती है, नीचे से ऊपर जो इंद्रियां हैं वे क्रम से बढ़ती हैं, जैसे सबसे पहिला शरीर है तो एकेंद्रिय को एक शरीर है, पश्चात् मुख है तो द्वेंद्रिय को शरीर और मुख है (हां कोई भी इंद्रियां द्वेंद्रिय की नहीं हो सकती सब की क्रम से ही होती हैं) पश्चात् नाक, आंख, कान क्रम से ऊपर आते हैं, इसी क्रम से जीवों में बढ़े हैं। शिक्षक महोदय विद्यार्थियों को दिखाकर समझाने की कृपा करें।

३ घ्राण इन्द्रिय—सुगंध, दुर्गंध आदि गंध जाननेवाली नासिका (नाक)।

४ चक्षु इन्द्रिय—लाल, काला, पीला आदि रूप को जाननेवाली आँख।

५ श्रोत इन्द्रिय—जीव शब्द, अजीव शब्द आदि सुननेवाला कान।

दोहा।

स्पर्श रस अरु घ्राण ये, चक्षु श्रोत्र मिल पाँच।
एक पाय एकेन्द्रियों, पंचेन्द्रिय क्रम जाँच॥१॥

चार गति।

संसारी जीवों को भटकने (गमन करने) के स्थान को गति कहते हैं। गति चार हैं।

१ नारकी—पापी जीवों को जाने की नीचे लोक में जगह है। जहाँ अनंत दुःख है।

२ तिर्यंच—झूठे, कपटी जीवों के उपजने के जानवर आदि के स्थान। इस लोक में हैं।

३ मनुष्य—सच्चे, सरल जीवों के उपजने के स्थान। इस लोक में हैं।

४ देवता—धर्मी, परोपकारी जीवों के उपजने के स्थान ऊँचे लोकमें हैं, जहाँ बहुत सुख है।

सब गति से छूटने वाले सिद्ध होते हैं। सिद्ध स्थान। सबसे ऊँचा है जहाँ अनंत सुख है।

दोहा।

नर्क, तिर्यंच अरु देवता, मनुष्य गति ये चार।
नीचे नर्क ऊँचे देव हैं, दो गति मिश्री धार ॥ १
हिंसादिक से नर्क हो, झूठ कपट तिरजंच।
सरल भाव मानव बने, व्रत तप देव न रंच ॥ २

देवगुरु धर्म

२२—पाठ।

देव।

नवकार (नमस्कार) मन्त्र[1] के पहिले दो पद देव के हैं। अरिहंत और सिद्ध। देव सब कुछ जानते और देखते हैं। देव वीतराग अर्थात् पूर्ण समभावी होते हैं। देव को अनंत सुख होता है। देव अनंत शक्तिमान होते हैं। देव सब विकार और दोषों से रहित होते हैं। उनके पास स्त्री आदि भोग सामग्री नहीं होती, कारण वे राग रहित हैं; तथा धनुष, त्रिशूल, गदा, तलवार भाला आदि शस्त्र नहीं होते कारण वे द्वेष रहित व अभय हैं।

---

1 मन्त्र=हितकारी शब्द या वाक्य।

गुरु।

पीछे के तीन पद गुरु के हैं आचार्य जी, उपाध्याय जी और साधु जी। वे पाँच महाव्रत पालते हैं। पाँच महाव्रत ये हैं:—

१—अहिंसा २—सत्य ३—अचौर्य ४-ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह (संतोष)। गुरु भांग, गाँजा, तमाखू आदि सब व्यसनों से रहित होते हैं। गुरु स्त्री, धन और भोग के सर्वथा त्यागी होते हैं। गुरु दिन रात ज्ञान-ध्यान व तप-संयम से अपना व पर का कल्याण करते हैं।

धर्म—

पवित्र कर्तव्य को धर्म कहते हैं। धर्म से सच्चा सुख मिलता है। धर्म से सब दुःखों का नाश होता है। किसी जीव को दुख नहीं देना, सच बोलना चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य पालन करना और संतोषी रहना धर्म है। क्षमा, विनय और उदारता धर्म है। दान, शील, तप और शुभ भावना धर्म है। ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप भी धर्म हैं।

नौ-तत्व।

२७—पाठ।

१, जीव—जो सुख दुःख को जाने, ज्ञान जिसका लक्षण है।

२, अजीव—सुख दुख कभी न जाने, जड़ जिसका लक्षण है।

३, पुण्य—भले काम जिनसे सुख हो।

४, पाप—बुरे काम जिनसे दुःख मिले।

५, आश्रव—शुभाशुभ कर्मों के आने के काम।

६, संवर—कर्म को रोकने के काम।

७, निर्जरा—कुछ अंश से कर्म दूर करने के काम।

८, —बंध—जीव के साथ कर्मों का बंधना।

९, मोक्ष—सब कर्मों का छूट जाना और अनंत सुख का पाना।

(प्रश्नोत्तर)

(१) प्रश्न—जैन किसको कहते हैं ?

उत्तर—जो क्रोध, मान, कपट और लोभ को जीतने का प्रयत्न करे उसे जैन कहते हैं।

(२) प्रश्न—धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर—विवेक पूर्ण अहिंसा और सत्य।

(३) प्रश्न—जैन कौन बन सकता है ?

उत्तर—उच्च नीतिवान मनुष्य ही जैन बन सकता है, चाहे वह किसी भी जाति का हो।

गिन्ती

१	२	३	४	५	६
एक	दो	तीन	चार	पाँच	छै
७	८	९	१०	११	१२
सात	आठ	नौ	दस	ग्यारह	बारह
१३	१४	१५	१६	१७	१८
तेरह	चौदह	पन्द्रह	सोलह	सत्रह	अठारह
१९	२०	२१	२२	२३	२४
उन्नीस	बीस	इक्कीस	बाईस	तेईस	चौबीस
२५	२६	२७	२८	२९	३०
पच्चीस	छब्बीस	सत्ताईस	अट्ठाईस	उनतीस	तीस
३१	३२	३३	३४	३५	३६
इकतीस	बत्तीस	तेतीस	चौंतीस	पैंतीस	छत्तीस
३७	३८	३९	४०	४१	४२
सैंतीस	अड़तीस	उनतालीस	चालीस	इकतालीस	बयालीस
४३	४४	४५	४६	४७	४८
तेतालीस	चवालीस	पैंतालीस	छयालीस	सैंतालीस	अड़तालीस
४९	५०	५१	५२	५३	५४
उनचास	पचास	इक्यावन	बावन	तिरपन	चौपन
५५	५६	५७	५८	५९	६०
पचपन	छप्पन	सत्तावन	अठावन	उनसठ	साठ
६१	६२	६३	६४	६५	६६
इकसठ	बासठ	तिरसठ	चौसठ	पैंसठ	छासठ
६७	६८	६९	७०	७१	७२
सड़सठ	अड़सठ	उनहत्तर	सत्तर	इकहत्तर	बहत्तर
७३	७४	७५	७६	७७	७८
तिहत्तर	चौहत्तर	पचहत्तर	छहत्तर	सतहत्तर	अठहत्तर

७९	८०	८१	८२	८३	८४
उन्नासी	अस्सी	इक्यासी	बियासी	तिरासी	चौरासी
८५	८६	८७	८८	८९	९०
पचासी	छयासी	सत्तासी	अठासी	नवासी	नब्बे
९१	९२	९३	९४	९५	९६
इक्यानवे	बानवे	तिरानवे	चौरानवे	पचानवे	छयानवे
९७	९८	९९	१००		
सत्तानवे	अठानवे	निन्यानवे	सौ ॥		

आभार

जैन सीरीज को तयार कराने तथा प्रकाशित करने में निम्न लिखित उदार महानुभावों ने आर्थिक सहायता देने की महती कृपा की है:—

२००) श्रीमान् मिश्रीमलजी वैद्य फलोदी (मारवाड़)
२५१) श्रीमान् अगरचंदजी मानमलजी चोरड़िया मद्रास
२००) श्रीमान् अगरचन्दजी चोरडिया चैरिटी फण्ड— श्रीमान् अमोलकचन्दजी गेलड़ा (मद्रास) द्वारा
५१) श्रीमान् अमोलकचन्दजी इन्द्रचन्दजी गेलड़ा-मद्रास
१००) श्रीमान् लालचन्दजी नाहर, पूनमली (मद्रास)
२००) श्री महावीर जैन पाठशाला-फरमकुण्डा श्री० सेठ विजरायजी मूता द्वारा ।
१००) श्री शान्तिनाथ जैन सुधारक मण्डल-फरमकुण्डा श्री मानमलजी कोचेटा द्वारा
८०) श्री० हंसराजजी गणेशमलजी खोंटेड़-बगड़ी
८०) श्री० [illegible] लोढ़ा बगड़ी
२१) श्री० [illegible] -मद्रास

आत्म-जागृति पुस्तक-माला पुष्प—६

भाव अनुपूर्वि

का

स्वरूप

सहायक—

श्रीमान् सेठ शेपमलजी मुल्तानचंदजी धारीवाल

बगड़ी (मारवाड़)

मवार ५०००
३००० }

वीर सम्वत् २४५४

{ मूल्य पू. आना
ज्ञान प्रचारार्थ

भाव अनुपूर्वि

का

स्वरूप

जो आत्मा के राग, द्वेष, मोहादि भाव-शत्रुओं को जीतने का उद्यम करें उन्हें जैन कहते हैं। इसीलिये जैन धर्म को स्थापने वाले महापुरुषों को अरिहन्त देव कहते हैं। 'अरि' का अर्थ है शत्रु। 'हन्त' का अर्थ है नाश करने वाले। सच्चे शत्रु क्रोधादि ही हैं और जो इन सर्व दोषों का सर्वथा क्षय करें वे 'अरिहन्त' होते हैं।

आज जैन धर्म एक जातीय धर्म या पक्ष विशेष हो गया है, परन्तु वास्तव में धर्म मात्र को जैनत्व—आंतर शत्रुओं पर विजय—करना पड़ेगा और बिना आंतर दोष के क्षय किये कभी सच्ची शांति, सत्य सुख नहीं मिलेगा, इससे जैन धर्म के नाम को भले ही सब न स्वीकारें परन्तु इसके गुण को तो सब चाहते हैं।

शास्त्र में अनुपूर्वि पढ़ने के, माला फेरने के नियम कोई न न लिये या अनुपूर्वि पंचपद की इस शैली को किसी स्थान में दृष्टि-गोचर नहीं होती है, तब आज इसका बहुत प्रचार कैसे है, इसकी शोध करते यह मालूम होता है कि पूर्वाचार्यों ने समाज की हालत देखकर इसका उपदेश दिया (प्ररूपणा की) है। जरूर उपदेशदाता तो परम उपकारी हैं परन्तु हम अनुयायी लोग ज्ञान की कमी से

हर एक साधन को सर्वस्व समझकर उसे रूढ़ीगत कर देते हैं, परन्तु उच्च आशय को समझने की कोशिश नहीं करते। ज्ञान खूब सीखना, मनन करना, ध्यान करना, भावना चिन्तवन करना, इत्यादि स्पष्ट शास्त्र आज्ञाओं में माला फेरना अनुपूर्वि चितारना; ऐसा क्यों नहीं है ? इसका उत्तर हमारी अल्पबुद्धि के अनुसार यही मिलता है कि जिस काल में श्रावक व साधु वर्ग ज्ञान पढ़ने में आलसी हुए, पठन-पाठन की रुचि मंद हुई, उसी समय विचारशील हितचिंतक आचार्यों ने निकम्मी बातों या प्रमाद से बचाने के लिये माला व अनुपूर्वि का शुभ अवलंबन दिया। इससे प्रमाद घटा व वचन काया वश हुई व कुछ मन भी स्थिर हुआ। अब माला या अनुपूर्वि का अभ्यास पड़ने पर मन की एकाग्रता कम होने लगी और एकाग्रता है तो दूसरे विचारों की कमी होना है परन्तु आत्म-स्वरूप विचार या धर्म ध्यान की चार भावना नहीं विचारी जा सकती। १—मैं एक हूँ क्रोधादि रहित हूँ। २—अनित्यपने के विचार ये भोग नाशवान् हैं। ३—अशरणाणु पेहा। ४—संसार भटकने का मूल कारण चार कषायदय हो ऐसा नहीं विचारा जा सकता। परन्तु इतना विचार करने की अपने में बुद्धि व शक्ति कहाँ है कि हर एक बात का स्वरूप समझें, परन्तु लोग आज तो देखा देखी या प्राचीन रिवाज के अनुसार करने में ही स्वधर्म समझते हैं। पाठक, यदि धैर्य और बुद्धि से विचारेंगे तो स्पष्ट मालूम होगा कि अपन लोग प्रत्येक धर्म क्रिया के आशय को यदि विचारें तो बहुत लाभ होगा।

पाँच पद के नाम परम पवित्र हैं, यह निर्विवाद है। कारण इनसे श्रेष्ठ जगत में कोई नहीं है, परन्तु यह पूँछा जाय कि केवल नाम

लेने से दुःखों का छुटकारा होता है या गुण ग्रहण करने से ? जो नाम से ही सिद्धि होवे तो अनन्त वार नाम लिया, यह शास्त्र सिद्ध है फिर क्यों मुक्ति न हुई ? उत्तर एक ही मिलेगा कि गुण ग्रहण न किये । प्रत्यक्ष अनुभवसिद्ध बात है कि भोजन के नाम से तृप्ति नहीं होती परन्तु भोजन करने से ही तृप्ति होती है । शास्त्रकार कहते हैं कि नाम से पुण्य प्रकृति बंधती है । अर्थ-विचार से अल्पकर्म क्षय होता है और अनुभव अर्थात् गुण ग्रहण करने से मोक्ष होती है अर्थात् वैसे बन जाते हैं ।

अपन सब सुख, श्रेय और उन्नति को चाहते हैं तो अवश्य परीक्षापूर्वक उन्नति का मार्ग लेना चाहिये । पाँच पद अज्ञान और कषाय के त्याग से मिलते हैं। बहुत अंश (तीन चौक) की कषाय व अज्ञान घटे तब क्रमशः साधु, उपाध्याय और आचार्य पद मिलते हैं । जब सब कषाय क्षय होवे तब ज्ञानावरण नाश होकर पूर्णज्ञान (केवल ज्ञान) प्रगट होता है और अरिहंत बनते हैं । फिर आयु पूर्ण होते ही शरीर छूटने से सिद्ध होते हैं। इस प्रकार पाँचों पद एक ही जीव लेकर मोक्ष में जाता है (स्थूल पदवी तो नाम कर्म के उदय से आचार्यादि की मिलती है। यह जीव का स्वभाव नहीं है परन्तु पंचपद के गुण हैं, सो जीव का स्वभाव है) अब पाँचों पदों के गुण प्रकट करने के हेतु एक उत्तम महात्मा ने यह भाव अनुपूर्वि का दान भाग्योदय से दिया है । आशा है कि यह लाभदायी होगा । इससे यह न मान लेवें कि माला व अनुपूर्वि गिनना बुरा है । जो प्रमादी हैं वे विष का पान करते हैं और अनुपूर्वि माला गिननेवाले दूध मिश्री का पान करते हैं। साथ में उसी समय क्रोधादि क्षय की भावना हो तो अमृतरस के पान तुल्य फ़ायदा

होवेगा ऐसी मान्यता से यह प्रयत्न किया है। श्री आचारांग सूत्र मे स्पष्ट वचन हैं कि "प्रथम उपशांत तप करे" यह कषाय शांत की भावना से होता है। पुनः कहा है कि क्रोध से मान होवे, मान से कपट होवे, कपट से लोभ होवे, लोभ से रागद्वेष होवे, रागद्वेष से जन्म, जरा, मरण, नर्क, तिर्यंच आदि के अनन्त दुःख होवें और उसके बाद दूसरे ही वचन में फरमाया है कि क्रोध जीतने से कपट जीते; कपट जीतने से लोभ जीते; लोभ जीतने से रागद्वेष जीते; रागद्वेष जीतने से जन्म, जरा, मरण, नर्क, तिर्यंच आदि अनन्त दुःखों से छूटे। क्रोध करते समय अपनी बड़ाई हो जाती है, इसीसे मान होवे ऐसा कहा गया है। मान कुछ बढ़ाके होता है, इसीसे फिर स्वदोष छिपाने के कारण कपट करना पड़ता है। कपट करने वाला इष्ट का लोभ करता है। लोभी को ही इष्ट में राग, अनिष्ट में द्वेष होता है और संसार का बीज ही रागद्वेष है "रागो च दोषो वि य कम्म बीयं" कर्मबंध के कारण ही दो हैं। "दोहिं बंधणेणं रागेणं दोसेणं" धर्म के चारद्वार शास्त्र में बताये गए हैं—(१) क्षमा (२) विनय (३) सरलता और (४) संतोष। क्रोधादि क्षय और क्षमादि प्रगट करने की भावना हितकर है। राग के दो भेद माया और लोभ हैं। द्वेष के दो भेद क्रोध और मान हैं। अज्ञान में जीव क्रोधादि कषाय करता है; इसलिये अज्ञान क्षय की भावना भी जरूरी है। एक मनुष्य सेठ या राजा को भजता है वह कुछ इनाम पाता है। दूसरा सेठ या राजा के गुण धारण करता है वह उस रूप का तुरन्त होता है। यह क्रोधादि क्षय की भावना पंचपद रूप होने का काम है।

आप अनुपूर्वि पढ़ें तो कृपया इस प्रकार पढ़ने का यत्न करें।

यह पांच पदों के गुण प्रगट करने की ही भावना है। इससे बहुत कर्मक्षय व आत्मशांति का अनुभव होगा। क्रोध, मान, कपट, लोभ और अज्ञान घटने से इसलोक और परलोक में अतुल आनंद प्राप्त होगा। इसको अवश्य अभ्यास में लेवें। नवीन ज्ञान सीखने-वालों को तत्त्वज्ञान और शास्त्ररहस्य ही सीखना और वहाँ शिक्षा आवे सो लेकर कषाय घटाने में उपकारक बनाना। जो लोग ज्ञान पढ़ने में उद्योग नहीं करते हैं वे उत्तम भावना का अवलंबन समझ कर इसका पठन करें; यही विनंती है। यह अंतरंग दोषों के नाश की भावना है और भावना ही जीवन को पलटाने का श्रेष्ठ साधन है। जैसी भावना होती है वैसी ही सिद्धि अर्थात् प्राप्ति होती है। इसका नाम भाव अनुपूर्वि है; कारण भावों की शुद्धि करने का साधन है, अत्र अकषाय को ही शुद्ध ध्यान कहा है। इसको माला की शैली से भी गिन सकते हैं। ऐसी माला गिनने से ये दोष घटकर महान् लाभ होता है।

भाव अनुपूर्वि गिनने की समझ इस प्रकार है—

(१) वहाँ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो।

(२) वहाँ मान नाश हो विनय प्रगट हो।

(३) वहाँ माया [कपट] नाश हो सरलता प्रगट हो।

(४) वहाँ लोभ नाश हो संतोष प्रकट हो।

(५) वहाँ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो।

इसी प्रकार हरेक पांच विषयों की अनुपूर्वि इसमें गिन सकते हैं। जैसे पांच आचार की अनुपूर्वि—

(१) अज्ञान नाश हो सत्यज्ञान प्रकट हो।

(२) मिथ्यात्व नाश हो समकित प्रकट हो।

(३) विषय कषाय नाश हो संयम प्रकट हो।
(४) प्रमाद नाश हो शुद्ध तप प्राप्त हो।
(५) कुपुरुषार्थ नाश हो पंडितवीर्य प्रकट हो।

पांच नवकार की अनुपूर्वि—

(१) श्री अरिहंतदेव को नमस्कार करता हूँ मैं भी रागद्वेष मोह को नाश करने से अरिहंत होऊँगा।

(२) सिद्ध भगवान को नमस्कार हो मैं भी सकल कर्म नाश करने से सिद्ध होऊँगा।

(३) श्री आचार्य महाराज को नमस्कार हो मैं भी ज्ञानादि पांच आचार प्रकट करूंगा।

(४) श्री उपाध्यायजी महाराज को नमस्कार हो। मैं भी ज्ञान करके उपाध्याय बनूँगा।

(५) सकल मुनिगण को नमस्कार करता हूँ। मैं भी हिंसा विषय कषाय छोड़कर मुनि बनूँगा वह दिन धन्य होगा। इस प्रकार अन्य भी इच्छानुसार गिन सकते हैं।

१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो

१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो

१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रटम हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो

२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रकट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो

क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	मान नाश हो विनय प्रगट हो	२ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो

२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो

१ क्रोध नाश हो क्षमा सकट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रकट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो मरलता प्रगट हो

१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रकट हो	२ मान नाश हो विनय प्रकट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रकट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो

१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो

२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो

१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो

३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो

२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रकट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रकट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो

२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो

२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रकट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
४ लोभ नाश हो सन्तोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो

३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो
५ अज्ञान नाश हो ज्ञान प्रगट हो	४ लोभ नाश हो संतोष प्रगट हो	३ कपट नाश हो सरलता प्रगट हो	२ मान नाश हो विनय प्रगट हो	१ क्रोध नाश हो क्षमा प्रगट हो

सदुपदेश

प्रेम सहित वन्दौं प्रथम, जिनपद कमल अनूप,
ताके सुमरत अधम नर, होवत शान्तस्वरूप । १ ।
तुव शरणे आयो प्रभू, राखि लेउ निज टेक ।
निर्विकल्प मम सिद्धजी, देवो विमल विवेक । २ ।

राग निवारण अंग

अरे जीव भव बन विषै, तेरा कौन सहाय ।
जिनके कारण पचि रह्या, तैंतो तेरे नाय ॥ १ ॥
संसारी को देखिले. सुखी न एक लगार ।
अब तो पीछा छोड़िदे, मत धर सिर पे भार ॥ २ ॥
झूठे जग के कारणे, तू मत कर्म बँधाय ।
तू तो रीता ही रहै, धन पैला ही खाय ॥ ३ ॥
तन, धन, संपति पाय के. मगन न हो मन मांय ।
कैसे सुखिया हो गया, सोचे लाय लगाय ॥ ४ ॥
ठाठ देख भूले मति, ए पुद्गल परमाय ।
देखत देखत थांहरै. जासी थिर न रहाय ॥ ५ ॥
लूटेगा ज्ञानादि धन, ठग सम यह संसार ।
मीठे वचन उचारि के, मो फाँसी गल डार ॥ ६ ॥
किधौं भूत तोकौं लग्यो, करे न तनक विचार ।
ना माने तो पर खिले, मतलब को संसार ॥ ७ ॥
काया ऊपर थांहरे, सब सूं अधकी प्रीत ।
या तो पहले सबन में, देगी दगो नचीत ॥ ८ ॥

विषय दुखन को सुख गिनै, कहूँ कहाँ लगि मूल ।
आँख छता अंधा हुआ जाणपणा में धूल ॥ ९ ॥
नित प्रति दीखत ही रहे, उदै अस्त गति भान ।
अजहुँ न ज्ञान भयो कछू, तू तो यड़ो अयान ॥१०॥
किसके कहे निश्चिंत तू, सिर पर फिर जु काल ।
बांधे है तो बांध ले, पानी पहिले पाल ॥११॥
आया सो सब ही गया, अवतारादि विशेष ।
तू भी यों ही जायगा, इण में मीन न मेष ॥१२॥
यो अवसर फिर ना मिलै अपनो मतलब सार ।
चुकते दाम चुकाय दे, अब मत राख उधार ॥१३॥
कैसे गाफिल हो रहा, निवड़ा आ तकरार ।
निपजी खेती देय क्यों, याटी सटे गँवार ॥१४॥
धर्म विहार कियो नहीं, कीनो विषय विहार ।
गांठ खाय रीते चले, आके जग हटवार ॥१५॥
काज करत पर घरन के, अपना काज बिगार ।
सौत निवारे जगत का, अपनी कुंवरी थार ॥१६॥
नहिं विचार तैंने किया, करना था क्या काज ।
उदै हो गया कर्म फल, वय उपजेगी लाज ॥१७॥
गूठे संसारीन की, छूटेगी जब लाज ।
इनसों अलगा होयगा, तब सुधरेगा काज ॥१८॥
अपनी पूंजी सूं करो, निश्चल कार विहार ।
यांध्या सो ही भोग ले, मति कर और उधार ॥१९॥
नया कर्म अरण काढ़ि के, करसी कार विहार ।
देणा पड़सी पार का किम होसी छुटकार ॥२०॥

विषय भोग किंपाक सम, लखि दुख फल परिणाम।
जब विरक्त तू होयगा, तब सुधरेगा काम ॥२१॥
येरे मन मेरे पथिक[1], तून जाव वहँ ठौर।
बटमारा पाँचू[2] जहाँ करैं साहु कूं चौर ॥२२॥
आरम्भ विषय कषाय कूं, कीनी बहुत हि वार।
कछु कारज सरिया नहीं, उलटा हुआ खुवार ॥२३॥
चारूँ[3] संज्ञा में सदा, सुतै निपुन चित लाग।
गुरु समझावे कठिन सूँ, उपजै तउ न वैराग ॥२४॥
खैर हुआ जो कुछ हुआ, अब करनो नहिं जोग।
बिना विचारे तैं किया, ताको ही फल भोग ॥२५॥

द्वेषनिवारण अंग

बुरा-कहै कोउ तो भलो, तो तू भला जु मान।
बूरा मीठा होय है, सब बनि है पकवान ॥ १ ॥
कटु तीक्षण अति विष भरी, गाली शस्त्र समान।
अशुभ कर्म[4] गुम्मड भियो, यों जिय सुलटी जान ॥ २ ॥
कटुक वचन को कहदिया, लगेजु दिल में तीर।
समदृष्टि यूं समझले, जो जान्या अतिवीर[5] ॥ ३ ॥
वैरी होता तो कबहु, नहिं कहता कटु बात।
सज्जन दीसै मांहिरा, रुज[6] लखि कटुक[7] खवास ॥ ४ ॥
औगुन सुनिके आपणा, रेमन सुलटी धार।
मो गरीब कूं जानि के लीना बोझ उतार ॥ ५ ॥

---

१. मुसाफिर २. शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्श पाँच इन्द्रियों के भोग ज्ञान व आत्मिक सुख को लूटने वाले भाव। ३. आहार। ४. मूल अशुभ कर्तव्य। ५. बलवान् ६. रोग। ७. कड़वी औषधि।

मैं भूल्यो शुभ राह कूं, इसने दई बताय ।
दुर्जन जानि परे नहीं, सज्जन हो दरसाय ॥ ६ ॥
अस्त ज्ञान सूरज हुआ, मैं भूल्यो निज हाल ।
निंदा रूप मसाल ले, इणे दिखाई राह ॥ ७ ॥
सुनि निन्दक के वचन कूं, चित मति करै उचाट ।
यह दुर्गंधित पवन अति, बहती कूं मत डाट ॥ ८ ॥
कुवचन शर क्या कर सकै, तू होजा पाषान ।
तेरो कछु बिगरे नहीं, बाका ही अपमान ॥ ९ ॥
कुवचन गोली के लगे, जो ले मनकूं मार ।
आपहि ठण्डी होयगी, होजा शीतल गार ॥ १० ॥
तैंने ऊपर सूं कही, मैंने समझी ठेठ ।
सब ही खटका मिट गया, एक रह गया पेट ॥ ११ ॥
रे चेतन सुलटी समझ तेरा सुधरया काज ।
कुवचन धरवर थांहरी, इणने सौंपी आज ॥ १२ ॥
होगी सोहि नोसरै, वस्तु भरी जिहि माहिं ।
या का गाहक मति बनै, तेरे लायक नाहिं ॥ १३ ॥
अपना अवगुण सुण करी, मति जाने जिय रीस ।
मन में तू यूं समझलै, मूनें दे आसीस ॥ १४ ॥
क्रोध अगनि दिल मति लगा, सुन अजथारथ बोल ।
क्षमा रूप जल छिड़किये, नेक न लागै मोल ॥ १५ ॥
दुर्जन चुप है है नहीं, तू तो छिन चुप साध ।
तृन बिन परि है अगनि कुं, आपहि होम समाधि ॥ १६ ॥
तू तृण सम कटु वचन सुनि, क्रोध अगनि मति मांहि ।
उपल[२] नीर सम करहु मन, तब मिलि हैं शिवराज ॥ १७ ॥

---

१ पूर्वकथित २ पत्थर–

आई गई करि गालि कूं, क्रोध चंडाल समान ।
नेतर पिछान चंडालनीं, पछे पकड़ें आन ॥१८॥
पुत्र सहाय नहीं होंहिंगे, रे जिय सच्चीं जान ।
क्रोध करीज्यूं होयगो, साधू रजक समान ॥२०॥
आतम[2]वस्त्र मैला लखि, इणनैं [1]धोना धोय ।
कटुकवचन साबुन करी, निर्मल जानि के मोय ॥२१॥
जौंहरि होके मति करै, कुंजड़ी के संग रार ।
रतन विखरसी थांहरा, भाजी सटे गँवार ॥२१॥
साला की गाली दई, ए विचार चित ठारि ।
भगनी सम इणकी त्रिया, इम समझो मत धारि ॥२२॥
किरतघनी बननौं नहीं, दई गार इण मोए ।
अस आतम सीतल करौं, मम उधार तब होय ॥२३॥
गारी एकहि होत है, बोलत होत अनेक ।
रे जिय तू बौलै नहीं, तो वही एक ही एक ॥२४॥
अनंत काल बोले प्रभू, देख रखे यह भाय ।
परि है कटु वच श्रवन में, ते किमि टाले जाय ॥२५॥

अनुभव विचार तथा ज्ञान अंग

फूकस विषयविकार सम, मति भखि मूढ गँवार ।
अनुभव रस तू चाखिलै गुरु मुख करि निरधार ॥१॥
पाठ किये तैं एक गुन, अनुभव किये हजार ।
ताते मनकूं रोकिके, क्यों नै करे विचार ॥ २ ॥

---

१ धोबी २ "निंदा करने वाला मेरे पाप दोष रूपी मैल को धोता है।" ये शब्द प्रगट में कहने से विरोधी का अपमान होता है और झगड़ा बढ़ता है इसलिए कोई उत्तम जीव को निष्कारण निंदा का तो मन में समझने की यह बात है। ३ यह भी मन में रखना।
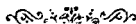
प्रकाशक—आत्म-जागृति कार्यालय, बगड़ी (मारवाड़)

मुद्रक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

सेठिया जैनग्रन्थालय पुस्तक नं. ३२.

श्री वीतरागाय नमः

श्रीसामायिकसूत्र.

(शब्दार्थ और भावार्थ समेत)

संशोधकः—

लिंबड़ी सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध शतावधानी
पंडित मुनिश्री रत्नचन्द्रजी स्वामीजी.

अनुवादकः—

धर्मचन्द्रजी सत्पुत्र भैरोदानजी
तत्पुत्र जेठमल सेठिया.
(बीकानेर-निवासी.)

प्रथमावृत्ति.
१००० प्रत.
मूल्य दो आना.

वीर सं. २४५०.
विक्रम सं. १९८०.
ई. स. १९२४.

सेठिया जैन
थमिका (
संस्कृतका
विद्यार्थीओंको
दाखल आदिका
तक पढ़ाया जाता है
विद्याभ्यासके लिये
नहीं को दिया
हंक मिले

सेठिया जैनग्रन्थालय पुस्तक नं. ३२.

श्री वीतरागाय नमः

श्रीसामायिकसूत्र.

(शब्दार्थ और भावार्थ समेत)

संशोधकः—

लिंबडी सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध शतावधानी
पंडित मुनिश्री रत्नचन्द्जी स्वामीजी.

अनुवादकः—

धर्मचन्द्रजी तत्पुत्र भैरोदानजी
तत्पुत्र जेठमल सेठिया.
(बीकानेर-निवासी.)

प्रथमावृत्ति.
५००० प्रत.
मूल्य दो आना.

वीर सं. २४५०.
विक्रम सं. १९८०.
इ. स. १९२४.

सूचना.

सर्व जैनबंधुओंको विदित हो कि सेठियाजैनग्रन्थालय तरफसे छपती हुई सब पुस्तकें विना मूल्य दी जातीथीं, जिससे हरकोईके पास एकसे अधिक एकही विषयकी पुस्तकें पहुंच जाया करतीथी, इससे कइएक आसातना भी होतीथी और पीछेसे जरुरीआतवालें जनोंको नहीं मिलती थी, इस वारेमें हमको बहुत जनोंने पत्रद्वारा सूचना की है और रुवरुभी कहा है। जिससे आगामी छपनेवाले सब पुस्तकोंकी किमत लागतमात्रसेभी कम रखनेका नियम रखा गया है और उसका जो दाम आवेगा वह इस ज्ञानवृद्धिमें ही लगा दिया जायगा।

छप रही है.

प्रकरण (थोकडा संग्रह) भा. २-(लींबडीसंप्रदायके पं. मुनिश्री उत्तमचंदजी स्वामीजी कृत)

कर्त्तव्यकौमुदी मूल श्लोकवद्ध-(शतावधानी पं. मुनिश्री रत्नचंदजी स्वामीजी कृत)

प्रस्तार रत्नावली-इसमें गंगिया अणगारका भांगा, श्रावकव्रतका भांगा, और आनुपूर्वीका भांगा इत्यादि विषयको शतावधानी पं. मुनिश्री रत्नचदजी स्वामीजीने विस्तारपूर्वक बनाया है

जैन बालोपदेश-(पं. मुनिश्री ज्ञानचन्द्रजी पंजाबी विनिर्मित)

श्री अगरचंद भैरोंदान सेठिया जैन ग्रन्थालयमे
छपी हुई अमूल्य पुस्तकें—

७ ज्ञान थोकडा तीसरा भाग, २४ ठाणा आदिका थोकडा
८ ज्ञान थोकडा चौथा भाग सात नय, चार निक्षेपा छ लेश्या का थोकडा
११ शीलरत्नसार संग्रह दूसरी आवृत्ति
१२ श्रावक स्तवन संग्रह भाग २ जा
१३ ,, भाग ३ जा
१४ सामायिक तथा नित्यनियम
१५ सुबोध स्तवन संग्रह
१६ पच्चीस बोलका थोकडा विस्तार सहित
१७ सामायिक तथा मंगलिक दोहा
१८ आलोयणा संग्रह
१९ ज्ञान बड़ोत्तरी तथा व्यवहार समकितका ६७ बोल
२० ज्ञानमाला न० १—२
२१ विविध ढाल संग्रह-इसमें पांच सुमति तीन गुप्ति की ढाल चतुर्विंशति जिन २५ सवैया, ब्रह्मचर्यकी नववाड की ढाल, साधु—आचार बावनी, निर्मोही राजारी ढाल, चेलणाराणीरी ढाल, दशवैकालिकरी ढाल, धन्नामुनिरी ढाल, नमिराजारी ढाल, वृहदालोयणा, पुद्गलगीता, साधु के आहारका १०६ दोष, बावनानाचार और समाधि-

मरणवाले की २८ भावना इत्यादिक है।

२२ अञ्जना सतीका रास तथा समकित छप्पनी

२३ लघु दंडकका थोकडा

२४ जैन ज्ञान थोकडा संग्रह—इसमें पांच सुमति तीन गुप्ति थोकडा, ज्ञानलब्धिरा थोकडा, प्रस्ताविक थोकडा, १० बोलरो वासठियो, समकित का थोकडा, साधु के आहा का १०६ दोष और ६८ बोलरो वासठियो इत्यादिक

२५ उत्तराध्ययन सूत्र मूल पत्राकार }
२६ दशवैकालिक सूत्र मूल पत्राकार } साधु साध्वी को ज्ञाय और कंठस्थ रने के लिये अच्छी

२७ रत्नाकर पचीसी तथा आत्मप्रबोध सवैया

२८ साधु प्रतिक्रमण सूत्र

२९ मयणरेहा सती की चोपाई

३० तेतीस बोलका थोकड़ा कि॰ एक आना

३१ नमीपवज्जाअध्ययन (उ॰ अ॰ ९) पत्राकार

३२ श्रीमहावीरजिनस्तुति (सू॰ अ॰ ६) पत्राकार

३३ सामायिकसूत्र हिन्दी शब्दार्थ, भावार्थ और प्राकृत शब्दकोष समेत कि॰ दो आना

ज्योतिषसार प्राकृत हिन्दीभाषान्तर समेत ,, १२ आना

प्रस्तावना.

प्रत्येक जीवमात्र अविच्छिन्न सुख और परमशान्तिकी अभिलाषा करते है, इसलिये ही हरेक मनुष्य पृथक् पृथक् मार्गको स्वीकार कर सुखका ही खोज कर रहे हैं, असह्य दुःखोंसे अत्यन्त परीश्रम करते हुए क्षणिक भी सुख प्राप्त हुआ या न हुआ कि पुनः दुःखका प्रादुर्भाव हो जाता है, परंतु शुद्ध और सच्चा परिश्रम किये विना अविच्छिन्न सुख प्राप्त होता नहीं है। सुखका समुद्र अपनी पास होने परभी ज्ञानरूपी दीपकके अभावसे ही सब परिश्रम निष्फल होता है, यही कारणसे ज्ञानी पुरुषोंने अखंड सुख क्रमशः प्राप्त होनेका सुगम और सरल रास्ता सामायिक व्रत द्वारा ही बंधा हुआ हैं, इससे चंचल और अव्यवस्थित मनोव्यापार शान्त होकर आत्मा कुच्छ अपूर्व आनन्दका भोक्ता बनता है।

आर्त्त और रौद्रध्यानका त्याग कर सम्पूर्ण सावद्य (पापमय) कार्योंसे निवृत्त होना और एक मुहूर्त्त पर्यन्त मनोवृत्तिको समभावमें रखना, इसका नाम सामायिक व्रत है। आवश्यकनिर्युक्तिमें भी कहा है कि राग और द्वेषके वश न होकर समभाव-मध्यस्थभाव में रहना अर्थात् सबके साथ आत्मतुल्य व्यवहार करना सामायिकव्रत है।

सामायिकके तीन भेद हैः—१ सम्यक्त्वसामायिक—

शुद्ध समकित याने सदेव-सद्गुरु और सद्धर्मको पहीचान कर मिथ्यात्वका त्याग करना। २ श्रुतसामायिक-समभाव प्राप्त हो ऐसे ज्ञानका अभ्यास एक स्थान पर करना। ३ चारित्रसामायिक-इसके दो भेद हैं, देशविरति औ सर्वविरति। अंतरमुहूर्त्तसे लेकर इच्छा मुजब समभाव काल व्यतीत करना यह देशविरति सामायिक है, य गृहस्थोंके लिये है। आगार रहित सब प्रकारका औ जिंदगी तकका महाव्रत लेना यह सर्वविरति सामायिक यह व्रत साधु मुनिराजके लिये है।

सामायिक यह मनको स्थिर रखनेकी अपूर्व क्रिया आत्मिक अपूर्व शान्ति प्राप्त करनेका संकल्प है, परम पानेका सरल और सुखद रास्ता है, पापरूप कचरे भस्मीभूत करनेका यंत्र है, अखंडानन्द प्राप्त करनेका गुप्त है, दुःखसमुद्रको तीरनेका श्रेष्ठ जहाज है और अनेक कर्म मलिन हुआ आत्माको परमात्मा बनानेका सामर्थ्य, योगि क्रिया (सामायिकक्रिया) ही है। यह क्रिया करने आत्मामें रहा हुआ दुर्गुणों नाश हो कर सद्गुणों प्र होते हैं और परमशान्तिका अनुभव होता है। शास्त्रका भी कहा है कि—

दिवसे दिवसे लक्खं देइ सुवन्नस्स खांडियं एगो
एगो पुण सामाइयं करेइ न पहुप्पए तस्स ॥ १

अर्थ—कोई मनुष्य प्रत्येक दिन एक एक लाख खंडी सुवर्णका दान दे और कोई एक सामायिक ही करे। इन दोनों मेंसे एक सामायिक करनेवालाकी बराबर हमेशा बहुत सुवर्णका दान देनेवाला होता नहीं है ॥१॥ पुण्यकुलक ग्रन्थमें कहा है कि—

बाणवइ कोडीओ लक्खा गुणसट्ठी सहस्स पणवीसं।
नवसयपणवीसजुआ सतिहाअडभाग पलियस्स ॥२॥

अर्थ—शुद्ध सामायिक करनेवाला ९२५९२५९२५⅜ इतने पल्योपमवाला देवगतिका आयुप बांधता है ॥ २ ॥ फिर भी कहा है कि—

सामाइयं कुणंतो समभावं सावओअ घडिअदुगं।
आउ सुरेसु बंधइ इत्तिअमित्ताइं पलिआइं ॥३॥

अर्थ—दो घडी सामायिक को करनेवाला श्रावक ल्पोपमवाला देवगतिका आयुष्य बांधता है ॥ ३ ॥ अन्य पश्चर्या आदिसे समता भाववाला सामायिक शास्त्रकारने श्रेष्ठ कहा है—

तिव्वतवं तवमाणो जं न विणिट्ठवइ जम्मकोडीहिं।
तं समभाविअ चित्तो खवेइ कम्मं खणद्धेण ॥४॥

अर्थ—जो मनुष्य करोडों जन्म पर्यन्त तीव्रतप करते ए भी कर्मोंका क्षय नहीं करता है, वह यदि एक समभासे सामायिकव्रत करे तो अर्द्ध क्षणमें ही नाश करता है ४ ॥ पुनः कहा है कि—

जे केवि गया मोक्खं जेविय गच्छंति जे गमिस्संति
तें सव्वे सामाइअप्पभावेणं मुणेयव्वं ॥ ५ ॥

अर्थ—जो कोई मोक्षमें गये, जा रहे हैं और जा-यगें वे सब सामायिकका ही माहात्म्य जानना ॥ ५ ॥ फिर भी कहा है कि—

किं तिव्वेण तवेणं किं च जवेणं किं चरित्तेणं।
समयाइविण मुक्खो नहु हुओ कहवि नहु होइ॥६॥

अर्थ—चाहे जैसे तीव्र तप करे, जाप जपे या द्रव्य चारित्रका ग्रहण करे परंतु समभाव विना मोक्ष किसीको हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं ॥ ६ ॥

ऐसा सामायिक का उत्कृष्ट माहात्म्य है, वस्तुतः सामायिक यह मोक्षका अंग है। इस तरहका सामायिक उदय आना महादुर्लभ है, शास्त्रकारने भी कहा है कि देवता भी अपने अन्तःकरणमें समभाव प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं कि एक मुहूर्त्तमात्र सामायिकव्रत जो उदय आ जावे तो मेरा देवपन सफल हो। यदि मानव भव पाकर भी सामायिक न उदय आवे तो उनका मानवभव भी निष्फल समझना चाहिये। सामायिकव्रत लेकर वैराग्य और शान्तरसकी वृद्धि करने वाले पुस्तकें वांचना या सुनना, धार्मिक पुस्तकें पढना या विचारना, कायोत्सर्ग करना या मनकी एकाग्रता के लिये आनुपूर्वी गुणना, इत्यादि निरवद्य कार्य करना श्रेयः है।

मनको समभावमें रखना यही एकाग्रता या स्थिरता है, इसकी उन्नतिके लिये मन वचन और काय ये तीनों योगों की विशेष शुद्धि करना बहुत जरुरी है।

मनःशुद्धि—पवित्र क्रियारूप क्यारीमें ज्ञानरूपी जलका सिंचन करनेसे उत्पन्न हुआ जो समभावरूपी कल्पवृक्ष, उसको शुद्ध (पवित्र) भूमि की जरुरत है और वही भूमि एक मन ही है, अशुद्ध और चंचलमन पौद्गलिक विलासमें भ्रमण कर कर्मका बंध करता है, इसलिये ही मनको बंध और मोक्षका कारण कहा है, इसलिये प्रथम मानसिक चंचलता को दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये, तबही मनकी स्थिरता होकर आत्मिक आनंदका अनुभव होता है और अपनी पास ही रहा हुआ आत्मिक सद्गुणरूप सूर्यका प्रकाश होता है, जिससे राग द्वेष भय शोक मोह माया आदि अंधकार अपने आप दूर हो जाते हैं, रागादि मनोविकार शान्त हो जानेसे मानसिक भूमिका शुद्ध हो जाती है।

वचनशुद्धि—सामायिक में वचन को गुप्त रखना या वचनसमिति रखकर बोलना चाहिये, कोई भी तरहसे सांसारिक कार्यमें आदेश या उपदेश न हो ऐसा ख्याल अवश्य रखना चाहिये, यदि वचन बोलना हो तो सत्य, पथ्य, प्रिय, मधुर, किसीको नुकसान न पहुंचे ऐसा और हितकारक निरवद्य ही बोलना। परंतु मायावाला-कपटयुक्त, सत्या-

स्वामीने परिश्रम लिया है, जिससे मैं उनका बड़ा आभार मानता हूं।

यह लघु पुस्तक आप सज्जनोंके सामने उपस्थित करनेका मुझे शुभावसर प्राप्त हुआ है। आप लोग इनका लाभ उठाकर मेरा परिश्रमको सफल करेंगें। और प्रुफ सुधारनेमें कहीं दृष्टिदोषसे भूलचूक रहगई हो तो सुधारकर वांच लेवे और मेरेको सूचना करे कि जिससे दूसरी आवृत्तिमें सुधार दी जाय। ॐ शान्तिः!

सेठिया जैनग्रंथालय
बीकानेर (राजपूताना)

भैरोदान जेठमल सेठिया.

परमानन्दस्तोत्र.

परमानन्दसंयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अर्थ—परमानन्द युक्त, रागादि विकारोंसे रहित, ज्वरादिक रोगोंसे मुक्त और निश्चय नयसे अपने शरीर में ही विराजमान परमात्मा को ध्यान हीन पुरुष नहीं देख सक्ते है ॥ १ ॥

अनन्तसुखसम्पन्नं, ज्ञानामृतपयोधरम् ।
अनन्तवीर्यसंपन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥ २ ॥

अर्थ—अनन्त सुखाविशिष्ट, ज्ञानरूपी अमृतसे भरे हुए समुद्रके समान और अनन्तवल युक्त परमात्मा का स्वरूप समझना चाहिये ॥ २ ॥

निर्विकारं निरावाधं, सर्वसंगविवर्जितम् ।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—रागादिक विकारों से रहित, अनेक प्रकार की सांसारिक बाधाओंसे मुक्त, सम्पूर्ण परिग्रहों से शून्य, परमानन्द विशिष्ट, शुद्ध केवलज्ञान रूप चैतन्य ही परमात्मा का लक्षण मानना चाहिये ॥ ३ ॥

उत्तमा स्वात्मचिन्ता स्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा ।
अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिन्ताऽधमाऽधमा॥४॥

अर्थ—अपनी आत्मा के उद्धार की चिंता करना उत्तम चिंता है, प्रकृष्टमोह अर्थात् शुभरागवश दूसरे जीवों के भले करने की चिन्ता करना मध्यम चिन्ता है। कामभोग की चिन्ता करना अधम चिंता है, और दूसरों के अहित करने का विचार करना अधमसे भी अधम चिन्ता है ॥४॥

निर्विकल्पसमुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमंजलिं कृत्वा, तत्पिबन्ति तपस्विनः ॥५॥

अर्थ—आत्मा के असली स्वरूप को बिगाड़ने वाले अनेक प्रकार के संकल्पविकल्पों को नाश करने से जो ज्ञानरूपी अमृत उत्पन्न होता है उसको तपस्वी महात्मा ही विवेकरूपी अंजुलि से पीते हैं ॥ ५ ॥

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो पुरुष निश्चयनयसे सदा ही आत्मा में रहने वाली परमानन्द दशा को जानता है वही वास्तव में पण्डित है. और वही पुरुष अपनी आत्मा को परमानन्द का कारण समझकर वास्तव में उसकी सेवा करनी जानता है ॥६॥

नलिन्यां च यथा नीरं भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥७॥

अर्थ—जैसे कमल के पत्ते के ऊपर पानी की बूंद कमलसे हमेशा भिन्न रहती है, उसी प्रकार यह निर्मल

आत्मा शरीर के भीतर रहकर भी स्वभाव की अपेक्षा शरीर से सदा भिन्न ही रहता है अथवा कार्मणशरीर के भीतर रहकर भी कार्मणशरीरजन्य रागादि मलों से सदा अलिप्त रहता है ॥७॥

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं, भावकर्मविवर्जितम् ।
नोकर्मरहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ॥८॥

अर्थ—इस चैतन्य आत्मा का स्वरूप निश्चय करके ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों से शून्य, रागादिरूप भावकर्मों से रहित व औदारिक वैक्रियिक आदि शरीररूप नोकर्मों से रहित जानना चाहिये ॥ ८ ॥

आनन्दं ब्रह्मणोरूपं निजदेहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति जात्यन्धा इव भास्करम्॥९॥

अर्थ—इस परम ब्रह्ममय परमात्मा के आनन्दमय स्वरूपको शरीर के भीतर ही मोजूद होते हुए भी ध्यानहीन पुरुष नहीं जानते हैं, जैसे जन्मांध पुरुष सूर्य को नहीं जानता है ॥ ९ ॥

तद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते ।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१०॥

अर्थ—मोक्ष के इच्छुक भव्य जीवों को वही ध्यान करना चाहिये जिसके द्वारा यह चंचल मन स्थिर होकर परमात्मस्वरूप में विशेष रूप से लीन होजावे, क्योंकि जिस

समय इस प्रकार का ध्यान होता है उसी समय चैतन्य चमत्कारस्वरूप परमात्मा का साक्षात् दर्शन होता है ॥१०॥

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधाना-
स्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति ।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं,
व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥११॥

अर्थ—जिन मुनियों का उत्तम ध्यान करना ही स्वभाव पड़गया है, वे मुनिपुंगव कुछ काल में ही नियम से सर्व दुःखों से छूटकर अर्हंत स्वरूप परमात्मपद को प्राप्त हो जाते हैं और बाद में अयोग केवली होकर क्षणमात्र में आठ कर्म रहित अविनश्वर मोक्षधाम में सदा के लिये जा विराजमान हो जाते हैं ॥ ११ ॥

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं,
समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तम् ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं,
जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ॥१२॥

अर्थ—निज स्वभाव में लीन हुए मुनि ही परमात्मा के समस्त संकल्पों से रहित परमानन्दमय स्वरूप में निरन्तर तन्मय रहते हैं। और इस प्रकार के योगी महात्मा ही आगे कहे जाने वाले परमात्मस्वरूपको स्वयं जानते हैं ॥१२॥

चिदानन्दमयं शुद्धं, निराकारं निरामयम् ।
अनन्तसुखसम्पन्नं, सर्वसङ्गविवर्जितम् ॥१३॥

लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः, कथितः परमेश्वरैः ॥१४॥

अर्थ—श्री सर्वज्ञदेव ने परमात्मा का स्वरूप चिदानन्दमय शुद्ध-रूप रस गंध स्पर्शमय आकार से रहित, अनेक प्रकार के रोगों से सर्वथा शून्य, अनन्त सुखविशिष्ट व सर्व परिग्रह रहित बताया है। और निश्चय नय से आत्मा व परमात्मा का आकार लोकाकाश के समान असंख्यात प्रदेशी, तथा व्यवहारनय से कर्मोदय से प्राप्त छोटे व बड़े शरीर के समान बताया है ॥१३॥१४॥

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधिना॥१५॥

अर्थ—इस प्रकार उपर कहे हुए परमात्मा के स्वरूप को योगी पुरुष जिस समय निर्विकल्पसमाधि के द्वारा (ध्याता-ध्येय-ध्यान की अभिन्नरूप एक अवस्था होजाने से) जान लेता है, उस समय उस योगी का चित्त रागादिजन्य आकुलता से रहित स्थिर होता है और उसकी आत्मा को अनादि काल से भ्रम में डालने वाले अज्ञानरूपी पिशाच का नाश होजाता है। उस समय वह निश्चल योगी ही आगे कहे जाने वाले विशेषणों से विशिष्ट होजाता है ॥ १५ ॥

स एव परमं ब्रह्म; स एव जिनपुंगवः।
स एव परमं तत्वं, स एव परमो गुरुः ॥ १६ ॥

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः॥ १७॥
स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमः शिवः॥ १८॥
स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परचैतन्यं, स एव गुणसागरः॥ १९॥

अर्थ—अर्थात् वह परमध्यानी योगी मुनि ही परब्रह्म, तथा घातिकर्मों को जितने से जिन, शुद्धरूप होजाने से परम आत्मतत्व, जगतमात्र के हित का उपदेशक होजानेसे परमगुरु, समस्त पदार्थों के प्रकाश करने वाले ज्ञानसे युक्त होजाने से परमज्योति, ध्यान ध्याता के अभेदरूप होजाने से शुक्लध्यान रूप परमध्यान, व परमतप रूप परमात्मा के वास्तविक स्वरूपमय होजाता है तथा वही परमध्यानी मुनि ही सर्वप्रकार के कल्याणों से युक्त, परम सुख का पात्र, शुद्धचिद्रूप, परमशिव कहलाता है और वही परमानन्दमय, सर्वसुख दायक, परमचैतन्य आदि अनन्तगुणों का समुद्र होजाता है ॥१६–१७–१८–१९॥

परमाह्लादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
अर्हन्तं देहमध्ये तु, यो जानाति स पण्डितः॥२०॥

अर्थ—इस प्रकार ऊपर कहे हुए परम आनंदयुक्त, रागद्वेष शून्य, अर्हन्त देव को जो ज्ञानी पुरुष अपने देहरूपी

मन्दिर में विराजमान देखता व जानता है, वही पुरुष वास्तव में पण्डित कहा जा सक्ता है ॥ २० ॥

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूपव्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ॥ २१ ॥

अर्थ—इसी प्रकार अर्हन्त भगवान के स्वरूप की तरह सिद्ध परमेष्ठी के स्वरूप को रूपरसादिमय आकार से रहित, शुद्ध, निज स्वरूप में विराजमान, रागादिविकारों से शून्य कर्ममल से रहित, क्षायिकसम्यग्दर्शन, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व और अवगाहना रुप अष्टगुणों से सहित चिंतवन करे ।

तत्सदृशं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे ।
सहजानन्दचैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः ॥२२॥

अर्थ—सिद्ध परमेष्ठी के समान तीनलोक व तीनों कालवर्ती समस्त अनंत पदार्थों का एक साथ प्रकाश करने वाले केवलज्ञान आदि गुणों की प्राप्ति के लिये जो पुरुष अपनी आत्मा को भी परमानन्दमय, चैतन्य चमत्कार युक्त जानता है, वही वास्तव में पण्डित है ॥ २२ ॥

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतं ।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥२३॥
काष्टमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥२४॥

अर्थ—जिस प्रकार सुवर्ण-पाषाण में सोना गुप्तरीति से छिपा रहता है, तथा दुग्ध में जैसे घृत व्याप्त रहता है, तिलमें जैसे तैल व्याप्त रहता है, उसी प्रकार शरीर में परमात्मा को विराजमान समझना चाहिए। अथवा जैसे काष्ट के भीतर अग्नि शक्ति रूप से रहती है, उसी प्रकार शरीर के भीतर शुद्ध आत्मा को जो पुरुष शक्ति रूपसे विराजमान देखता है, वही वास्तव में पण्डित है॥२३-२४॥

॥ शुभं भूयात् ॥

॥ ॐ श्रीवीतरागाय नमः ॥

॥ सामायिक सूत्र ॥

(अर्थ-सहित)

॥ मंगलाचरण ॥

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता ।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय नित्यं नमः ॥
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो ।
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयः श्रीवीर ! भद्रं दिश ॥१॥
अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ॥२॥

१—नमस्कार सूत्र।

णमो अरिहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं । णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं । एसो पंच णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

शब्दार्थ—

णमो—नमस्कार

अरिहंताणं—अरिहंतोंको,
णमो—नमस्कार
सिद्धाणं—सिद्धोंको,
णमो—नमस्कार
आयरियाणं—आचार्योंको,
णमो—नमस्कार
उवज्झायाणं—उपाध्यायोंको,
णमो—नमस्कार
लोए—लोकमें (ढाई द्वीपमें वर्त्तमान)
सव्वसाहूणं—सब साधुओंको,
एसो—यह
पंच—पांच परमेष्ठियोंको किया हुवा
णमुक्कारो—नमस्कार
सव्व—सब
पाव—पापोंका
पणासणो—नाश करने वाला है,
च—और
सव्वेसिं—सब
मंगलाणं—मंगलोंमें
पढमं—पहला (मुख्य)
मंगलं—मंगल
हवइ—है

भावार्थ—श्रीअरिहंत भगवान्, श्रीसिद्धभगवान्, श्रीआचार्य महाराज, श्रीउपाध्यायजी महाराज और ढाई द्वीपमें वर्त्तमान सामान्य सब साधु मुनिराज–इन पांच परमेष्ठियोंको मेरा नमस्कार हो। उक्त पांच परमेष्ठियोंको जो नमस्कार किया जाता है वह सम्पूर्ण पापोंको नाश करने वाला है और सब प्रकारके लौकिक लोकोत्तर–मंगलोंमें प्रधान मंगल है॥

२ गुरुवन्दणा–तिक्खुत्तोका पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं(करेमि) वन्दामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि॥ १॥

शब्दार्थः—

तिक्खुत्तो—तीनवार
आयाहिणं—दक्षिण तरफ़से
पयाहिणं—प्रदक्षिणा
करेमि—करता हूँ
वन्दामि—गुणग्राम (स्तुति) करता हूँ
नमंसामि—नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि—सत्कार देता हूँ
सम्माणेमि—सन्मान देता हूँ
कल्लाणं—कल्याणरूप है
मंगलं—मंगलरूप है

देवयं—धर्मदेवरूप है
चेइयं—ज्ञानवंत है, ऐसे आपकी
पज्जुवासामि—सेवा करता हूँ

भावार्थ—तीनवार दोनों हाथ जोड़कर जीमने कानसे बाँए कान तक प्रदाक्षिणा करके अर्थात् तीन दफे मुखके चारों ओर जुड़े हाथोंको घुमा करके गुणग्राम (स्तुति) करता हूँ, पंचांग–दो हाथ, दो गोड़े और एक मस्तक ये पांच अंग नमा कर नमस्कार करता हूँ, हे पूज्य ! आपका सत्कार करता हूँ, सन्मान देता हूँ, आप कल्याण रूप हैं और मंगल रूप हैं, आप धर्मदेव स्वरूप हैं ज्ञानवंत हैं, छकाय जीवोंके रक्षक हैं, ऐसे आप गुरु महाराजकी मन वचन और कायासे सेवा करता हूँ और मस्तक नमाकर वंदना करता हूँ ॥

॥ ३–इरियावहियं सूत्रम् ॥

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इरियावहियं पडिक्कमामि, इच्छं । इच्छामि पडिक्कमिउं, इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा उत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कडासंताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं

संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ॥१॥

शब्दार्थ—

इच्छाकारेण—आपकी इच्छा पूर्वक,
संदिसह—आज्ञा दीजिये
भगवन्—हे गुरु महाराज !
इरियावहियं—इर्यापथिकी क्रियाका
(मार्गमें चलने से होनेवाली क्रियाका)
पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण (निवर्त्तन) करुं ।
'पडिक्कमह'—निवृत्त हो,
इच्छं—प्रमाण है.
इच्छामि—मैं चाहता हूँ
पडिक्कमिउं—निवृत होना
इरियावहियाए—मार्गमें चलने से होनेवाली
विराहणाए—विराधना से
गमणागमणे—जाने आनेमें
पाणक्कमणे—किसी प्राणीको दवाया हो.
वीयक्कमणे—वीज को दवाया हो.
हरियक्कमणे—वनस्पतिको दवाया हो.
ओसा—ओस
उत्तिंग—कीडीनगरा
पणग—पांच रंगकी काई

दग—कच्चा पानी
मट्टी—सचित्त मिट्टी
मक्कडासंताणा—मकड़ीके जालोंको
संकमणे—कचरा हो, चांप्या हो.
जे—जो कोई
मे—मैंने
जीवा—जीवोंको
विराहिया—पीडित किया हो,
एगिंदिया—एक इन्द्रियवाले
वेइन्दिया—दो इन्द्रियवाले
तेइंदिया—तीन इन्द्रियवाले
चउरिंदिया—चार इन्द्रियवाले
पंचिंदिया—पांच इंद्रियवाले
अभिहया—सन्मुख आए हूए जीवों को
हणा (मारा) हो
वत्तिया—धूल आदि से ढांका हो
लेसिया—आपसमें अथवा जमीनपर मसला हा
संघाइया—इकट्ठा किया हो
संघट्टिया—छुआ हो
परियाविया—परिताप (कष्ट) पहुँचाया हो,
किलामिया—मृत्युतुल्य किया हो.
उद्दविया—हैरान किया हो, भयभीत किया हो.

ठाणाओ—एक जगहसे
ठाणं—दूसरी जगह
संकामिया—रक्खा हो
जीवियाओ—जीवनसे
ववरोविया—छुडाया हो
तस्स—उनका
मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो
मि—मेरे लिये
दुक्कडं—पाप

भावार्थ—हे गुरु महाराज ! आपकी इच्छा पूर्वक आज्ञा दीजिये मैं रास्ते पर चलने फिरने आदिसे जो विराधना होती है उससे या उससे लगने वाले अतिचार से निवृत्त होना चाहता हूँ अर्थात् आयंदा ऐसी विराधना न हो इस विषयमें सावधानी रखकर उससे बचना चाहता हूँ " तब गुरु महाराज कहे हे शिष्य ! सावद्य क्रियासे शीघ्रही निवृत्त हो तब शिष्य कहे आपकी आज्ञा प्रमाण है और मेरी भी यही इच्छा है " मार्गमें जाते आते मैंने भूतकालमें किसी के इन्द्रिय आदि प्राणों को दबाकर, सचित्त बीज तथा हरी वनस्पतिको कचर कर, ओस, चींटीके बिल, पांचो वर्णकी काई, सचित जल, सचित मिट्टी और मकड़ीके जालोंको रौंद (कुचलकर) किसी जीव की हिंसा की जैसे—एक इंद्रियवाले (पृथ्वी पाणी अग्नि वायु और वनस्पति), दो

इंद्रियवाले-शंख, छीप, गंडोला आदि, तीन इंद्रियवाले-कुंथुआ, जूं, लिख किडी, खटमल, चींचडआदि, चार इंद्रियवाले-मक्खी, भवँरा, वीच्छु, टीडी, पतंगिया आदि, पांच इंद्रियवाले जीव-मनुष्य, तिर्यंच, जलचर, थलचर और खेचर आदि जीवोंको मैंने चोट पहूंचाई, उन्हें धूल आदिसे ढाँका, जमीनपर या आपसमें रगड़ा इकट्ठा करके उनका ढेर किया, उन्हें क्लेश जनक रीतिसे छुआ, क्लेश पहूंचाया, थकाया हैरान किया, एक जगहसे दूसरी जगह उन्हें बूरी तरह रक्खा, इस प्रकार किसी भी तरहसे उनका जीवन नष्ट किया उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो अर्थात् जानते अनजानते विराधना आदिसे कषायद्वारा मैंने जो पापकर्म बांधा उसके लिये मैं हृदयसे पछताता हूँ, जिससे कि कोमल परीणाम द्वारा पापकर्म निरस हो जावे और मुझको उसका फल भोगना न पड़े ॥१॥

४-तस्स उत्तरीसूत्रम् ॥

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं, अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं, एवमाइएहिं आगारेहिं

अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो, जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमुक्कारेणं न पारेमि ताव-कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि॥१॥

शब्दार्थः—

तस्स—उसको
उत्तरीकरणेणं—श्रेष्ठ उत्कृष्ट वनाने के लिये.
पायच्छित्तकरणेणं—प्रायश्चित्त करनेके लिये.
विसोहीकरणेणं—विशेष शुद्धि करनेके लिये.
विसल्लीकरणेणं—शल्यका त्यागकरनेके लिये
पावाणं—पापरूप अशुभ
कम्माणं—कर्मोंका
निग्घायणट्ठाए—नाश करनेके लिये
ठामि—करता हूँ।
काउस्सग्गं—कायोत्सर्ग—शरीरके व्यापारका त्याग
अन्नत्थ—नीचे लिखे हुए आगारोंके सिवाय
ऊससिएणं—उच्छ्वास (ऊंचोश्वास)लेनेसे
नीससिएणं—निःश्वास (नीचोश्वास) छोडनेसे
खासिएणं—खाँसी आनेसे
छीएणं—छींक आनेसे
जंभाइएणं—उवासी आनेसे
उड्डुएणं—डकार आनेसे
वायनिसग्गेणं—अधो वायु नीसरनेसे

शब्दार्थः—

लोगस्स—लोकमें
उज्जोअगरे—उद्योत (प्रकाश) करनेवाले
धम्मतित्थयरे—धर्मरूप तीर्थको स्थापन करनेवाले
जिणे—राग द्वेषको जीतने वाले
अरिहंते—कर्मरूपशत्रुका नाश करने वाले तीर्थंकरोंकी
कीत्तइस्सं—मैं स्तुति करता हूं।
चउवीसंपि—चोवीसों
केवली—केवलज्ञानी
उसभं—श्री ऋषभदेव स्वामीको
अजितं—श्रीअजितनाथको
च—और
वंदे—वन्दन करता हूँ
संभवं—श्री संभवनाथ स्वामीको
अभिणंदणं च—और श्री अभिनन्दन स्वामीको
सुमइं—श्री सुमतिनाथ प्रभुको
च—और
पउमप्पहं—श्री पद्मप्रभस्वामीको
सुपासं—श्री सुपार्श्वनाथ प्रभुको
जिणं च चंदप्पहं—और जिनेश्वर चन्द्रप्रभुको
वंदे—वन्दन करता हूं।
सुविहिं—सुविधिनाथको

च—और
पुप्फदंतं—सुविधिनाथजीका दूसरा नाम पुष्फदंत भगवानको
सीअल—श्रीशीतलनाथ को
सिज्जंस—श्रीश्रेयांसनाथ को
वासुपुज्जं—श्रीवासुपूज्य स्वामीको
च—और
विमलं—श्रीविमलनाथको
अणंतं च जिणं—श्रीअनन्तनाथजिनको और
धम्मं—धर्मनाथको
संतिं—श्रीशान्तिनाथजिनको
च—और
वंदामि—वन्दन करता हूँ
कुंथुं—श्रीकुंथुनाथको
अरं—श्रीअरनाथको
च—और
मल्लि—श्रीमल्लिनाथको
वंदे—वंदन करता हूँ
मुणिसुव्वयं—श्रीमुनिसुव्रत को
नमिजिणं—श्रीनमिनाथ जिनेश्वर ६
च—और

वंदामि—मैं वंदन करता हूँ
रिट्ठनेमिं—श्री अरिष्टनेमि (श्री नेमनाथ)को
पासं—श्रीपार्श्वनाथको
तह—तथा
वद्धमाणं—श्रीवर्द्धमान (महावीर स्वामी) को।
च—और
एवं—इस प्रकार
मए—मैंने
अभिथुआ—स्तुति की
विहुयरयमला—पाप-रज के मल से विहीन,
पहीण जरमरणा—बुढापे तथा मरण से मुक्त
चउविसंपि—चौवीसों
जिणवरा—जिनेश्वरदेव
तित्थयरा—तीर्थंकरदेव
मे—मेरे पर
पसीयंतु—प्रसन्न हों
कित्तिय—वचनयोगसें कीर्तन किया हुवा.
वंदिय—काययोगसे वंदन किया हुवा.
महिया—मनोयोगसें पूजन किया हुवा.
जे—जो
ए—वे
लोगस्स—लोकमें

उत्तमा—उत्तम (प्रधान)
सिद्धा—सिद्ध भगवंत
आरुग्गबोहिलाभं—आरोग्य का तथा धर्मका लाभ को
समाहिवरमुत्तमं—और उत्तम समाधिके वरको
दिंतु—देवें
चंदेसु—चन्द्रोंसे
निम्मलयरा—विशेष निर्मल
आइच्चेसु—सूर्योंसे भी
अहियं—अधिक
पयासयरा—प्रकाश करने वाले
सागरवरगंभीरा—महासमुद्र के समान गंभीर
सिद्धा—सिद्ध भगवान
सिद्धिं—सिद्धि (मोक्ष)
मम—मुझको
दिसंतु—देवें

भावार्थ—(तीर्थंकरके स्तवनकी प्रतिज्ञा) स्वर्ग मृत्यु और पाताल इन तीनों जगत में धर्मका उद्द्योत करनेवाले, धर्म-तीर्थ की स्थापना करनेवाले और राग-द्वेष आदि अंतरंग शत्रुओं पर विजय पाने वाले चौवीसों केवलज्ञानी तीर्थंकरों का मैं स्तवन करूंगा। स्तवन—श्रीऋषभनाथ, श्रीअजित-नाथ, श्रीसंभवनाथ, श्रीअभिनन्दन, श्रीसुमतिनाथ, श्रीपद्मप्रभ,

श्रीसुपार्श्वनाथ, श्रीचन्द्रप्रभ, श्रीसुविधिनाथ, श्रीशीतलनाथ श्रीश्रेयांसनाथ, श्रीवासुपूज्य, श्रीविमलनाथ, श्रीअनंतनाथ श्रीधर्मनाथ, श्रीशान्तिनाथ, श्रीकुंथुनाथ श्रीअरनाथ, श्रीम ल्लिनाथ, श्रीमुनिसुव्रत, श्रीनमिनाथ, श्रीअरिष्टनेमि (नेमनाथ), श्रीपार्श्वनाथ और श्रीमहावीरस्वामी—इन चौवीस जिनेश्वरों की मैं स्तुति-वंदना करता हूँ। भगवान् से प्रार्थना—जिनकी मैंने स्तुति की है, जो कर्ममलसे रहित हैं, जो जरा मरण दोनोंसे मुक्त हैं और जो तीर्थके प्रवर्त्तक हैं वे चौवीसों जि नेश्वर मेरे पर प्रसन्न हों—उनके आलंबनसे मुझमें प्रसन्नता हो। जिनका कीर्त्तन, वंदन और पूजन नरेन्द्रों, नागेन्द्रों तथा देवेन्द्रों तकने किया है, जो सम्पूर्णलोकमें उत्तम हैं और जो सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं वे भगवान् मुझको आरोग्य, सम्यक्त्व तथा समाधिका श्रेष्ठतर देवें-उनके आ लंबनसे बल पाकर मैं आरोग्य आदिका लाभ करूँ। सिद्ध भगवान् जो सब चन्द्रोंसे विशेष निर्मल हैं, सब सूर्यों से विशेष प्रकाशमान हैं और स्वयंभूरमण नामक महासमुद्रके समान गंभीर हैं, उनके आलम्बनसे मुझको सिद्धि-मोक्ष प्राप्त हो॥

६—करेमि भंते।।

करेमि भंते! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते

पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

शब्दार्थः—

करेमि—मैं ग्रहण करता हूँ
भंते—हे भगवन् !
सामाइयं—सामायिक व्रत को
सावज्जं—(सावद्य) पापसहित
जोगं—व्यापारका
पच्चक्खामि—प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ
जाव—जब तक
नियमं—इस नियमका
पज्जुवासामि—सेवन करता रहूँ तब तक
दुविहं—दो प्रकारके करणसे
तिविहेणं—तीन प्रकारके योगसे
न करेमि—सावद्ययोगको न करूँगा
न कारवेमि—न दूसरेसे कराऊंगा
मणसा वयसा कायसा—मन वचन और कायासे
तस्स—उससे-प्रथमके पापसे
भंते—हे भगवन् !
पडिक्कमामि—मैं निवृत्त होता हूँ
निंदामि—उस पापकी आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ
गरिहामि—विशेष गर्हा-निंदा करता हूँ

अप्पाणं—आत्माको (उस पाप व्यापारसे)
वोसिरामि—हटाता हूँ, अलग करता हूँ

भावार्थ—मैं सामायिकव्रत ग्रहण करता हूँ, राग-द्वेष अभाव या ज्ञान-दर्शन-चारित्रका लाभ ही सामायिक है, इस लिये पापवाले व्यापारोंका मैं त्याग करता हूँ। जब तक मैं इस नियमका पालन करता रहूँ तब तक मन वचन और काया इन तीन साधनों से पाप व्यापारको न स्वयं करूँगा और न दूसरों से कराऊँगा। हे स्वामिन्! पूर्वोक्त पापसे मैं निवृत्त होता हूँ, अपने हृदयमें उसे बुरा समझता हूँ और गुरुके सामने उसकी निन्दा करता हूँ। इस प्रकार मैं अपने आत्माको पाप-क्रियासे छुडाता हूँ॥

७—नमुत्थुणं सूत्र

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं पुरिसवर-पुंडरीआणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं दीवोत्ताणं सरणगइपइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं

बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं, सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावित्ति सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमोजिणाणं जिअभयाणं ।×

शब्दार्थः—

नमुत्थुणं--नमस्कार हो
अरिहंताणं भगवंताणं—अरिहंत भगवान्‌को,
आइगराणं—धर्मकी शुरूआत करनेवाले,
तित्थयराणं—धर्मतीर्थकी स्थापना करनेवाले,
सयंसंबुद्धाणं—अपने आप ही बोध पाये हुए,
पुरिसुत्तमाणं—पुरुषोंमें श्रेष्ठ,
पुरिससीहाणं—पुरुषोंमें सिंहके समान,
पुरिसवरपुंडरीआणं—पुरुषोंमें श्रेष्ठ कमलके समान,
पुरिसवरगंधहत्थीणं–पुरुषोंमें प्रधान गंधहस्तिके समान,
लोगुत्तमाणं---लोगों में उत्तम,
लोगनाहाणं—लोगोंके नाथ,
लोगहिआणं—लोगोंका हित करनेवाले,
लोगपईवाणं--लोगोंके लिये दीपक के समान,
लोगपज्जोअगराणं--लोगोंमें उद्‌योत करनेवाले,
अभयदयाणं—अभय देनेवाले,

×नोट—दूसरी वार नमुत्थुणं बोलनेके समय 'ठाणं संपत्ताणं' के बदले 'ठाणं संपाविउकामाणं' बोलना चाहिये।

चक्खुदयाणं--ज्ञानरूपी नेत्र देनेवाले,
मग्गदयाणं --धर्ममार्ग के दाता,
सरणदयाणं—शरण देनेवाले
जीवदयाणं—संयम या ज्ञानरूप जीवन देनेवाले
वोहिदयाणं—बोधि अर्थात् सम्यक्त्व देनेवाले
धम्मदयाणं—धर्म के दाता
धम्मदेसयाणं—धर्म के उपदेशक
धम्मनायगाणं—धर्म के नायक
धम्मसारहीणं—धर्म के सारथि
धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं—धर्म के प्रधान तथा चार गतिका अंत करनेवाले अतएव चक्रवर्ती के समान
दीवोत्ताणं--संसाररूप समुद्रमें द्वीप समान
सरणगइपइट्टा—शरण गये हुए को आधारभूत
अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं--अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान दर्शनको धारन करनेवाले
वियट्टछउमाणं—छद्म अर्थात् घातिकर्म रहित
जिणाणं जावयाणं—स्वयं (रागद्वेषको) जीतनेवाले, औरों को जीतानेवाले
तिन्नाणं तारयाणं—स्वयं (संसारसे) तरे, दूसरों को तारनेवाले

बुद्धाणं बोहयाणं--स्वयं बोध पाये हुए दूसरोंको
बोध प्राप्त करानेवाले

मुत्ताणं मोअगाणं--स्वयं (कर्म बंधनसे) छुटे हुए
दूसरोंको छुडानेवाले

सव्वन्नूणं--सर्वज्ञ

सव्वदरिसीणं--सर्वदर्शी

सिवं--निरुपद्रव

अयलं--स्थिर

अरुअं--रोगरहित

अणंतं--अन्त रहित

अक्खयं--क्षय रहित

अव्वाबाहं--बाधा (पीडा) रहित

अपुणरावित्तिं--पुनरागमन रहित

सिद्धिगइनामधेयं--सिद्धिगति नामके

ठाणं--स्थानको

संपत्ताणं--प्राप्त हुए

नमो--नमस्कार हो

जिणाणं--जिनेश्वर सिद्ध भगवान् को

जिअभयाणं--भयको जीतने वाले

ठाणं संपाविउ कामाणं--सिद्धगति के स्थानको
पानेकी इच्छावाले अरिहंत भगवान् को

भावार्थ—अरिहंतों को मेरा नमस्कार हो, जो अरिहंत भगवान् धर्म की आदि करनेवाले हैं, साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थकी स्थापना करने वाले हैं, दूसरे के उपदेश के विना ही बोधको प्राप्त हुए हैं, सब पुरुषोंमें उत्तम हैं, पुरुषोंमें सिंह के समान निडर हैं, पुरुषोंमें कमलके समान अलिप्तहैं, पुरुषोंमें प्रधान गन्धहस्तिके समान सहनशील हैं, लोगोंमें उत्तम हैं, लोगोंके नाथ हैं, लोगोंके हितकारक हैं, लोकमें प्रदीप के समान प्रकाश करने वाले हैं, लोकमें अज्ञानरूप अंधकारका नाश करने वाले हैं, दुःखियोंको अभयदान देनेवाले हैं, अज्ञानसे अंध ऐसे लोगोंको ज्ञानरूप नेत्र देने वाले हैं, मार्गभ्रष्टको मार्ग दिखाने वाले हैं, शरणागतको शरण देनेवाले हैं, सम्यक्त्व प्रदान करने वाले हैं, धर्महीनको धर्मदान करनेवाले हैं, जिज्ञासुओंको धर्मका उपदेश करनेवाले हैं, धर्मके नायक हैं, धर्मके सारथि (संचालक) हैं, धर्ममें श्रेष्ठ हैं तथा चक्रवर्तीके समान चतुरन्त हैं अर्थात् जैसे चार दिशाओंकी विजय करनेके कारण चक्रवर्ती चतुरन्त कहलाता है वैसे अरिहंत भी चार गतियोंका अंत करनेके कारण चतुरंत कहलाते हैं, सर्व पदार्थोंके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले ऐसे श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन को अर्थात् केवलज्ञान-केवलदर्शन को धारण करने वाले हैं, चार घाति-कर्मरूप आवरण से मुक्त हैं, स्वयं राग द्वेष को जीतने वाले और दूसरों को

भी जीताने वाले हैं, स्वयं संसार को पार पहुँच चुके हैं और दूसरों को भी उसके पार पहुँचाने वाले हैं, स्वयं ज्ञानको पाये हुएहैं और दूसरों को भी ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं, स्वयं मुक्त हैं और दूसरोंको भी मुक्ति प्राप्त कराने वाले हैं, आप सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, तथा उपद्रव रहित, अचल (स्थिर), रोग रहित, अनन्त, अक्षय, व्याकुलता रहित, और पुनरागमन (जन्म मरण) रहित ऐसे मोक्ष स्थानको प्राप्त हैं। या ऐसे मोक्ष स्थानको प्राप्त होने वाले हैं।

सब प्रकार के भयों को जीते हुए जिनेश्वरों को नमस्कार हो।

८—सामायिक पारनेकी पाटी।

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं, मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणआए, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणआए, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं। सामाइयंसम्मंकाएणं, न फासिअं, न पालिअं, न तीरिअं, न कीट्टिअं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालिअं न भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं॥

सामायिक में दस मनके, दस वचनके, बारह कायाके ए कुल बत्तीस दोषोंमें से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिकमें [1] स्त्रीकथा, भत्तकथा, देशकथा, राजकथा इन चार कथाओमें से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा इन चार संज्ञाओं में से कोई संज्ञाका सेवन किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिकमें अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अणाचार, जानते अजानते मन वचन कायासे कोई दोप लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक व्रत विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधिमें कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्युनाधिक विपरीत पढनेमें आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान्की साक्षीसे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थः—

एयस्स—ऐसा

नाट—१ श्राविकाओंको स्त्रीकथाके स्थान पर पुरुष कथा ऐसा बोलना.

नवमस्स—नववाँ
सामाइयवयस्स—सामायिकव्रतका
पंच—पांच
अइयारा—अतिचार
जाणियव्वा—जानना
न—नहीं
समायरियव्वा—आदरना
तंजहा—(तद्यथा) वह इस तरह
आलोउं—आलोचना करता हूँ
मणदुप्पणिहाणे—मन खोटे मार्गमें प्रवृत्त हुआ हो
वयदुप्पणिहाणे—वचन खोटे मार्गमें प्रवृत्त हुआ हो
कायदुप्पणिहाणे—काया खोटे मार्गमें प्रवृत्त हुई हो
सामाइयस्स सइ अकरणआए—सामायिक लेकर अधूरा पारा हो या सामायिककी स्मृति (ख्याल) न रक्खी हो
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणआए—सामायिक अव्यवस्थितपनसे याने चंचलपनसे किया हो
तस्स—उसका
मिच्छा—मिथ्या (निष्फल) हो
मि—मेरा
दुक्कडं—पाप

सामाइयं सम्मंकाएणं—सामायिकको सम्यक् प्रकार शरीरसे
न फासिअं—स्पर्श नहीं
न पालिअं—पाला नहीं
न तीरिअं—समाप्त किया नहीं
न कीट्टिअं—कीर्तन किया नहीं
न सोहिअं—शुद्ध किया नहीं
न आराहिअं—आराधना की नहीं
आणाए—वीतरागकी आज्ञानुसार
अणुपालिअं—पालन
न भवइ—न हुआ हो
तस्स—उसका
मिच्छा—मिथ्या (निष्फल)
मि—मेरे लिये
दुक्कडं—पाप

भावार्थ—श्रावकके बारह व्रतोंमेंसे नववाँ सामायिक व्रतके पांच अतिचार हैं वे जानने योग्य हैं परंतु ग्रहण करने योग्य नहीं हैं. उन अतिचारों की आलोचना करता हूँ जैसे कि—मनमें बुरा चिंतवन किया हो अर्थात् मनके दश दोष लगायें हो, दूसरा वचनका दुरुपयोग किया हो अर्थात् वचन के दश दोष लगायें हो, तीसरा काया (शरीर) खोटे मार्गमें प्रवृत हुई हो अर्थात् काया के बारह दोष लगाये हो,

सामायिक लेकर अधूरा पारा हो या शक्ति होने पर सामायिक न किया हो, सामायिक अनवस्थितपनसे याने शास्त्रकी मर्यादा रहित किया हो, इन पांचो अतिचारोंका पाप मेरे लिये मिथ्या हो। सामायिक कायासे सम्यक् प्रकार किया नहीं, पाला नहीं, समाप्त नहीं किया, कीर्त्तन नहीं किया, शुद्ध नहीं किया, आराधन नहीं किया और वीतराग भगवान्‌की आज्ञानुसार पालन नहीं हुआ हो तो उसका पाप मेरे लिये मिथ्या हो।

सामायिक के बत्तीसदोष.

(ग्रन्थानुसार यहां लिखते है)

मनके दशदोष.

अविवेक जसो किती, लाभत्थी गव्वभय नियाणत्थी।
संसयरोसअविणउ, अबहुमाण ए दोसा भाणियव्वा॥

१ विवेक विना सामायिक करे तो अविवेक दोष.

२ यशकीर्ति के लिए सामायिक करे तो यशोवांच्छा दोष.

३ धनादिक के लाभकी इच्छा से करे तो लाभवांच्छा दोष.

४ घमण्ड (अहंकार) सहित करे तो गर्वदोष,

५ राज्यादिकका अपराधके भयसें करे तो भय दोष.

६ सामायिक में नियाणो करे तो निदानदोष.

७ फल प्रते सन्देह रखकर सामायिक करे तो संशयदोष.

८ सामायिकमें क्रोध, मान, माया, लोभ करे तो रोषदोष.

९ विनयपूर्वक सामायिक न करे, तथा सामायिकमें देव, गुरु, धर्मकी अविनय असातना करे तो अविनयदोष.

१० बहुमान भक्तिभावपूर्वक सामायिक न करके वेगारी की तरह सामायिक करे तो अबहुमानदोष.

वचनके दश दोष.

गाथा–कुवयणसहसाकारे, सछंदसंखेव कलहं च।
विगहा वि हासोऽसुद्धं, निरवेक्खो मुणमुणा
दोसा दस॥

१ कुवचन–कुत्सित वचन बोले तो कुवचनदोष.

२ विनाविचारे बोले तो सहसाकारदोष.

३ सामायिकमें गीत,ख्यालादि राग उत्पन्न करनेवाले संसार सम्बन्धी गाने गावे तो स्वच्छंददोष.

४ सामायिक के पाठ और वाक्यको टुंका करके बोले तो संक्षेपदोष.

५ सामायिक में क्लेशका वचन बोले तो कलहदोष.

६ राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भोजनकथा इन चार कथाओंमेंसे कोई कथा करे तो विकथादोष.

७ सामायिक में हंसी मसकरी ठट्ठाठोल करे तो हास्यदोष.

८ सामायकमें गड़बड़ करके उतावळो २ बोले, विना उपयोग और अशुद्ध पढे बोले तो अशुद्धदोष.*

९ सामायिक उपयोग विना बोले तो निरपेक्षादोष.

१० स्पष्ट उच्चारण न करके जो गुंण २ बोले तो मुम्मणदोष.

कायके १२ दोष–

[१]कुआसणं [२]चलासणं [३]चलादिट्ठी
[४]सावज्जाकिरिया–[५]लंबणा [६]कुंचण पसारणं ।
[७]आलस्स [८]मोडणमल[९] [१०]विमासणं,
[११]निद्दा [१२]वेयावच्चत्ति बारस कायदोसा ॥१॥

१ सामायिकमें अयोग्य आसनसे बैठे. जैसेकि ठांसणी मारके बैठे, पांवपर पांव रखकर बैठे, पग पसार कर बैठे, ऊंचा आसन पलाठी मारकर बैठे, इत्यादि अभिमानके आसनसे बैठे तो कुआसण दोष.

२ सामायिकमें स्थिर आसन न राखे (एक और एकही जगह आसन न राखे, आसन बदले, चपलाई करे तो चलासन दोष.

नोटः—*कोइ २ ऐसा भी बोलते है कि सामायिकमें अव्रतीको सत्कार सम्मान देवे (आवो पधारो कहे तथा अव्रतीने जाणे.आणेका कहे.)

३ सामायिकमें दृष्टिको स्थिर न करे, इधर उधर दृष्टि फेरे तो चलदृष्टिदोष.

४ सामायिकमें कुछ शरीरसे सावद्य क्रिया करे घरकी रखवाली करे, शरीरसे इशारा करे तो सावद्यक्रियादोष.

५ सामायिकमें भीतादिकका टेका (आधार) लेवे तो आलंबनदोष.

६ सामायिकमें विना प्रयोजनके हाथ-पगको संकोचे पसारे तो आकुंचन प्रसारण दोष.

७ सामायिकमें अंगमोड़े तो आलस दोष.

८ सामायिकमें हाथ पैरका कडका काढे तो मोटन दोष.

९ सामायिकमें मैल उतारे तो मलदोष.

१० गलेमें तथा गाल (कपोल) में हाथ लगाकर शोकासन से बैठे तो विमासण दोष.[१]

११ सामायिक में निद्रा लेवे तो निद्रादोष.

१२ सामायिक में विना कारण दूसरे के पास वैयावच करावे तो वैयावृत्यदोष.

नोट—१ सामायिकमें विना पूंज्या खाज खुंगे, या विना पूंज्या हाले चाले तो विमासण दोष।

१२ बारहवाँ कंपनदोष यह स्वाध्याय करतां हलतां जाय तथा शीतउष्ण की प्रबलतासे कंपे और सर्व शरीर को वस्त्रादिक से ढक ले, या सर्वथा उघाड़ दे।

कायोत्सर्ग के १९ दोष.

घोडग[1] लया[2] य खंभे[3] कुड्डे माले[4] य सबरि[5] वहु[6] निअलिए[7]॥
लंबुत्तर[8] थण[9] उद्धि[10] संजइ[11], खलिणे[12] य वायस[13] कविट्ठे[14] ॥१॥
सीसोकंपिअ[15] मूइ[16] अंगुलभमुहाइ[17] वारुणी[18] पेहा[19] ।

भावार्थ—घोटक,[1] लता,[2] स्तम्भ,[3] माल,[4] शबरी,[5] वधू,[6] निगडित,[7] लंबोत्तर,[8] स्तन,[9] शकटोर्द्धि,[10] संयति,[11] खलिन,[12] वायस,[13] कोठ,[14] शीर्षोत्कम्पित,[15] मूक,[16] अंगुलभमुहा,[17] वारुणी,[18] और प्रेष्य[19] ये कायोत्सर्गके १९ दोष हैं । प्रत्येक का अर्थ गाथा सहित आगे बताते हैं—

असोव्व विसमपायं, आउंटा विचुट्ठाइ उस्सग्गो।
कंपइ काउस्सग्गे, लयव्व खर पवणसंगेण ॥

भावार्थ—घोडेकी तरह एक पांव थोडा टेढा करके कायोत्सर्ग करनेसे पहिला घोटक नामका दोष होता है । अधिक वायुके लगने से जैसे लता (बेल) कांपती है, इसी तरह कायोत्सर्ग करते समय कांपने से दूसरा लता दोष होता है ॥

खंभे वा कुड्डे वा, आवट्ठंभीअ कुणइ उस्सग्गंतु ।
माले अ उत्तमंगं, अवट्ठंभिय कुणइ उस्सग्गं ॥

भावार्थ—थंभा अथवा भीत के सहारे खडे रहकर कायोत्सर्ग करनेसे तीसरा स्तंभ दोष होता है, । छत अथवा

करता है इसी तरह कायोत्सर्ग के समय बारंबार शिर को ऊंचा नीचा करने से बारहवां खलिन दोप होता है।

भमेइ तहादिट्ठि, चलचित्तो वायसोव्व उस्सग्गे
छप्पइ आण भएणं, कुणइ अ पट्टं कविट्ठंव ॥

भावार्थ—जैसा कौवा चंचलदृष्टि से दशों दिशाओं को देखता है तैसे ही कायोत्सर्ग करते समय दृष्टि को इधर उधर घुमाने से तेरहवां वायस दोप होता है। कायोत्सर्ग करते समय जूं आदि लगने के भय से चोलपट को संभाल कर रखना कोठ नामका चौदहवां दोप होता है।

सीसं पकंपमाणो, जक्खाइट्ठोव कुणइ उस्सग्गं।
मूउव्व हुहु अंतो, तहेव थिन्नंत माएसु ॥

भावार्थ—जैसे कोई भूत लगने से शिर घुमाता है इसी प्रकार कायोत्सर्ग करते समय शिर घुमानेसे पंद्रहवां शीर्षोत्कंपित दोप लगता है। मूक (गूंगे)की तरह कायोत्सर्ग करते समय हुं हुं शब्द करने से सोलहवां मूक दोप होता है ॥

अंगुलि भमुहाओविअ,चालंतो कुणइ तहय उस्सग्गं
आलावगणणट्ठाए, संठवणत्थं च जोगाणं ॥

भावार्थ—कायोत्सर्ग के आलावा गिनने के लिये अंगुलियां चलाना, तथा योग अर्थात् व्यापारान्तर निरूपण करने (बताने) के लिये भृकुटि (भौंह) चलाना सत्रहवां अंगुलीभमुहा नामका दोप होता है।

काउस्सगम्मि ठिउं, सुरा जहा बुडबुडेइ अव्वत्तं।
अणुपेहंतो तहवा नरोव चालेइ उट्ठपुडं ॥

भावार्थ—जैसे मदिरा (शराब) में बुडबुड शब्द होता है तैसे ही कायोत्सर्ग में नमस्कारादि का चिन्तवन करते समय बुडबुड अव्यक्त शब्द करने से अठारहवां वारुणी दोष होता है। तथा नमस्कारादि का चिन्तवन करते समय वारंवार होठको हिलाने से उन्नीसवां प्रेष्य दोष होता है।

सामायिक लेनेकी विधि ॥

प्रथम स्थानक (जगह), आसन, पूंजणी, मुहपत्ति आदि देख लेना, पीछे जगह जयणा पूर्वक पूंज कर आसन बिछाना, पीछे आसन छोड़ कर पूर्व तथा उत्तर दिशा के तरफ मुख करके, दोनों हाथ जोड़ कर, पंचांग नमा कर, तीन वार विधि युक्त तिक्खुत्ता के पाठसे वंदना (नमस्कार) करके श्रीसीमंधरस्वामी भगवान् की या अपने धर्माचार्य (गुरुदेव) की आज्ञा ले कर 'इरियावहिया'की पाटी खडे हो कर बोलनी, पीछे 'तस्स उत्तरी'की पाटी बोलकर काउस्सग्ग करना, काउस्सग्ग में इरियावहिया की पाटी "जीवियाओ ववरोविया" तक मन में कहना, बादमें 'नमो अरिहंताणं' मनमें और प्रकट कहकर काउस्सग्ग पारना, पीछे लोगस्स की पाटी प्रकट कहे, पीछे 'करेमि भंते' की पाटी 'जाव नि-

यमं' तक कह कर जितना अधिक मुहूर्त रखना हो इतना रख कर पज्जुवासामिसे ले कर अप्पाणं वोसिरामि तक पूरे पाठ कहना। पीछे नीचे बैठ कर बायाँ गोड़ा (घुटना) खड़ा कर, दोनों हाथ जोड़ कर नमुत्थुणं का पाठ दो वार कहना। दूसरा नमुत्थुणं के अंतमें जहाँ 'ठाणं संपत्ताणं' आता है वहाँ 'ठाणं संपाविउ कामाणं' बोलना। पीछे आसनपर बैठ कर सामायिक का काल पूरा नहीं हो तब तक ज्ञान-ध्यान करना या पढा हुआ ज्ञान याद करना, नया बोलचाल-थोकड़ा पढना या विचारना इत्यादि धर्म संबंधी ज्ञान-ध्यानसे सामायिक का काल पूरा करना। गुरु महाराज विराजमान हो तो उनके संमुख बैठे पीठ न दे, सज्झाय व्याख्यान आदिका उपदेश दे रहे हो तो उसमें उपयोग रखे। सामायिक का भण्ड उपगरण विकार जनक न रखे। स्त्री आदि के चित्र रहित स्थानमें सामायिक करें। सामायिकमें सामायिक के दोष छोड़े।+

सामायिक पारने की विधि।

सामायिक पारने के समय 'इरियावहिया' 'तस्स उत्तरी' का पाठ कहकर काउस्सग्ग करना। काउस्सग्गमें १ या २ लोगस्सका पाठ मनमें कहना बाद काउस्सग्ग 'नमो अ-

+नोट—सामायिकका काल १ मुहूर्त याने ४८ मिनिट का होता है॥

रिहंताणं' मनमें और प्रकट कहकर पारना। पीछे लोगस्स का पाठ प्रकट कहना। पीछे वायाँ गोड़ा खड़ा रखकर दोनों हाथ जोड़ कर नमुत्थुणं का पाठ दो वार बोल कर 'नवमा सामाइयवयस्स' इत्यादि सामायिक पारने का पाठ पूरा कहना। पीछे तीन वार नवकार मंत्र पढकर सामायिक ठिकाने करना.।

व्याख्यान की आदि में श्रीमहावीरप्रभु की स्तुति।

इस काल में अपने निकट और निःस्वार्थ उपदेशक श्री महावीरस्वामी हैं, वे देवों के भी देव, परमतारक, सर्वोत्तम, दयानिधि, करुणासागर, भानुभास्कर, जीवदयाप्रतिपाल, कर्मशत्रुओं के काल, महामाहण, महागोपाल, परमसारथि, परमवैद्य, परमगारुडी, परमसनातन, अनाथनाथ, अशरण-शरण, अवन्धु के वन्धु, भयभीत के सहारे, सज्जनों के उद्धारक, शिवसुखकारन, राजराजेश्वर, हंसपुरुष सुपात्र-पुरुष, निर्मलपुरुष. निष्कलंकीपुरुष, निर्मोहीपुरुष, निर्वि-कारीपुरुष, इच्छानिरोधतपस्वी, चौंतीस ३४ अतिशयों से विराजमान, सत्यवचन के पैंतीस ३५ गुणोंसे युक्त, एक-हजारआठ १००८ शुभ लक्षणों से शोभायमान, श्री सिद्धार्थ-नन्दन, त्रिलोकवन्दन, अधममलमंजन, भवभयभंजन, अरि-दलगंजन, पापदुःखनिकंदन, क्षमा और दया के लिए शीतलचंदन, दीनदयाल, परमप्रयाल. परमकृपाल,परमपवित्र, परमसज्जन, परममित्र, परमवालेश्वरी, परमहितकांक्षी, परम-

आधार, जहाजसफरीसमान, जगतत्राता जगतमाता, जगत्भ्राता जगतजीवन, जगतमोहन, जगतसोहन, जगतपावन, जगतमावन, जगदीश्वर, जगतवीर, जगतधीर, जगतगंभीर, जगतइष्ट, जगत्‌अभीष्ट, जगतशिष्ट, जगत्‌मित्र, जगत्‌विभु, जगतप्रभु, जगत्‌सुहृद जगत्‌प्रगट, जगतनन्दन, जगतवन्दन, चौदहराज ऊंचे लोकके चूडामणि मुकुटकेसमान, भव्य प्राणियों के हृदय के नवशृंगार, शीतलपुंज, जगतशिरोमणि, त्रिभुवनतिलक, समवशरण के सिरताज, सरस्वती के बाज, गणधरों के गुरुराज, छः काय के छत्र, गरीबों के निर्वाहक, मोह के घरट्ट, वाणीरूपी पद्म के लिए सरोवर, साधुओं के सेहरा, लोक के अग्रेश्वर, अलोक के साधक, दुःखियों के सहारे, मोक्षको देनहारे, भव्यजीवों के नयनतारे, संतोषके मेरु, सुयश के कमल, सुख के समुद्र, गुणों के लिये हंस, शब्दोंके लिये सिंह, जन्म पर विजय प्राप्त करने वाले, कालको भक्षण करजाने वाले, मनको अंकुश, प्राणियों के कल्पवृक्ष, सम्यग्दृष्टियों के माता–पिता, चतुर्विधसंघके गोपाल (रक्षक), पृथ्वीमण्डल के इन्द्रध्वज, आकाश के स्तम्भ, मुक्ति के उत्तम नरेन्द्र, केवलज्ञान के दाता, चौंसठ इन्द्रों द्वारा पूजनीय, वंदनीय, स्मरणीय, दीनोद्धारक, दीनवन्धु, दीनाधार, सब देवोंके देव, सर्वमुनियोंके नाथ, समस्त योगियोंके ठाकुर, तरणतारण सर्वदुःखनिवारण, अशरण–उद्धारण, भवदुःखभंजन, समता के सिंधु, दया के सागर, गुणोंके आगर, चिन्तामणिरत्न समान, पारसमणि

समान, कामधेनु समान, चित्रावेल समान, मोहन वेल समान, अमृतरसकुंभ-समान, सुखको करने वाले, दुःखको हरने वाले, पापपटलरूप अन्धकारको नाश-करने वाले, चन्द्रमा के समान शीतलता के धनी, सूर्य के समान प्रकाश करने वाले, समुद्र तुल्य गम्भीर, मेरुपर्वत की नाई अचल, वायुके जैसे वे अप्रतिबद्ध विहारी, गगन के समान निरालंबी, मारवाडी वृषभ धोरी समान, पंचायणकेसरिसिंह समान, लोकोत्तरपुरुष, अभयदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, ऐहिकचरमजिनेश्वर जगधनी, और जिनशासन शृंगार, हैं। उन्हें भक्तिभाव से स्मरण करने वाले संसार पार होजाते हैं।

तथा—तत्त्वानन्दी, तत्त्वविश्रामी, अनन्तगुणों के स्वामी, अलक्षगुणों के धनी, अनन्तबल के धनी, अनन्त तेज के धनी, अबाधित—अनन्त आत्मीय सुख के धारण करने वाले, सफलनाम और सफलगोत्र के धारण करने वाले, आपने उत्तम २ शब्दों द्वारा इस भांति प्रकाश किया कि—"हे भव्यजीवो! जो कोई भी जीवजन्तुओं को मारेगा, उसे खुद भी मरना होगा, जो छेदेगा उसे छिदना होगा, जो भेदेगा उसे भिदना होगा, यदि कर्म बांधोगे तो फल अवश्य भोगना पड़ेगा।" इत्यादि शब्दों से शिक्षा देने वाले हे महावीरप्रभो! प्रगट हुए ज्ञान और दर्शन के धारक, अर्हन्, जिन, केवलि, अनाश्रवीपुरुष, तुम्हारे गुण वर्णन करने, विचारने और कहने में नहीं आते। आविनश्वरज्ञान

मय हे जिनेश्वरदेव ! प्रभो आपने साढ़े बारह वर्ष और एक पक्ष भयङ्कर तपस्या करके कर्मों को टाला, गाला, जलाया, दूरकिया, अथवा कर्मों का देना अदा किया और ऋण मुक्त होकर केवलज्ञानरूप लक्ष्मी का पाणिग्रहण किया, हे जिनेश्वरदेव ! हे वीतराग ! आपकी आत्मदशा प्रगट हुई और आप मोक्ष नगर में पधारे। किन्तु सांसारिक जीवों के उपकार, शान्ति और कल्याण के निमित्त, भव्य जीवों के दुःख मिटाने तथा चारगति, चौवीसदंडक, चौरासीलाख योनियों और १९७५०००० करोड़ कुलों में जीव सदा भ्रमण करता हुआ संयोगजन्य शारीरिक, और मानसिक वेदनाओंको सहन करता है, इसके मिटाने के वाले हे परमात्मन् ! आपने पदार्थों का रहस्य समझा देने वाली वाणीलाणी को विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥

॥ इतिशुभम्. ॥

सामायिकसूत्र में आये हुए शब्दोंका अकारादिक्रम.

प्राकृत	संस्कृत	हिन्दी	गुजराती
अइयार	अतिचार	अतिचार (व्रतमें लगा-हुआ दोप)	अतिचार (व्रतमां ला-गेला दोप)
अकरणआ	अकरणता	नहीं करना	नहीं करवुं
अक्खय	अक्षत	अक्षय	अक्षय
अंगसंचाल	अङ्गसञ्चाल	शरीरका स्फुरण	शरीरनुं स्फुरण
अजिअ	अजित	अजितनाथ (दूसरा तीर्थंकर)	अजितनाथ (बीजा तीर्थंकर)
अणवट्ठिय	अनवस्थित	अव्यवस्थितपन	अव्यवस्थित, व्यवस्थित न
अणुपालिअ	अनुपालित	पालन किया	पाळेल [करेल
अणंत	अनन्त	अनन्तनाथ (चौदहवाँ तीर्थंकर)	अनन्तनाथ (चौदमा तीर्थंकर)
अणंत	अनन्त	अन्त–नाश रहित	अविनाशी, नाश रहित
अन्नत्थ	अन्यत्र	दूसरी जगह	बीजे ठेकाणे
अपुणरावित्ति	अपुनरावृत्ति	पुनरागमन रहित	पुनरागमन विनानुं
अप्पडिहयवर-	अप्रतिहतवर	कहां ही भी न रूके	क्यांई पण न अटके

नाणदं- सणधर	ज्ञानदर्श- नधर	ऐसे श्रेष्ठ ज्ञान दर्शनके धारक	तेवा श्रेष्ठ ज्ञान अने दर्शनवाळा
अप्पा	आत्मन्-आत्मा	आत्मा-जीव	आत्मा-जीव
अभग्ग	अभग्न	अभंग	अभग्न-भांगेल नहीं
अभयदय	अभयदय	अभयदान देनेवाले	अभय देनार
अभित्थुअ	अभिष्टुत	स्तुति कि गई	स्तुति करेल
अभिनंदण	अभिनन्दन	अभिनन्दन (चौथा तीर्थंकर)	अभिनन्दन (चौथा तीर्थंकर)
अभिहय	अभिहत	चोट पहुंचाया हुआ	सामा आवताने हणेल
अचल	अचल	स्थिर	स्थिर
अर	अर	अरनाथ (अठारहवाँ तीर्थंकर)	अरनाथ (अढारमा तीर्थंकर)
अरिहंत	अर्हत्	तीर्थंकर और केवली	तीर्थंकर अने केवली
अरुअ	अरुज	रोग रहित	रोग विनाना
अव्वाबाह	अव्याबाध	बाधा रहित	बाधा-पीडा रहित
अविराहिअ	अविराधित	अखण्डित	अखंडित
अहिय	अधिक	अधिक-विशेष	अधिक-वधारे

आ

आइगर	आदिकर	धर्मकी शुरुआतकरनेवाले.	धर्मनी आदि करनार
आइच	आदित्य	सूर्य	सूर्य
आगार	आकार	आगार–छूटछांट	आगार–छुटछांट
आणा	आज्ञा	आज्ञा–हुक्म	आज्ञा–संमति
आयरिय	आचार्य	साधुसंघ का नायक –आचार्य महाराज	साधुसंघनो ऊपरी, जिनागम सूत्र अने अर्थना जाणकार
आयाहिण	आदाक्षिण	दक्षिणसे, जमणी तरफसे.	दक्षिणथी, जमणी तरफथी.
आराहिय	आराधित	आराधन किया–हुआ	आराधना करेल
आरोग्ग	आरोग्य	आरोग्य–निरोगीपन	आरोग्य–निरोगीपणुं

इ

इच्छाकार	इच्छाकार	इच्छापूर्वक	गुरुनी इच्छानुसार दरेक कार्य करवुं
इच्छामि	इच्छामि	मैं चाहता हूं	हुं इच्छुं छुं
इरियावहिया	इर्यापथिका	रास्ते पर चलनेसे जो क्रिया होता है:वह	रस्ते चालतांक्रिया लागे ते.

उ

उज्जोअगर	उद्योतकर	प्रकाश करने वाले	प्रकाशना करनार
उड्डुभ	उद्गरित	डकार	ओडकार
उत्तम	उत्तम	उत्तम-श्रेष्ठ	उत्तम (श्रेष्ठ)
उत्तरीकरण	उत्तरीकरण	उत्कृष्टशुद्धि	विशेष शुद्धि करवीते
उत्तिंग	उत्तिङ्ग	चींटि आदि के बिल	कीडी विगेरे जीवना दर
उद्दविप	उद्द्रावित	हैरान किया हुआ	उपद्रव (त्रास) पमाडेल
उवज्झाय	उपाध्याय	पढ़ाने वाले मुनि	भणावनार मुनि, उपाध्यायमहाराज
उसभ	ऋषभ	श्री ऋषभदेव (आदि-नाथजिन)	ऋषभदेव (आदिनाथ जिन)
उससिअ	उच्छ्वसित	उच्छ्वास	उच्छ्वास

ए.

एगिंदिय	एकेन्द्रिय	एकइन्द्रियवाले	एकइन्द्रियवाळा
एवमाइ	एवमादि	इत्यादि	इत्यादि
एवं	एवं	इस प्रकार	ए प्रकार
एम्न	एण	एह	आ (ए)

आ.

ओसा	अवश्याय	ओस	झाकल (ठार)

क.

कम्म	कर्म	कर्म	कर्म
करेमि	करोमि	मैं करता हूं	हुं करूं छुं
कल्लाण	कल्याण	कल्याण	कल्याण
काउस्सग्ग	कायोत्सर्ग	शरीर के व्यापारका त्याग	शरीरना व्यापारनो त्याग
काम	काम	अभिलाषा	अभिलाषा
काय	काय	शरीर	शरीर
कारवेमि	कारयामि	कराता हूं	करावुं छुं
कित्तइस्सं	कीर्त्तयिष्यामि	मैं स्तवन करूंगा	हुं स्तवन (स्तुति) करीश
कित्तिय	कीर्तित	कीर्तन को प्राप्त	कीर्तन करायेल
किलामिय	क्लामित	थकाया हुआ	थकावेल
कीट्टिअ	कीर्तित	कीर्तन किया	कीर्तन करेल

कुंथु	कुन्थु	कुन्थुनाथ (सत्रहवाँ जिनवर)	कुंथुनाथ (सत्तरमा तिर्थंकर)
केवलि	केवलिन्	केवलज्ञानी	केवली
		ख.	
खासिअ	कासित	खांसी	खांमी, उधरस
खेलसंचाल	श्लेष्मसंचाल	कफ का संचार	कफनो संचार
		ग.	
गमणागमण	गमनागमन	जाना आना	जवुं आववुं
गरिहामि	गर्हे	विशेष निन्दा करता हूं	धिक्कारूं छुं
		च.	
च	च	और (समुच्चय वाचक अव्यय)	अने (समुच्चय वाचक अव्यय)
चउरिंदिय	चतुरिन्द्रिय	चार इन्द्रियवाला	चार इंद्रियवाला
चउविस	चतुर्विंशति	चौबीस	चोवीश
चक्कवट्टि	चक्रवर्ति	चक्रवर्ति (छःखंड राज्य का भोक्ता)	चक्रवर्ति (छःखंड राज्यना भोगवनार)
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

चंद	चन्द्र	चन्द्रमा	चन्द्रमा
चंदप्पह	चन्द्रप्रभ	चन्द्रप्रभ (आठवां जिनवर)	चन्द्रप्रभ (आठमा जिनवर)
चाउरन्त	चतुरन्त	चार गतिका अन्त करनेवाले	चार गतिने जीतनार
चेइय	चैत्य	ज्ञान स्वरूप	ज्ञान स्वरूप

छ.

छीअ	छिक्का, क्षुत	छींक	छींक

ज.

जंभाइअ	जृम्भित	उवासी	बगासुं
जाणियव्व	ज्ञातव्य	जानना	जाणवुं
जाव	यावत्	जबतक	ज्यांसुधी
जावय	जापक	जिताने वाले	जितावनार
जिअभय	जितभय	भयको जीतनेवाले	भयने जितनार
जिण	जिन	रागद्वेष को जीतनेवाले	रागद्वेषने जितनार
जिणवर	जिनवर	,,	,,
जीव	जीव	जीव (प्राणी)	जीव (प्राणी)

जीवदय	जीवदय	जीवन को देनेवाले	जीवनने देनार
जीविय	जीवित	जीवन	जिंदगी
जोग	योग	योग–व्यापार	योग–व्यापार
		झ.	
झाण	ध्यान	ध्यान (एकाग्रमन)	ध्यान (एकाग्रमन)
		ठ.	
ठाण	स्थान	स्थान (जगह)	स्थान
ठामि	तिष्ठामि	करता हूं (स्थिर रहता हूं)	करुं छुं (स्थिर रहुं छुं)
		ण.	
णमुक्कार	नमस्कार	नमस्कार	नमस्कार (प्रणाम)
णमो	नमः	"	" "
		त.	
तंजहा	तथथा	इस तरह	ते जेम छे तेम
तस्स	तस्य	उसका	तेनुं

तह	तथा	तथा	तेम, तेवी रीते
तारय	तारक	तारने वाले	तारनार
ताव	तावत्	तबतक	त्यां सुधी
तिक्खुत्तो	त्रिकृत्वः	तीन वार	त्रण वार
तित्थयर	तीर्थंकर	तीर्थंकर (धर्मतीर्थकी स्थापना करने वाले)	तीर्थंकर (साधु साध्वी श्रावक श्राविकानी स्थापना करनार)
तिन्न	तीर्ण	(संसारसे) तिरेहुए	भवरूपी समुद्रने तरेल
तिविह	त्रिविध	तीन प्रकार	त्रण प्रकार
तीरिय	तीरित	पार (समाप्त) किया	पार उतारेल
तेइंदिय	त्रीन्द्रिय	तीन इन्द्रिय वाला	त्रण इंद्रिय वाळा

द.

दग	उदक	पानी	पाणी
दिट्ठिसंचाल	दृष्टिसञ्चाल	दृष्टिका संचलन	दृष्टिनुं चलन
दिंतु	ददन्तु	देवें	आपो
दिसंतु	दिशन्तु	देवें	आपो

दीवोत्ताण	द्वीपत्राण	द्वीपसमान प्राण बचाने वाले	बेटसमान प्राण बचावनार
दुक्कड	दुष्कृत	पाप	पाप
दुप्पणिहाण	दुष्प्रणिधान	खोटेमार्गमें प्रवृत होना	खरावमार्गे जवुं
दुविह	द्विविध	दोप्रकार	बेप्रकार
देवय	दैवत	देवस्वरूप	देवस्वरूप
		ध.	
धम्म	धर्म	धर्मनाथ (पन्द्रहवां जिनवर)	धर्मनाथ (पंदरमा जिनवर)
धम्मातित्थयर	धर्मतीर्थंकर	धर्मरूप तीर्थको स्थापन करनेवाले	धर्मरूपतीर्थना करनार
धम्मदय	धर्म्मदय	धर्मके दाता	धर्मना देवा वाला
धम्मदेसय	धर्मदेशक	धर्मके उपदेशक	धर्मना उपदेश देवावाला
धम्मनायग	धर्मनायक	धर्मके नायक	धर्मना नायक
धम्मसारहि	धर्मसारथि	धर्मके सारथि	धर्मना सारथि
धम्मवर	धर्मवर	धर्ममें प्रधान	धर्मनो प्रधान

न.

न	न	नहीं	नाहि
नमिजिण	नमिजिन	नमिनाथजी (२१ वां जिनवर)	नमिनाथजी (२१ मा जिनवर)
नमुत्थु	नमोस्तु	नमस्कार हो	नमस्कार थाओ
नमंसामि	नमस्यामि	मैं नमस्कार करता हूं	हुं नमुं छुं
नवम	नवम	नववाँ	नवमा
निग्घायणट्ठ	निर्घातनार्थ	नाश करने के लिये	नाश करवाने माटे
निन्दामि	निन्दामि	मैं निन्दा करता हूं	हुं निंदु छुं
निम्मलयर	निर्मलतर	विशेप निर्मल	विशेप निर्मळ
नियम	नियम	नियम–मर्यादा	नियम–मर्यादा
नीससिअ	निःश्वसित	निःश्वास	निःश्वास

प.

पउमप्पह	पद्मप्रभ	पद्मप्रभ (छट्ठा जिनवर	पद्मप्रभ (छट्ठा जिनवर)
पच्चक्खामि	प्रत्याख्यामि	त्याग करता हूं	त्यजुं छुं

पंच	पञ्च	पांच	पांच
पंचिंदिय	पञ्चेन्द्रिय	पांच इन्द्रियवाला	पांच इन्द्रियवाला
पज्जुवासामि	पर्युपासे	मैं सेवा करता हूं	हुं सेवा करुं छुं
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमामि	मैं प्रतिक्रमण करता हूं	हुं प्रतिक्रमुं छुं आलोचुं छुं
पडिक्कमिउं	प्रतिक्रामितुं	निवृत्त होने के लिये	निवर्तवाने
पढ़म	प्रथम	पहिला (मुख्य)	पहेलुं
पणग	पनक	पांच रंगकी सेवाल (काई)	पांचरंगी सेवाल-लील फूल
पणासय	प्रणाशन	नाश करने वाला	नाश करवा वाला
पयासयर	प्रकाशकर	प्रकाश करनेवाले	प्रकाश करनार
पयाहिणा	प्रदक्षिणा	प्रदक्षिणा	प्रदक्षिणा
परियाविय	परितापित	कष्ट पहुँचाया	दुःख दीधुं होय
पसीयंतु	प्रसीदन्तु	प्रसन्न हों	प्रसन्न थाओ
पहीणजरमरण	प्रहीणजरमरण	बुढ़ापे तथा मरणसे मुक्त	वृद्धावस्था तथा मरणथी रहित

पाणक्कमण	प्राणाक्रमण	प्राणोंका दाबना	प्राणी (जीव)ने कचरवा
पायच्छित्त	प्रायाश्चित्त	आलोचना	प्रायाछित्त
पारेमि	पारयामि	पारूं (समाप्तकरूं)	पारुं (समाप्तकरूं)
पालिअ	पालित	पाला	पाल्युं
पाव	पाप	पाप (दुष्कृत)	पाप
पास	पार्श्व	पार्श्वनाथजी (२३ वें तीर्थंकर)	पार्श्वनाथजी
पित्तमुच्छा	पित्तमूर्च्छा	पित्ताविकार की मूर्च्छा	पितना विकारनी मूर्च्छा
पुप्फदंत	पुष्पदन्त	पुष्पदंत (सुविधिनाथजी का दूसरा नाम)	पुष्पदंत (सुविधिनाथनुं वीजुं नाम)
पुरिसवरपुंडरीय	पुरुषवर-पुण्डरीक	पुरुषों में श्रेष्ठ-कमल के समान	पुरुषोमां श्रेष्ठ कमलनी समान
पुरिसवरगन्ध-हत्थि	पुरुषवर गन्ध-हस्ति	पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ति के समान	पुरुषोमां श्रेष्ठ गन्धह-स्ति समान
पुरिसुत्तम	पुरुषोत्तम	पुरुषों में श्रेष्ठ	पुरुषोमां उत्तम

पुरिससीह	पुरुषसिंह	पुरुषों में सिंहके समान	पुरुषोमां सिंह समान
		फ.	
फासिय	स्पृष्ट	अंगीकार किया	फरसेलुं, कायाथी पालन करेल
		ब.	
बीयक्कमण	बीजाक्रमण	बीजको दाबना	बीजने कचरवुं
बुद्ध	बुद्ध	तत्व को जानने वाले	तत्वने जाणनार
बेइंदिय	द्वीन्द्रिय	दो इन्द्रियवाला	बे इन्द्रियवाला
बोहय	बोधक	तत्वबोध देनेवाले	तत्वने जणावनार
बोहिदय	बोधिदय	सम्यक्त्व देनेवाले	सम्यक्त्व देवावाला
बोहिलाभ	बोधिलाभ	सम्यक्त्व का लाभ	सम्यक्त्वनी प्राप्ति
		भ.	
भगवं	भगवन्	हे गुरु महाराज !	हे गुरु महाराज !
भंते	भगवन्,भदन्त !	हे भगवन् !	हे भगवन् !
भमली	भ्रमरी	चक्कर	चक्कर (फेर)
भवइ	भवति	हो	थाय छे

म.

मक्कडासंताण	मर्कटसन्तान	मकड़ी के जाल	करोंलियानी जाळ
मग्गदय	मार्गदय	(धर्म) मार्ग के दाता	धर्म मार्गना दायक
मंगल	मङ्गल	मंगल (शुभ)	मंगळ (शुभ)
मट्टी	मृत्तिका	मिट्टी	माटी
मण	मनस्	मन	मन
मम	माम्	मुझको	मने
मल्लि	मल्लि	मल्लिनाथ (१९ वां जिन)	मल्लिनाथ (१९मा जिन)
महिय	महित	पूजनको प्राप्त	पूजायेल, महिमा करेल.
मिच्छा	मिथ्या	निष्फल	निष्फल
मुणिसुव्वय	मुनिसुव्रत	मुनिसुव्रतनाथ (२०वां जिन)	मुनिसुव्रत
मुत्त	मुक्त	छुटे हुए	छुटेल
मोअग	मोचक	छुड़ाने वाले	छोड़ावनार
मोण	मौन	मौन (चुप)	मौन

र.

रिट्ठनेमि	अरिष्टनेमि	अरिष्टनेमि (२२ वां जिनवर)	अरिष्टनेमि

ल.

लेसिय	श्लेषित	आपस में या जमीन पर मसला हुआ	परस्पर अथवा जमीन साथे घसेल.
लोअ	लोक	लोक (जगत्)	लोक
लोग	लोक	लोक	लोक
लोगनाह	लोकनाथ	लोगों के नाथ	लोकना नाथ
लोगपईव	लोकप्रदीप	लोगों के लिये दीपक के समान	लोकने माटे दीपक समान
लोगपज्जोअगर	लोकप्रद्योतकर	लोगो में उद्योत करने वाले	लोकमां उद्योत करनार
लोगहिअ	लोकहित	लोगों का हित करने वाले	लोकना हितकारक

वत्तिय	वर्तित	धूल आदिसे ढांका हुआ	धूल आदिथी ढांकेल
वंदामि	वन्दे	मैं स्तुति करता हूं	हुं स्तुति करुं छुं
वंदिय	वान्दित	वन्दन को प्राप्त	वंदायेल
वद्धमाण	वर्द्धमान	वर्द्धमान स्वामी (२४ वां जिनवर)	महावीर स्वामी २४मा जिनवर
वय	वचस्	वचन	वचन
वय	व्रत	व्रत (धार्मिक नियम)	व्रत
ववरोविय	व्यवरोपित	छुड़ाया हो	जुदा कर्या होय
वायनिसग्ग	वातनिसर्ग	वायुका सरना	वायुनुं निकलवुं
वासुपुज्ज	वासुपूज्य	वासुपूज्य (१२ वांजिन)	वासुपूज्य (बारमा जिनवर)
विमल	विमल	विमलनाथ (१३ वां जिनवर)	विमलनाथ (१३ मा जिनवर)
वियट्टछउम	विवृत्तछद्मस्थ	घाति कर्मसे रहित	घाति कर्मथी रहित

विराहणा	विराधना	विराधना (जीव-का विनाश)	विराधना (जीवनो विनाश)
विराहिय	विराधित	पीड़ित किया हुआ	दुःखी करेल
विसल्ल	विशल्य	(तीन) शल्यरहित	शल्यरहित
विसोहि	विशोधि	विशेष शुद्ध	विशेष शुद्ध
विहुयरयमल	विधूतरजोमल	पापरज के मलसे रहित	पापरजना मेलथी रहित
वोसिरामि	व्युत्सृजामि	अलग करता हूं, हटाता हूं, त्यजुं छुं	
		स.	
सक्कारेमि	सत्करोमि	मैं सत्कार करता हूं	हुं सत्कार करुं छुं
संकमण	संक्रमण	खूंदना	कचरवुं
संकामिय	संक्रामित	रखा हो	राख्या होय
संघाइय	संघातित	इकट्ठा किया हुआ	एकठुं करेल
संघाट्टिय	संघाट्टित	छुआ हुआ	अड्केल, स्पर्श करेल
संति	शान्ति	शान्तिनाथ (१६ वां	शान्तिनाथ (१६

संदिसह			
समायरियव्व	समाचरितव्य	आदरना	आचरवुं
समाहिवर	समाधिवर	श्रेष्ठ समाधि	श्रेष्ठ समाधि
संपत्त	संप्राप्त	प्राप्त करने वाले	पामेल
संपाविउं	संप्राप्तुं	पाने को	पामवाने
संबुद्ध	संबुद्ध	बोध को पाये हुए	बोध पामेल
संभव	संभव	संभवनाथ (तीसरा जिनवर)	संभवनाथ (त्रीजा जिनवर)
सम्माणेमि	सन्मानयामि	मैं सन्मान देता हूं	हुं सन्मान करुं छुं
सयं	स्वयं	स्वयं-अपने आप	स्वयं पोतानी मेळे
सरणगइपइट्ठ	शरणगतिप्राविष्ट	चारगति में पड़ने वाले जीवों के शरण	चार गतिमां पड़ता जीवोंने आधारभूत
सरणदय	शरणदय	शरण देनेवाले	शरण देवावाला
सव्व	सर्व	सब	सर्व (बधा)
सव्वदरिसि	सर्वदर्शिन्	सर्वदर्शी	सर्व वस्तुने देखनार

सव्वन्नु	सर्वज्ञ	सम्पूर्ण ज्ञानवाला	सर्व वस्तुने जाणनार
सागरवर गंभीर	सागरवर गम्भीर	महासमुद्र के समान गम्भीर	मोटा सागरनी पेठे गंभीर
सामाइय	सामायिक	सामायिकव्रत	सामायिक व्रत
सावज्ज	सावद्य	पाप सहित	पाप सहित
साहु	साधु	साधु (मुनि)	साधु (मुनि)
सिज्जंस	श्रेयांस	श्रेयांसनाथ (११ वां जिनवर)	श्रेयांसनाथ (११ मा जिनवर)
सिद्ध	सिद्ध	सिद्ध भगवान्	सिद्ध भगवान्
सिद्धि	सिद्धि	सिद्धि–मुक्ति	सिद्धि–मुक्ति
सिद्धिगइनामधेय	सिद्धि गति नामधेय	सिद्धि गति नामक	सिद्धिगति छे नाम जेनुं
सिव	शिव	उपद्रव रहित	उपद्रव रहित
सीअल	शीतल	शीतलनाथ (१०	शीतलनाथ (१०

सुपास	सुपार्श्व	सुपार्श्वनाथ (सातवां जिन)	सुपार्श्वनाथ (सातमा जिन)
सुमइ	सुमति	सुमतिनाथ (पांचवां जिनवर)	सुमतिनाथ (पांचमा जिनवर)
सुविहि	सुविधि	सुविधिनाथ (नववां जिनवर)	सुविधिनाथ (नवमा जिनवर)
सुहुम	सूक्ष्म	सूक्ष्म	सूक्ष्म
सोहिय	शोधित	शुद्ध किया हो	शुद्ध कर्युं होय
	ह.		
हरियक्कमण	हरिताक्रमण	हरि वनस्पति को दावना	लीली वनस्पतिने कचरवी
हवइ	भवति	है	छे
हुज्ज	भवतु	हो	होजो

इति शुभम्.
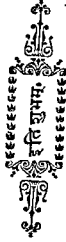
॥ अन्तिम-मङ्गलम् ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः
परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं
सर्वत्र सुखीभवतु लोकः ॥ १ ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं,
सर्वकल्याणकारणम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां,
जैनं जयति शासनम् ॥ २ ॥

॥ अहिंसा परमो धर्मः ॥

श्री जीवदया भजनावली.

संपादक,

मुनि श्री तिलकविजयजी महाराज.

पूना सिटी.

द्वितीयावृत्ति] [प्रती १०००

प्रकाशक,

श्रीयुत शेठ नानचंद भगवानदास–
हस्तक जीवदया खातेकी सहायसे
श्री आत्मतिलक ग्रंथ सोसायटी.
९५ रविवार पेठ पूना सिटी.

मुद्रकः—लक्ष्मण भाऊराव कोकाटे, 'हनुमान' प्रेस,
घ. नं. ३०० सदाशिव पेठ, पुणें शहर.

॥ अहिंसा परमो धर्मः ॥

श्री जीवदया भजनावली.

॥ मंगलाचरण ॥

जय जगत जननी दयादेवी ! सुकृत सुरतरु मंजरी ।
जय जीव जीवनरक्षिका, जय धर्मधारिणी शंकरी ॥
जय इष्ट मात अभीष्टअर्पक, शान्तिदायिनी सर्वदा ।
जय भक्तवत्सल भक्त–मनमें, भावसह बसिये सदा ॥
भगवती आप प्रतापसे, अतिपतित जन पावन भये ।
स्वर्गादि संपति पायके, फिर मुक्तिमंदिर में गये ॥
इस हेतु तुही अघहारिणी, वरमोद मंगलकारिणी ।
दुख विघ्न वृन्द विदारिणी, जय जयति जगदुद्धारिणी ॥

॥ गजल ॥

ऐ मांस खानेवालो ! क्यों जुल्म ढा रहे हो ।
क्यों बेकसों पे नाहक, छुरियां चला रहे हो । टेक ॥
सोचो तो दिलमें अपने, खालिक वही है उनका ।
जिसको कि आप खालिक, सबका बता रहे हो ॥ १ ॥
क्या हक ये आपका है, बतलाइये जरा तो ।
मखलूक को खालिकके, तुम क्यों मिटा रहे हो ॥ २ ॥

खलकत के जो नफेकी, खातिर बनाये हैवाँ।
तुम काट काट उनकी, हड्डी चबा रहे हो ॥ ३ ॥
लेते हो दूध अरु घी, मक्खन मलाई इनसे।
तेगे सितम गलों पे, उनके चला रहे हो ॥४॥
बेदम तडप रहे हैं, इस बेकलीसे बेकस ।
खंजर ले तुम गलों पे, जिनके घुमा रहे हो ॥ ५ ॥
जिनकी कमाई खा खा, पाले हो जिस जिशमको ।
तुम उस जिशमको उनकी, कबरें बना रहे हो ॥ ६ ॥
हड्डी वो मांस खाकर, खूने सितम बहाकर ।
क्यों दूध घीका चश्मा, शीरीं सुखा रहे हो ॥ ७ ॥
मोहसिन कुशी नहीं गर, तो क्या है यह बता दो।
करते दया जो तुम पर, उनको सता रहे हो ॥ ८॥
बेदर्द बेरहम क्यों, इतने हुये हो भाई ।
जो खून बेकसों का, तुम यों बहा रहे हो ॥ ९ ॥
इस बातका ही हमको, भारी तअज्जुब है।
क्यों इल्मो अक्लवाले, इन्साँ कहा रहे हो ॥ १० ॥
सालिग नहीं मिलेगा, सुख तुमको भी कदाचित् ।
जब दूसरोंके दिलको, नाहक दुखा रहे हो ॥ ११ ॥

॥ भजन ॥

कहां गई ऋषियोंकी सन्तान, गौ खडी खडी चिल्लाती ॥ टेक॥
भारत हुआ दयासे खाली, जल गई वेद धर्मकी डाली।

अब ना रही ऋषि प्रणाली, किस पर रक्खू मान ।
कोई नहीं विपद् में साथी—गौ खडी० १ ॥
जबसे बसी मैं भारत देशा, ऋषि मुनि रहे रखवाल हमेशा ।
दुःखका कभी न देखा लेशा, था मेरा सन्मान ।
करूं याद फटे मेरी छाती—गौ खडी० २ ॥
आर्यपुत्र सब हुये अनारी, वेश्यागामी मांसाहारी,
मेरी जान पर चले कटारी, तुम्हारे भनकन कान ।
मेरी कुलीमेट हुई जाती—गौ खडी० ३ ॥
यदि यह गफ़लत रही तुम्हारी, खेती होना है दुशवारी,
दयासिंह यों कहे पुकारी, जाते कहां किसान ।
हाय ! ! धर्म डाल फटी जाती—गौ खडी० ४ ॥

॥ गजल ॥

क्या पाप हो रहा है आँखें उघार देखो ।
गायोंकी दुर्दशाको, मित्रो विचार देखो ॥ टेक ॥
जिस शक्तिके सहारे, यह देश जी रहा है ।
उसके विनाश से क्या, होगा सुधार देखो ॥
सेवा करे हमारी, मर कर न पैर छोड़े ।
उसके गलेको तो भी, काटे कटार देखो ॥
गोवंशको बचाओ, मिलकर नरेश लोगो ।
भारतका यह हरेगा, सारा विकार देखो ॥

॥ गजल ॥

लुट रहा जिनका खजाना, किस तरह सोते हैं वो।
आंख खुलने पर हमेशा, पीट सर रोते हैं वो ॥ टेक॥
बेजुबां गायोंकी जो, सुनते नहीं फरियादको।
अपनी बर्बादीका दुनियामें, समर बोते हैं वो ॥
कमसे कम हर रोज लाखों, पर चले तेगों तबर।
फिर कहां दर्दे जिगरकी, औषधी टोहते हैं वो ॥
कुछ नहीं जिनको खबर, भारतके अबतर हालकी।
हाथ अपनी जिन्दगी से, इस तरह धोते हैं वो ॥
थी हमारी तन्दुरुस्ती, की गिज़ा दूधो दही।
इसकी जडको काटकर, नामो निशां खोते हैं वो ॥
अपने पैसे से गरज, कोई जीये कोई मरे।
सबके इन बेचारियों के, कत्लका देते हैं वो ॥
जिनके बछडों की कमाईसे, हम पुरशिकमी करें।
आज उनके वास्ते, खंजर लिये होते हैं वो ॥

॥ भजन ॥

दीन पशुओंको यार कब तक मरवाओगे ॥ टेक ॥
ये यौवन और जवानी, है दो दिनकी महीमानी।
जा ओगे यहांसे पधार तब क्या इठलाओगे ॥ दीन० ॥
दुनिया ये चंद्र रोजा है, करो जुलम सितम जो चाहे।

क्रिया संतोने विचार, करोगे सोई पाओगे ॥ दीन० ॥
बहु न्यायकी बात बनाते, औरोंपर छुरी चलाते ।
बने फिरते सरदार, जमीमें घुस जाओगे ॥ दीन० ॥
तजके घृत दूध मलाई, रहे हाड और मांस चबाई ।
बुद्धि पर पड़े अँगार, यमकी मार खाओगे ॥ दीन० ॥
तुम मांस औरका खाते, और अपना मांस बढाते ।
बने फिरते खूं ख्वार, पीछे पछताओगे ॥ दीन० ॥
बलदेव कहे सुनो भाई, कुछ कर लो धर्म कमाई ।
जिन्दगी है दिन चार, होशमें कब आओगे ॥ दीन० ॥

॥ पीलू ॥

वेद पुरान कुरानके मांही, हिंसा निषेध करी प्रभु भाई ।
हिन्दू कहायके हिंसा कराई, वाको मनु रिषि कहत कसाई ॥
पुण्य गँवायके पाप कमाई, कैसे बने परभव सुखदाई ।
पशुअन मारके लेत हैं खाई, ऐसे नरोंको नरक फरमाई ॥
प्राणीदया निज सुखकी कमाई, संग्रह कर परभव सुख पाई ।
सब शास्त्रोंमें अहिंसा ही गाई, हिंसा करो तो है राम दुहाई ॥
धर्म कर्म सब इसमें समाई, यही धर्मका सार बताई ।
दीन हीन पर करुणा लाई, समझो निज सम पीड पराई ॥
हिंसा सम कोई पाप है नाहीं, पुण्य अहिंसा धर्म कहाई ।
सच्चे अहिंसक जो बनो भाई, तिलक कहे मुक्ति हो जाई ॥

॥ भजन ॥

मांसाहारी लोगोंने, भारतमें जुल्म मचा दिये,
मांसाहारी लोगोंने ॥ टेक

गौ मातासा दुखी न कोई, घी और दूध कहांसे होई।
बल विचार प्रिय मेधा खोई, दुर्बल निपट बना दिये ॥
दुष्टाचारी लोगोंने–भारतमें० ॥ १॥

हा श्वानोंका पालन करते, गौरक्षा में चित्त न धरते।
हिंसा करनेसे नहीं डरते, खट खट छुरे चला दिये ॥
आफत तारी लोगोंने—भारतमें ॥ २।

जिनसे है दुनियाका पालन, उन्हें मार क्या सुख हो लाल
फस गई प्रजा विपतके जालन, उत्तम पशु खपा दिये ॥
क्या मन धारी लोगोंने--भारतमें०॥ ३॥

मृगा उछलते दृष्टि न आवें, दरियाओंमें मीन न पावें।
मोर कहाँसे कूक सुनावें, मार मारके ढा दिये ॥
विपदा डारी लोगोंने--भारतमें० ॥ ४ ॥

कबूतरोंके गोल रहेना, तीतर करत कलोल रहेना।
शुक मैना अनमोल रहेना, हरियल गर्द मिला दिये ॥
पँदगी मारी लोगोंने—भारतमें० ॥ ५ ॥

अजा भेड दुम्बे नहीं छोड़े, उनके हो गये जगमें तोड़े।
बने कहांसे ऊनी जोड़े, महँगे मोल बिका दिये ॥
कीनी ख्वारी लोगोंने—भारतमें० ॥ ६ ॥

ैल भैंस भैंसे हनि डारे, शशक स्यार मुर्ग गोह विचारे ।
ारीब कच्छप नेटाने मारे, ऐसे त्रास दिखा दिये ॥
दुख दे भारी लोगोंने—भारतमें ॥ ७ ॥

ाब सब जन्तु निवड जायँगे, सोचो तो फिर ये क्या खाँयेंगे,
ाहे घीसा सब सुख न पायँगे, सो कारण मैं गादिये,
सुन लई सारे लोगोंने, भारतमें ॥ ८ ॥

॥ भजन ॥

देखो धर ध्यान मांसके खानेवालो, देखो धर ध्यान ॥ टेक ॥
ाश मनुष्य कहलाते हो, फिर भी तो मांस खाते हो ।
न वशमें रही जुबान—मांसके० ॥ १ ॥
ागर तुम्हें मांस खाना था, पशु पक्षी बन जाना था ।
ाने थे क्यों इन्सान--मांसके० ॥ २ ॥
अनमोल देह नर पाई, तज दया बने हो कसाई ।
मांस मदिरा लगे खान--मांसके० ॥ ३ ॥
ाश जरा रहिम नहीं आया, दीनोंका मारके खाया ।
ेट किया कबरस्तान--मांसके० ॥ ४ ॥
जब कांटा लगे तुम्हारे, भरते हो तब सिसकारे ।
कहो हा निकली जान--मांसके० ॥ ५ ॥
दीनोंपर छुरी चलावे, वहां ठकुराई जतलावे ।
शेर लख हो हैरान--मांसके० ॥ ६ ॥
कोई अंडे तक खाजावें, वे महा नीच कहलावें ।

मूत्र मनी लग गये खान—मांसके० ॥६॥
जो मनुज मांस खाते हैं, वे घातक कहलाते हैं।
मनुने किया बयान—मांसके० ॥ ७ ॥

॥ गायकी पुकार ॥

॥ गजल ॥

करुणा निधान भगवन मेरी सहाय कीजे।
भां भां अवाज वाली अरजी पे ध्यान दीजे ॥ टेक॥
खा पीके घास पानी, देती हूं दूध सबको।
हिन्दू हो या मुसलमा, खुद ही विचार लीजे ॥ करुणा
बच्चोंको मेरे लेकर, सेवामें लोग अपनी।
पाते हैं अन्न जिससे, सारा जहान रीझे ॥ करुणा
मरते समय मैं अपना, देती हूं चर्म इनको।
पैरोंमें पहननेको, जूती बनाय लीजे ॥ करुणा
करती हूं मैं भलाई, दुनिया में हरतरहसे।
गर हो कसर तो कुछ भी, मुझको बताय दीजे ॥ करुणा
खाते हैं घी मलाई, मेरे प्रतापसे जो।
वे काटते हैं मुझको, बस इसका न्याय कीजे ॥ करुणा

मुनि तिलकविजय.

॥ कवाली ॥

सताते हैं जो औरोंको सताये वो भी जायँगे।
बचाते हैं जो गैरोंको बचाये वो भी जायँगे ॥ टेक ॥
जो करके जुल्म निजबलसे गरीबोंको रुलाते हैं।
बनाकर रंक और निर्बल रुलाये वो भी जायँगे ॥ सताते
छुरी पशुओंकी गरदन पे जो निर्दय हो चलाते हैं।
वक्त इन्साफ के अपनी भी वो गरदन कटायँगे ॥ सताते
जो क़ुरबानी बलीयग में पशुको होम करते हैं।
वे उनके पाप अग्निमें वहां पर होमे जायँगे ॥ सताते
धर्मके नामसे जो खून बकरोंका बहाते हैं।
भयंकर नर्कमें इसका नतीजा वो भी पायँगे ॥ सताते
सदा नेकी जो करते हैं, बदीके पास नँही जाते।
अमर होकर वही अपना,सफल जीवन बनायेंगे ॥ सताते

मुनि तिलकविजय.

दोहा—मांस मांस सब एकसे. क्या बकरी क्या गाय।
यह जग अंधा हो रहा, जान बुझकर खाय ॥

बेखता जीवको मारके नर दोजकमें जाते हैं ॥ टेक ॥
औरोंके गल छुरी धरें हैं, नहीं संग दिल दया करें हैं।
पापी कुष्टी होय मरें हैं, दिलसे रहम विसारके।
गल अपना कटवाते हैं, नर दोजकमें ॥

जो गल कटकर बहिस्त जावे, फाट कुटुंब क्यों न पहुँचावे
और खुदाको दोष लगावे, उसका नाम पुकारके।
दुख देख न घबराते हैं, नर दोजकमें ॥
घास खाय सो गल कटवावें, मांस खाय सो किस घर जावें
समझें ना बहुविध समझावें, खुश होते शिर वारके।
करनीका फल पाते हैं नर दोजकमें ॥
मांस मांस सब हैं इकसारी, क्या बकरी क्या गाय बिचारी।
जान बूझ खाते नरनारी, रूप दुष्टका धारके।
हा मूत्र मनी खाते हैं नर दोजकमें ॥
बढ जाते हैं रोग बदनमें; ना कुछ ताकत बढ़ती तनमें।
हे ईश्वर दे ज्ञान उरनमें, समझें ज्ञान विचारके।
यश जीवदया गाते हैं नर दोजकमें ॥

॥ गजल ॥

जुल्म करना छोड दे जालिम खुदाके वास्ते।
है यह हरकत नारवां अहले वफाके वास्ते ॥ टेक ॥
हैं बनाये सब उसीके जिसने तू पैदा किया।
क्यों सताता है किसीको दो दिनोंके वास्ते ॥
होगी खुद गरजी भला इससे भी बढकर और क्या ?
जान लेता औरकी अपने मजेके वास्ते ॥
काटकर औरोंकी गरदन खैर आपनी मांगता।
दे जगह इन्साफको दिलमें खुदाके वास्ते ॥

चंद रोजा जिन्दगी तन है ये पानीका बुलबुला ।
खांमें खां बनता है क्यों मुजरिम सजाके वास्ते ॥
कर भला होगा भला नेकीका बदला नेक है ।
मत किसीको तंग कर हाजत रफा के वास्ते ॥
कर अदा अपने फरायज होने वाली शाम है ।
मत मेरे मरदूद अब नाजो अदाके वास्ते ॥
भूल कर मालिक को फिरता दरबदर बलदेव क्यों ।
जान देता बेहया वस्ले बुतोंके वास्ते ॥

॥ गजल ॥

दिल में सोचो तो जरा मांसके खानेवाले ।
जीव हिंसासे बचें सुख के बढानेवाले ॥ टेक ॥
तुमने खाया है अगर मांस तो किन जीवोंका ।
जो तुम्हें दूध मलाई के खिलानेवाले ॥
तुमने मारी है अगर जान तो किन जीवोंकी ।
जो सदा बोझ तुम्हारा हैं उठानेवाले ॥
तुमने शक्ति जो दिखाई तो दिखाई ऐसी ।
कर दिये नष्ट पशु हलमें चलानेवाले ॥
तुमने जानें हैं गँवाई तो गँवाई उनकी ।
आडे वक्तोंमें जो हैं काममें आनेवाले ॥
ऐसे जीवोंको सदा मार मिटाया तुमने ।
हैं जो दुनियामें मनुप सुखके बढानेवाले ॥

हैं ये हक रखते सभी तेरी तरह जीनेका।
जिनके हैं आप बने खून बहानेवाले॥
तुलसी उनको है सदा तुमने सताया हरदम।
जितने हिंसक हैं पशु तुमको सतानेवाले॥

॥ लावनी ॥

कहो क्या तुम फल पाया, दीन पशु नाहक कटवाया।
दोहा—आठ नरन पापी करत, यक नर मांस ही खाय॥
धर्मशास्त्र पढ देखिये, मनु रहे बतलाय।
पाप जगभरमें फैलाया—दीन पशु० ॥
दोहा—जिव्हासे पानी पीवत, जीव मांस जो खात।
होत नुकीले दन्त नख, रैन हु उन्हे ही लखात॥
प्राकृतिक नियम यही पाया—दीन पशु॥
दोहा—मांसाशी पशुअन समा, नहीं शरीर तुम भ्रात।
वानर देह समान ही बना तुम्हारा गात।
मांस वानरने कब खाया—दीन पशु० ॥
दोहा—सुख पहुंचावत नित तुम्हे, बकरी भेड अरु गाय।
ऐसे उपयोगी पशु, को तुम लेते खाय।
पेटसे मरघट शरमाया—दीन पशु० ॥

॥ गजल ॥

कौन कहता है कि जालिमको सजा मिलती नहीं।

नेक कामोकी कहो किसको जजा मिलती नहीं ॥ टेक ॥
जुल्म करते हैं जो मसकीनों पै पाकर कुछ अरुज ।
चंद ही दिनमें वहाँ फिर वह हवा मिलती नहीं ॥
जर पे हो मगरूर गिनते हैं जमानेको जो हेच ।
एक दिन ऐसोंको सूखी भी गिजा मिलती नहीं ॥
देख तकलीफोंमें औरोंको हंसा करते हैं जो।
पड़के सड़ते हैं उन्हें ढूंढे कजा मिलती नहीं ॥
सुख के पानेके लिए हो दास तू सबसे हकीर ।
इससे बढ़के और तुझे कोई दवा मिलती नहीं ॥

दोहा–गोरक्षा कीजे सुजन, यह भारी उपकार ।
इससे रक्षा जगतकी पलता है संसार ॥

॥ भजन ॥

दीनो पर दया करोरे, गौमाता कहे रंभायके—दीनो० ॥टेक॥
दूध दही और घी खाते हो, माखे तकसे हर्षाते हो ।
बल बढ मोटे हो जाते हो, बडे बडे सुख पायके ।
दुख सागरसे उधरोरे, दीनो पे दया करोरे ॥ १ ॥
गोबरसे चौके लगवालो, कंडोंको अग्निमें जलालो ।
मूत्रसे उम्दा दवा बनालो, रोगों पर अजमायके ।
मत मांससे पेट भरोरे, दीनो पे दया करोरे ॥ २ ॥
मरतीवार चर्म दे जायें, चर्स ढोल जूते बनवायें ।

फिर भी हम पर छुरी चलायें, न्याय नीति बिसरायके।
ईश्वर से जरा डरोरे, दीनो पे दया करोरे ॥ ३ ॥
सुत हमारे हल कुवेमें चालें, मेवा मिठाई अन्न कमालें।
राजा रंक प्रजाको पालें, अपना जोर लगायके।
फिर भी क्यों प्राण हरोरे, दीनो पे दया करोरे ॥ ४॥
गाडी तोप रथोमें चलते, राजोंके भी काम निकलते।
फिर भी कुकर्मसे ना टलते, भारत हो तडपायके।
गल पर ना छुरी धरोरे, दीनो पे दया करोरे ॥ ५ ॥
घास तृणोंके चरनेवाली, जगकी रक्षा करनेवाली।
बिना खतासे मरनेवाली, वृथा ही मूंड कटायके।
मत बिना मौत मारोरे, दीनो पे दया करोरे ॥ ६ ॥
हे राजन् मेरी अर्जके ऊपर, कीजो गौर गर्जके ऊपर।
घीसाराम फर्जके ऊपर, गाता छंद बनायके।
अधर्मसे अलग ठरोरे, दीनो पे दया करोरे ॥ ७ ॥

॥ गायकी पुकार ॥

कलियुगमें मेरा कोई मददगार नहीं है ॥
कुछ इसमें खता मेरी तो सरकार नहीं है ॥ टेक ॥
बेदर्दीसे जालिमने मुझे खूब सताया।
तकदीरका लिखा मेरे अखत्यार नहीं है–कलियुगमें० ॥
अपसोस यही है कि रही जुल्म ही सहती।
पर दूध देनेसे मुझे इन्कार नहीं है–कलियुगमें० ॥

अय्या मैं जवानीमें पीया दूध तो तुमने ।
छुट्टीका मगर रखना सजावार नहीं है—कलियुगमें० ॥
फिर देखिये क्या हाल है बाजारमें मेरा ।
जालिमके सिवा कोई खरीदार नहीं है—कलियुगमें० ॥
खुद वक्ते जिबह कहता था यों कातिले खंजर ।
जालिम न ग लाकाट गुन्हागार नहीं है—कलियुगमें० ॥
दुखयारीको ऐ हिन्दू मुसलमीन बचालो ।
यह धर्मका बाजार है बाजार नहीं है—कलियुगमें० ॥
डीसी न कभी भूलना मंगतका मकूला ।
जाहिल है जो गायोंका तरफदार नहीं है—कलियुगमें० ॥

॥ भजन ॥

जो है सब जगकी माता, कैसे बकरोंको खावे जो है सब ।टेक॥
जिस को दुरगा कहें भवानी, देवी चामुण्डा कर मानी ।
नहीं उसे कुछ आवे ग्लानी, जरा न शर्मावे ।
डायनको तरस नहीं आता, जो है सब जगकी माता ॥
मांगे भेट बकरा और भैंसा, यह अपराध किया अब कैसा ।
माताको नहीं चाहे ऐसा, गला जो कटवावे ।
वह खड़ा खडा डकराता जो है सब जगकी माता ॥
नास्तिकपनका है यह झंडा, मनुष्य होकर खावे अण्डा ।
पडे नरकमें सिरपर डंडा, क्यों न धर्म मिट जावे ।
औरोंका मांस जो खाता, जो है सब जगकी माता ॥

हिंसा पाप कहा अति भारी, इससे बचो सभी नरनारी
मनुज वही जो कहे मुरारी, मनमें दया जो लावे।
प्राणीको नहीं सताता, जो है सब जगकी माता॥

दोहा—अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा परमं तपः
अहिंसा परमं ज्ञानम् अहिंसा परमा गतिः

॥ भजन ॥

दीनो पे दया बिसरायके क्यों यारो गजब करते हो॥टेर
खग मृग मीन विहंग बिचारे, हैं उस परमेश्वरके प्यारे
उन्हें मारी बनो क्यों हत्यारे, मांस पराया खायके।
अपना तोंदा भरते हो, क्यों यारो गजब करते हो॥ १
दूध दही घृत तुम्हें खिलावें, आप जाय वनमें चरि आवें
मरें तो तुम्हें चाम दे जावें, उन पर छुरी चलायके।
नहीं मालिकसे डरते हो, क्यों यारो गजब करते हो॥ २
थे पूर्वज धर्मज्ञ तुम्हारे, धर्म अहिंसा पालनहारे।
उनके तुम निपजे हत्यारे, पेटको कबर बनायके।
पशु मारी मारी मरते हो, क्यों यारो गजब करते हो॥३॥
दया मनुजका परम धर्म है, उसे त्यागना दुष्ट कर्म है।
जरा न तुमको इसकी शर्म है, वृथा मनुष्य कहलायके।
राक्षसका रूप धरते हो, क्यों यारो गजब करते हो॥ ४॥

अपने पुत्रकी कुशल मनाओ, पूत पराये नित मरवाओ ।
कुछ तो खौफ मालिकका खाओ, किस धोखेमें आयके।
पशुओंके प्राण हरते हो, क्यों यारो गजब करते हो ॥ ५ ॥
जगदम्बा जिसको बतलाते, उसका पूत उस पर कटवाते ।
खुश होते निज कुशल मनाते, ऐसे निपट बोरायके ।
फिर रो रो कर मरते हो, क्यों यारो गजब करते हो ॥६॥

'बलदेव'

॥ अहिंसाका महत्व और हिंसासे हानि ॥

देशोन्नतिकी चाह यदि हो तुमको भाई ।
करो पशु उन्नति इसीमें देश भलाई ॥
है यह कृषि प्रधान देश सब देशो माही ।
और कृषि आधार पशुपर रहे सदा ही ॥
पशुओंका संहार देशका सुख हरता है ।
खेती कम हो गई देश भूखा मरता है ॥
कुलियोंकी भ[illegible]ार हुई गोवध से भारी ।
दूध दही घृत हुआ आज मिलना दुशवारी ॥ २ ॥
कुत्ते बिल्ली लोग घरोंमें पलवाते हैं ।
बकरे भैंसें गाय बैल मरते जाते हैं ॥
हुआ देश बरबाद जमीसे हिंसा छाई ।
हा कहलाकर मनुज दया तज बने कसाई ॥ ३ ॥

धर्मवृक्षका मूल दया बतलाया भाई।
उसे काटकर धर्मवृक्ष फल कैसे पाई॥
सब धर्मोंमें तत्व अहिंसा फरमाया है।
दया कहो या रहम नाम नाना गाया है॥ ४॥
विना अहिंसा धर्म व्यर्थ ही नाम धराया।
मिला नहीं सद्गुरु मूर्खसे कान फुकाया॥
मूढ जनोंने पशु बलि करना बतलाया।
नहीं धर्मका मर्म समझमें उनकी आया॥ ५॥
हैं जो देवी देव मांस क्या वे खावेंगे।
जो खावेंगे मांस नाम राक्षस पावेंगे॥
ले देवोंका नाम पशु जो कटवाते हैं।
लेकर पाप अपार नरकमें वे जाते हैं॥ ६॥
हैं वे पाते घोर यातना वैतरणीकी।
पर यह मिलती उन्हें सीरनी निजकरणीकी॥
हैं जो खाते मांस यहां भी दुख पाते हैं।
मांसाशनसे रोग देहमें हो जाते हैं॥ ७॥
अतः हितैषी बनो सदा पशुओंके प्यारे।
मांसाशन दो छोड़ नष्ट हों दुःख तुम्हारे॥
पशुओंका आशीष ग्रहण कर पुण्य बढाओ।
बन कर परम दयालु स्वर्ग संपत्ति पावो॥ ८॥

॥ गजल ॥

हां घटाकी पटाको हटाके हरि
वह छबीली छटा तो दिखाया करो,

पर ये भारत रहा अब ललाम नहीं
रास आकरके तुम जो रचाया करो ॥ १ ॥
आ ओ खद्दरका कोपीन धारे हुए
बागे जलियां में धूनि रमाया करो,
भक्त वत्सल हो तो आके भक्तोंके संग
चक्र चर्खेका भगवन् चलाया करो ॥ २ ॥
अब वह अर्जुन नहीं है कि गीता पढा
आप शस्त्रोंसे जिसको लडाया करो
अब न कर पाओगे यह कि असुरोंको तुम
मार नदियां लहूकी बहाया करो ॥ ३ ॥
अब तो रचना तुम्हे होगा गीता नया
व्रत अहिंसाका जिससे बताया करो,
यह नहीं तो प्रभो ! बल अलौलिक दिखा
अब उलट फेर दुनियां की काया करो ॥ ४ ॥
जेलके गीत बंसीमें गाया करो
हथकडी बेडियोंको बजाया करो,
कितने अभिमन्यु–प्रल्हाद प्यारे मदन
मारे जाते तनिक देख जाया करो ॥ ५ ॥
कितनी लज्जा रहित हो र हीं द्रौपदी
यह दशा देख तो तर्स खाया करो,
क्यों न आते हो डायरका डर तो नहीं.
भेद हमसे तनिक तो बताया करो ॥ ६ ॥
लूं बलैयां मैं प्यारे कन्हैयां सुनो

सुमरिन ध्यानके साबुन करिले, सत्तनाम दरियाई ॥ दु।
दुविधाके बँध खोल बहुरिया, मनके मैल धोवाई ॥।
चेतकरो तीनोंपन बीते, अब तो गवन न गिचाई ॥।
चालनहार द्वार हैं ठाडे, अब काहें हे पछिताई ॥ दु ॥
कहत कबीर सुनोरी बहुरिया, चित्तअंजन दे आई ॥ दु

पद

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले मन ॥
हीरा पायो गांठ गठियायो, बारवार वाको क्यों खोले म
हलकी थी जब चढी तराजु, पूरी भई तब क्यों तोले मन।
सुरत कटारी भई मतवारी, मदवा पीगई बिन तोले मन ॥
हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले मन ॥
तेरा साहब है घटमाही, बाहर नैना क्यों खोले मन ॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल ओले

पद

अपने घट दियवा बारुं रे. अपने॥ नामका तेल सुरतकी ब
ब्रह्म अगनी उदगारुं रे. अपने ॥ जगमग जोत निहारुं मंदि
तन मन धन सब वारुंरे अपने ॥ झूठी जान जगतकी आ
वारंवार बिसारुं रे. अपने ॥ कहे कबीर सुनो भाई स
आपन काज सँवारुं रे. अपने ॥

पद.

हंसा ! हंस मिले सुख होई ॥
इयां तो पातीं है बुगलनकी, कदर न जाने कोई–हंसा ॥
जो हंसा तोहे प्यास क्षीरकी, कूप नीर नहीं होई–हंसा ॥
यह तो नीर सकल ममताको, हंस तजा जस चोई–हंसा ॥
षट दर्शन पाखंड छानवे, भेस घरे सब कोई–हंसा ॥
चार बरन औ वेद कितावें, हंस निराला होई–हंसा ॥
कहे कबीर प्रतीत मानले, जीवन जाय विगोई–हंसा ॥

पद.

मिलापी आन मिलाओरे, मेरे अनुभव मीठडे मीत. मि.
चातक पीउ पीउ रटे रे, पीउ मिलावन आन,
जीव पीवन पीउ पीउ करे प्यारे, जिउ निउ आन ए–
आन. मि.
दुखीयारी निसदिन रहूं रे, फिरुं सब सुघ बुध खोय,
तनमनकी कबहु लहु प्यारे, किसे दिखाऊं रोय. मि.
निसि अंधियारी मोहे हसे रे, तारे दांत दिखाय,
भादों कादों में किया प्यारे, असुअनधार वहाय. मि.
चित चातक पीउ पीउ करे रे, प्रणमे दोकर पीस,
अवलासुं जोरावरी प्यारे, एती न कीजे रीस. मि.
आतुरचातुरता नही रे, सुनी समता टुक बात,
आनंदघन प्रभु आयमिले प्यारे, आजघारे हरमात. मि.

॥ गजल ॥

मरना जरूर होगा, करना जो चाहो करलो,
फल उसका पाना होगा, करना जो चाहो करलो
पाया मनुज जनम है, जिसका न मोल कम है,
जब तक कि तनमें दम है, करना जो चाहो करलो
जीवनके साथ मरना, जोबनका फल बुढापा,
धनका भी नाश होगा, करना जो चाहो करलो॥
बोवोगे बीज जैसा, फल प्राप्त होगा वैसा,
होना है सोही होगा, करना जो चाहो करलो ॥
रोवोगे या हसोगे, शीसेको देखकर तुम,
प्रतिबिम्ब वैसा होगा, करना जो चाहो करलो ॥
करलो भलाई भाई, करते हो क्यों बुराई,
दिन चार जीना होगा, करना जो चाहो करलो ॥
कर करके छल कपट जो, लाखों रुपये कमाये,
सब छोड जाना होगा, करना जो चाहो करलो ॥
अपने मजेकी खातिर, परके गले न काटो,
दुख तुमको पाना होगा, करना जो चाहो करलो ॥
उपकारको न भूलो, जो चाहते भलाई,
वोही तो साथ होगा, करना जो चाहो करलो ॥
शुभकाम करके मरना, समझो इसीको जीना,
जीना न और होगा, करना जो चाहो करलो ॥
जो आज धर्म करना, छोडो न उसको कलपर,

साथी धरम ही होगा, करना जो चाहो करलो ॥
है मोल जगमें सबका, पर मोल ना समयका,
'बालक' यह कहना होगा, करना जो चाहो करलो

धर्मका खून

गजल

अगर मुँह बन्द करदोगे, तो मैं भी बढके बोलूंगा ॥
गिरादोगे मुझे नीचे, तो सर पर चढके बोलूंगा,
उलट दूंगा मैं दुनियाको, ये फंदा सख्त खोलूंगा ॥
कडक जावेगी बिजलीसी, कि मुँह जिस वक्त खोलूंगा ॥
मिलादोगे मुझे मिटी, मैं मैं चुपचाप होलूंगा,
मगर दिन आयगा कोई, कि जब मैं सांप होलूंगा ॥
तुम्हारी लोटती छाती, पे ऐसा जहर घोलूंगा,
करोगे याद दिल ही दिल,तुम्हे हर पहर बोलूंगा ॥
करो नेकी बदी मैं भी, कभी सब काम तोलूंगा,
मिटा दूंगा तुम्हारा नाम, दमका नाम तो लूंगा ॥
जहां कतरा गिरा मेरा, मैं जिन बनके टटोलूंगा,
बचोगे फिर कहां मुझसे, हवाके पिर टटोलूंगा ॥
कोई हो जायगा पागल, बना मैं भूत डोलूंगा,
करेगा खुदकशी कोई, हुआ मजबूत डोलूंगा ॥

इस पत्र के इसी अङ्क का विशेषांक

समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

भाग १

जिनवाणी सेवक खीचन निवासी श्रीमान् सेठ
शंकरलालजी गोलेछा की पूज्य मातुःश्री
चुन्नीबाई की तरफ से मुनिदर्शन के
लक्ष्य में ज्ञान-प्रभावना
प्रति १०००

सहायदाता—
श्री० सेठ गुलाबचंदजी पन्नालालजी गादिया
पगड़ी व आरकोनम्

प्रति २००० } { वि० सं १९८५

आत्म जागृति-माला पुष्प ४

ॐ

समकित (आत्म-बोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

[भाग १]

समकित श्रेष्ठ स्वभाव, अनुपम रस का सिंधु है।
नाशक मिथ्या भाव, मूर्छित जन हित अमृत सम ॥

प्रकाशक—

सोभागमल अमोलकचन्द लोढा
तथा मगनमल कोचेटा } मानद मंत्री

आत्म जागृति कार्यालय,
बगड़ी (मारवाड़), वाया सोजतरोड.

 महावीर जयन्ती
सं० १९८४
वी० सं० २४५४

समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर

विषयानुक्रम	प्रश्न	पृष्ठ

इस पुस्तक का दूसरा भाग तैयार होरहा है। दोनों भागों की पुस्तक जिन महाशयों को प्रभावना के लिए थोक मंगाना हो वे कार्यालय से मंगावें। जल्दी के कारण भूलों के लिए क्षमा करें।

जयनारायण व्यास
व्यवस्थापक

भूमिका.

चारित्र रूपी शरीर में चैतन्यरूप समकित गुण है। इसका वर्णन करने की शक्ति इस अल्पज्ञ लेखक में नहीं है। तथापि बालभाव से समकित प्रश्नोत्तर लिखने का साहस किया गया है। इसमें अगणित भूलें दृष्टि-गोचर होवेंगी। सुज्ञ पाठक प्रत्येक भूल को नोट करके व्यवस्थापक के पास भेज देवें जिससे पुनः सुधार करने का प्रयत्न किया जावेगा और लेखक के ऊपर भी उपकार होगा।

समकित का विषय इतना आवश्यक व विशाल है कि इसके ऊपर अनेक समर्थ विद्वान् प्रकाश डालें तब कुछ बोध हो सकता है।

आज इसकी प्राप्ति की स्वतन्त्र पुस्तकें भाषामें थोड़ी मिलती हैं जिससे यह मंद प्रयत्न किया गया है। यदि अन्य विद्वान् लोग कृपाकर इस विषय को हाथ में लेंगे तो बहुत उप-कार होगा।

यदि यह पुस्तक समाज को हितकारी मालूम पड़ेगी तो आगे विशेष प्रयत्न करने का यथाशक्ति यथासंयोग सद्भाग्य समझा जायगा।

इस समकित प्रश्नोत्तर में जो उत्तमता है वह महापुरुषों की प्रसादी लेकर धरी है और कोई स्थान में त्रुटि मालूम पड़े तो यह लेखक का प्रमाद जान सुधारने का अनुग्रह करें।

यह प्रयत्न स्व-पर हित बुद्धि से किया गया है। प्रथम निज आत्मा को ही अनेक शास्त्र व ग्रन्थ से समकित स्वरूप शोधने का उत्तम लाभ हुआ है तथा समकित का विषय पुष्ट करने का आत्मा में इस गुण की शुद्धि की आशा है पश्चात् जिज्ञासु आत्माओं को भी लाभ होने की आशा है।

संग्रहकर्ता—
एक समकित प्रेमी.

समकित की महिमा।

१—यह सम्यग्दर्शन महारत्न समस्त लोक का आभूषण है और मोक्ष होने पर्यन्त आत्मा को कल्याण देने वालों में चतुर है।

२—इस सम्यग्दर्शन को सत्पुरुषों ने चारित्र और ज्ञान का बीज अर्थात् उत्पन्न करने का कारण माना है, क्योंकि इसके विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता ही नहीं, तथा यम (महाव्रतादि) और प्रशम (विशुद्ध भाव) का यह जीवनस्वरूप है। इस सम्यग्दर्शन के विना यम व प्रशम निर्जीव के समान हैं। इसी प्रकार तप और स्वाध्याय का आश्रय है। इसके विना ये निराश्रय हैं। इस प्रकार जितने शम-दम-बोध-व्रत-तपादि कहे हैं उनको यह सफल करता है। इसके विना वे मोक्ष फल के दाता नहीं हो सकते हैं।

३—यह सम्यग्दर्शन चारित्रज्ञान के न होने पर भी प्रशंसनीय कहलाता है और इसके विना संयम (चारित्र) और ज्ञान मिथ्यात्व रूपी विष से दूषित होते हैं अर्थात्

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र कुचारित्र कहाता है।

४—सम्यग्दर्शन सहित यम नियम तपादिक थोड़े भी हों, तो उन्हें सूत्रके ज्ञाता आचार्यों ने संसार से उत्पन्न हुए क्लेशदुःखों के लिये रामबाण औषधि के समान कहा है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन के होते हुए व्रतादिक अल्प होवें, तो भी वे संसारजनित दुःखरूपी रोगों को नष्ट करने के लिये दिव्य औषध के समान हैं।

५—आचार्य महाराज कहते हैं कि—जिसको निर्मल अतीचार रहित सम्यग्दर्शन है वही पुण्यात्मा या महा भाग्य-युक्त है, ऐसा मैं मानता हूं, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का मुख्य अंग कहागया है। मोक्ष मार्ग के प्रकरण में सम्यग्दर्शन ही मुख्य कहा गया है।

६—इस जगत् में जो जीव चारित्र और ज्ञान के कारण सदा जगत् में प्रसिद्ध हैं, वे भी सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष को नहीं पाते।

७—आचार्य महाराज कहते हैं कि, हे भव्य जीवो! तुम सम्यग्दर्शन नामक अमृत का पान करो। क्योंकि यह

सम्यग्दर्शन अतुल्य सुख का निधान (खजाना) है। समस्त कल्याणों का बीज अर्थात् कारण है। संसार रूपी समुद्र से तारने के लिये जहाज़ है। तथा इसको धारण करने वाले एक-मात्र पात्र भव्य जीव ही हैं। अभव्य जीव इसके पात्र कदापि नहीं हो सकते। और यह सम्यग्दर्शन पापरूपी वृक्ष को काटने के लिये कुठार (कुल्हाड़े) के समान है, तथा पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है अर्थात् मुख्य है; और जीत लिया है अपने विपक्ष अर्थात् मिथ्यात्वरूपी शत्रु को जिसने ऐसा यह सम्यग्दर्शन है, अतः भव्य जीवों को सबसे पहिले इसे ही अंगीकार करना चाहिये।

छप्पय

सप्त तत्व षट् द्रव्य, पदारथ नव मुनि भाखे।
अस्तिज्ञान सम्यक्त्व, विषय नीके मन राखे॥
तिनको साँचे जान, आप पर-भेद पिछानहु।
उपादेय है आप, आन सब हेय बखानहु॥
यह सरधा साँची धारके, मिथ्या भाव निवारिये।
तब सम्यग्दर्शन पायके, थिर ह्वै मोक्ष पधारिये॥

दोहा

सुख अनंत की नींव है, सम्यग्दर्शन जान,
याही ते शिव पद मिले, भैया लेहु पिछान।

सम्यग्दर्शन अंक है, और क्रिया सब शून्य,
अंक जतन करि राखिये, शून्य शून्य दश गुण।

कवित्त

दर्शन विशुद्ध न होवत ज्यों लग,
त्यों लग जीव मिथ्यात्व कहावे।
काल अनंत फिरे भव में,
महा दुःखन को कहिं पार न पावे॥
दोष पचीस रहित गुणानुभव बुद्धि,
सम्यक् दर्शन शुद्ध ठहरावे।
ज्ञान कहे नर सो ही बड़ो,
मिथ्यात्व तजी शिव मारग ध्यावे॥

संग्रहकर्त्ता
समकित प्रेमी.

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

समकित (आत्म-बोध) प्रश्नोत्तर

अर्थात्

मोक्ष की कुंजी

(भाग—१)

मङ्गलाचरण

सिद्धाण नमो किचा संजायणं च भावओ।
अत्थ धम्मगई तच, अणु सट्ठि सुणे हमे ॥

आदि नाथ आदि दइ, वंदू श्री वर्धमान ।
स्याद्वाद वंदू सदा, प्रकटे अतिशय ज्ञान ॥१॥

श्री आदिनाथ—ऋषभदेव प्रभु से लगाकर श्री वर्धमान स्वामी तक सकल सर्वज्ञ वीतराग देवों को व स्याद्वाद (अनेकांतस्वरूप) जिन-वाणी को भावपूर्वक नमस्कार करता हूं।

स्याद्वाद अनेकांत धर्म कैसा है ? जो उत्कृष्ट आगम और सत्यसिद्धांत का जीव (प्राण) स्वरूप है अर्थात् स्याद्वाद के विना सकल शास्त्र जीव विना के शरीर तुल्य होते हैं।

पुनः स्याद्वाद कैसा है? जन्म से अंधे पुरुषों द्वारा कहे गये हाथी के स्वरूप रूप कथन (एकांतवाद) को निषेध करनेवाला व्यवहार व निश्चय दोनों पाँखों से सत्यज्ञान-रूपी आकाश में निर्भय गति करानेवाला है। ऐसे स्याद्वाद (अनेकांतधर्म) को भाव-नमस्कार करने से अतिशय ज्ञान प्रगट होता है।

सकल अज्ञान अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य समान तीन लोक के समस्त पदार्थों को दिखाने के लिये अद्वितीय नेत्रस्वरूप उत्कृष्ट आगम जैन सिद्धान्त का परिश्रमपूर्वक मनन करके यह "समकित प्रश्नोत्तर" स्व-पर कल्याण हेतु गुरु-कृपा से संग्रह करता हूं।

(१) प्रश्न—मोक्ष मार्ग किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिसके द्वारा सब प्रकार के दुःखों से सदा के लिये छूट जायँ उसे मोक्ष मार्ग कहते हैं। यह चार प्रकार का है (१) सम्यग् (सम्य) ज्ञान (२) सम्यक्

(सत्य) दर्शन (३) सम्यग् (सत्य) चारित्र (४) सम्यक् (सत्य) तप।

(२) प्रश्न—चारों में मुख्य कौन है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन अर्थात् समकित सब में प्रधान है। कारण कि समकित प्रगट होने पर ही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र होता है। समकित के विना दोनों ही मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र कहे गये हैं।

समकित अर्थात् सच्ची समझ, सद्विवेक, सुश्रद्धा के विना भाषा-ज्ञान या दूसरी पढ़ाई खूब होने पर भी मिथ्या-ज्ञान ही कहा गया है। हज़ारों शास्त्र, विद्या, कला पढ़ा होवे तो भी यदि सद्विवेक न होवे वह उन्मार्ग (कुचारित्र) गामी हो सकता है और सच्ची समझपूर्वक थोड़ा भी ज्ञान व चारित्र हो वह सुमार्गगामी बन सकता है। इसलिये समकित ही सब गुणों में प्रधान गुण है।

(३) प्रश्न—समकिती जीव के क्या गुण हैं ?

उत्तर—(१) शरीर, इन्द्रिय, भोग, विषय, कषाय प्रति अरुचि, त्यागबुद्धि हो, इन पर ममत्व न होवे।

(२) अतींद्रिय—(इन्द्रियरहित, विषयसुख के त्यागरूप) आत्मिक सुख का स्वाद आवे।

(३) स्वानुभूति—आत्मा के सत्य स्वरूप का अनुभव होवे ।

(४) शत्रु के भी गुण देखे, सदा समभाव रक्खे।

(५) विवेक बुद्धि होवे, क्या आत्मा को हितकारी है, क्या अहितकारी है, उसका ज्ञान करके सदा हितमार्ग में ही प्रवृत्ति करे, कभी अहित मार्ग में प्रवृत्ति न करे ।

(६) दुःखों के मूलकारण अज्ञान, मिथ्यात्व (अंधता) विषय कषाय जान इनसे स्वयं बचे व औरों को बचावे । यह भाव अनुकंपा है ।

(७) श्रद्धा—आत्मा के सत्यस्वरूप को नय, प्रमाण व व्यवहार निश्चय से समझकर सब बाह्य वस्तुओं से भिन्न मैं एक अनंत ज्ञान सुखादिपूर्ण आत्मा हूँ, ऐसी दृढ़ श्रद्धा होवे और हमेशा आत्मगुण घातक तत्वों (धन, भोग, विषय, क्रोधादि कषाय) को छोड़कर ही आनंद माने ।

(४) प्रश्न—समकित कैसा है ?

उत्तर-संसार समुद्र तरने के लिये चारित्र रूपी जहाज़ है, ज्ञान रूपी मार्ग दर्शक दिव्य दीपक है, समकित

रूपी खेवटिया (नाविक) है। समकित रूपी खेवटिया न हो तो सब साधन शन्य रूप हैं। जैसे विना बीज के वृक्षकी उत्पत्ति, वृद्धि व फल नहीं होते, इसी प्रकार समकित (सच्ची समझ, सद् विवेक) रूपी बीज के विना सम्यक् ज्ञान, चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि भी नहीं हो सकती तथा उसका फल सत्य सुख (मोक्ष) नहीं मिलता। तथा समकित नींव के समान है। जैसे विना नींव के मकान नहीं ठहर सकता उसी प्रकार विना समकित के ज्ञान चारि नहीं ठहर सकते।

(५) प्रश्न—समकित गुणको रोकने वाला अंतरंग कारण क्या है ?

उत्तर—मिथ्यात्व मोहनीय है। मिथ्या अर्थात् खोटा मोहनीय अर्थात् रांचना, ममत्व करना। जो बात खोटी है उसमें रांचे, ममता करे सो मिथ्यात्व मोहनीय है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने का कारण मिथ्यात्व मोहनीय के कर्म-दल हैं। और पुनः ऐसी बुद्धि से मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध होता है।

(६) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय से कैसी बुद्धि होती है ?

उत्तर—मिथ्या—अर्थात् विपरीत बुद्धि होना। जो अपनी चीज़ें नहीं हैं उन्हें अपनी माने। जैसेः—शरीर, इन्द्रियाँ, भोग, धन, परिवार, निंदा, स्तुति, सुख दुःख के सकल प्रसंग में ममता (अपनात) सो मिथ्यात्व है। ऐसे भावों से पुनः मिथ्यात्व का बंध होता है, इसलिये ऐसी बुद्धि छोड़ना चाहिये।

(७) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय से जीवकी उल्टी बुद्धि क्यों होती है ?

उत्तर—जैसे नशीली चीज़ खाने से सयाना मनुष्य कुछ का कुछ बोलने लगता है, धतूरा का दूध पीने से सब पीला पीला दीखता है। यह वस्तु का स्वभाव है। उसी प्रकार मिथ्यात्व मोहनीय कर्म प्रकृति का स्वभाव जीवकी विपरीत बुद्धि करने का है।

(८) प्रश्न—वस्तु का स्वभाव ऐसा क्यों ?

उत्तर—यह अनिवार्य है, स्वयं सिद्ध है, अग्नि उष्ण क्यों ? जल शीतल क्यों ? सूर्य उष्ण, प्रकाशमय क्यों ? चन्द्रमा शीतल प्रकाश-मय क्यों ?

इसका उत्तर क्या देंगे ? उत्तर यही आवेगा कि वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है, इसमें प्रमाण व तर्क का

स्थान नहीं है । इसी प्रकार मिथ्यात्व कर्म प्रकृति का फल भी स्वभाव से ही ऐसा है कि जीव की विपरीत बुद्धि हो जाती है ।

(९) प्रश्न—कर्म क्यों माने ?

उत्तर—इस जगत् में कोई मनुष्य, कोई पशु, कोई पक्षी, कोई जलचर, कोई आकाशगामी जीव दीखते हैं, कोई कीड़े, मकोड़े, टीड़ी, पतंग आदि छोटे जीव हैं, कोई बुद्धिमान्, कोई मूर्ख, कोई बली, कोई दुर्बल, कोई सदा निरोगी, कोई सदा रोगी, कोई जन्म से धनवान्, कोई जन्म से निर्धन, कोई रूपवान्, कोई कुरूपवान्, कोई सुखी और कोई दुखी क्यों है ? उत्तर यही आता है कि जैसे कर्म–भूत पुरुषार्थ–गतकाल में काम किये, बीज बोये हैं, वैसे ही फल मिले हैं । बिना कर्म सिद्धान्त माने जीवों की विचित्र दशाओं की सिद्धि ही नहीं होती ।

(१०) प्रश्न—इन कर्मों को बिना भोगे ही क्या छुटकारा हो सकता है ?

उत्तर—हां, कर्मों का छुटकारा दो तरह से होता है । जो कर्म-फल भोगे जाते हैं वे सविपाक निर्जरा कहाते हैं और जो कर्म-फल मिलने के पूर्व ही शुद्ध भाव से दान,

शील, तप, संयम व ध्यान से नाश होते हैं वे अविपाक निर्जरा कहाते हैं।

(११) प्रश्न—निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जृ-अर्थात् जीर्ण होना। विशेष प्रकार से कर्मों का नाश होना सो निर्जरा है।

(१२) प्रश्न—मिथ्यात्व मोहनीय कैसे नाश हो सकती है ?

उत्तर—यथार्थ रूप से नवतत्व व छः द्रव्यों का सात नय, चार प्रमाण, सामान्य, विशेष, द्रव्य, गुण, पर्याय, बाह्य, आभ्यन्तर, निश्चय, व्यवहार से, ज्ञान करके अपने आत्मस्वरूप को पहिचाने, निज आत्मा और अपने ज्ञान चारित्र आदि गुणों को ही अपने आदरने योग्य, श्रद्धेय (माने) ऐसी समकित भावना से मिथ्यात्व (विपरीत बुद्धि) का नाश होता है।

(विशेष प्रकार से समकित भावना चिंतवन करना हो तो "आत्मजागृति भावना" और समकित "स्वरूप भावना" की पुस्तकें देखें)

(१३) प्रश्न—सच्चा जानना या झूठा जानना क्या ज्ञानावरण कर्म का उदय है कि अन्य का ?

उत्तर—सचापन या झूठापन ज्ञानावरण का उदय नहीं परन्तु मिथ्यात्व का उदय है। कारण ज्ञानावरण के तीव्र उदय से ज्ञान थोड़ा होवे तथा ज्ञानावरण के क्षयोपशम से ज्ञान ज्यादा होवे। उसमें सत्यपन या असत्यपन पैदा करने की शक्ति नहीं है, कारण ज्ञानावरण कर्म की सम्यग् ज्ञानावरण या मिथ्या ज्ञानावरण-ऐसी प्रकृति नहीं है। ज्ञानावरण अर्थात् ज्ञान को आवरण करे, ढांके उसे ही ज्ञानावरण कहते हैं। मिथ्यात्व का अर्थ उलटापन अर्थात् जो विपरीतपन उत्पन्न करे सो मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व जीव के ज्ञान, चारित्र, वीर्य आदि अनन्त गुणों को विपरीत करता है। मिथ्यात्व होवे वहां तक ज्ञान मिथ्याज्ञान, चारित्र मिथ्याचारित्र, सुख बाह्य (पुद्गलीक) सुख, वीर्य कुपुरुषार्थ (बालवीर्य) रहता है। जब मिथ्यात्व नाश होजावे तब मिथ्याज्ञान आदि अनन्त गुण सम्यक्-सुलटे होजाते हैं।

(१४) प्रश्न—बहुत शास्त्र कंठस्थ होने पर भी समकित के बिना मिथ्या ज्ञान होता है तो वह पदार्थ को किस प्रकार जानता है ?

उत्तर—मिथ्या ज्ञान का अर्थ ऐसा न करें कि मकान को मकान न जाने, जीव को जीव न जाने। समकित

बिना अनेक शास्त्र के अर्थ भावार्थ तथा नय प्रमाण निक्षेप के विस्तृत ज्ञान से पदार्थस्वरूप खूब बारीकी से समझे, बंध मोक्ष के स्वरूप को समझे, जगत् के पदार्थ और भावों को बराबर जाने। यह सब जानना जहां तक आत्मानुभव शुद्ध आत्मस्वरूप का निश्चय स्वानुभूति (स्वानुभव) न हो वहां तक मिथ्या माना गया है, कारण जो आत्मस्वरूप का अनुभव न होवे तो खीर की कड़ाई की कुड़छी तुल्य शुष्क ज्ञान है। सब ज्ञान का सार एक आत्मस्वरूप का अनुभव करना ही है। अपना जीव अनंत-बार हजारों शास्त्र पढ़ चुका, केवल एक शुद्ध निज आत्म-स्वरूप का अनुभव नहीं करने से अज्ञानी रहा है। जो राग, द्वेष, मोह (दर्शन मोहनीय) को त्याग करे तो थोड़ा ज्ञान होते हुए भी आत्मानुभव कर लेता है। जगत् के सर्व जड़ चेतन पदार्थों को अपनी आत्मा से जुदे अनु-भव करे, अपनी निज आत्मा में आपको ही अनुभवे। इन्द्रियजन्य विषय सुख जिन्हें अंतर से रोगरूप कड़ुए मालूम होते हैं, जो अविकारी अतीन्द्रिय निर्विकल्प आ-त्मिक सुख को भोगते हैं। जिस ज्ञान में आत्मा का निज स्वरूप प्रतिभासित होता है वही ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। ऐसा सम्यक् ज्ञान होने पर दान देना, शील पालना, संयम पालना, तप करना कष्ट रूप नहीं मालूम होता।

दान देना मल-त्याग रूप सुख देता है। संयम पालना सच्चा सुख रूप प्रतीत होता है। तप अपूर्व आनन्द होता है। शील खुजली के निरोगी को खुजालने की इच्छा ही न हो वैसे अपना स्वभाव समझ पालता है।

(१५) प्रश्न—समकित का लक्षण व स्वरूप क्या है?

उत्तर—(१) जीव अजीव आदि तत्वों का विपरीत मान्यता रहित जैसा स्वरूप है वैसा माने (श्रद्धा करे, निश्चय करे) व अनुभवे सो समकित अर्थात् आत्मदर्शन आत्मानुभव है।

(२) स्वानुभूति आत्मा के स्वरूप को अनुभवे वह समकित।

(१६) प्रश्न—समकित के लक्षण कई स्थान में भिन्न भिन्न बताये गए हैं तो कौनसा लक्षण ठीक है?

उत्तर—कोई स्थान में व्यवहार समकित के लक्षण बताये गए हैं और कोई स्थान में निश्चय समकित के लक्षण बताये गए हैं। इसलिये शास्त्र में कहा है कि जो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों के स्वरूप को बराबर

समझता है वही सत्य समझ सकता है तथा सत्य उपदेश दे सकता है अन्यथा कईवार हानि होजाती है।

(१७) प्रश्न—व्यवहार समकित का क्या लक्षण है?

उत्तर—व्यवहार समकित का लक्षण देव अरिहंत गुरु निग्रंथ, संवर, निर्जरा में धर्म व स्याद्वाद युक्त शास्त्र को माने, सम् (समभाव), संवेग (धर्म भक्ति) निर्वेग (वैराग्य–भोग अरुचि), अनुकंपा व जीवादि नवतत्व की यथार्थ श्रद्धा–आस्ता, ये पांच लक्षण तथा व्यवहार समकित के ६७ बोल के गुण व्यवहार लक्षण हैं।

(१८) प्रश्न—निश्चय समकित का लक्षण क्या है?

उत्तर—अन्तरंग में अनंतानुबंधी (पर वस्तु को अपनी मानकर क्रोधादि करना) क्रोध, मान, कपट, लोभ, मिथ्यात्व मोहनीय (खोटे में आनन्द ममत्व), मिश्र मोहनीय (कुछ सत्य, कुछ असत्य में आनन्द), समकित मोहनीय (सत्य न किंचित् शंकादि दोष सेवन)। इन सात प्रकृति का अभाव करे और बाह्य में शुद्ध आत्मस्वरूप का अनुभव करे यह (स्वानुभूति) निश्चय समकित का लक्षण है।

(१६) प्रश्न—स्वानुभूति क्या चीज है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरणी के पेटे की एक विशेष प्रकृति (स्वानुभूति आवरण) नाम की प्रकृति है । वह हटने से स्वानुभूति, आत्मानुभव-होता है । यह ज्ञान का गुण है, तथापि निश्चय समकित होवे तब ही होता है । जिससे समकित के लक्षण में भी बताया जाता है । जो शुद्ध आत्म अनुभव होवे वहां निश्चयात्मक गुण है । वह समकित है ।

(२०) प्रश्न—कर्म प्रकृति तो १४८ या १५८ कही गई है जिसमें यह प्रकृति क्यों नहीं कही गई ?

उत्तर—आत्मा के असंख्य लेश्या, भाव, परिणाम होते हैं, उनमें जुदी २ कर्म प्रकृति का बंध होता है, कर्म की असंख्य प्रकृति (जातियां) हैं परन्तु मुख्य आठ हैं, जिन्हें आठ कर्म कहते हैं व उत्तर प्रकृति १४८ या १५८ कही गई हैं, कारण समझाने के लिये आवश्यक ही लेना पड़ता है । जैसा जीव के कर्म उदयानुसार अनन्त भेद हो सकते हैं तथापि ५६३ भेद ही कहे गये हैं, कारण समझाने के लिये कुछ मर्यादा व वर्ग करना ही पड़ता है । पुनः अनंत भेद जीव कह दिया है ।

(२१) प्रश्न—शास्त्र में किसी स्थान में आत्मा को जानना समकित है, ऐसा कथन है ?

उत्तर—हां अनेक स्थान में ये भाव निकलते हैं। तथा श्री पन्नवणा सूत्र, आवश्यक सूत्र व उत्तराध्ययन मोक्ष-मार्ग अध्ययन में दर्शन—समकित का विवेचन करते चार लक्षण में पहला "परमथ्थसंथवो वा" परम मानी प्रधान, अर्थ मानी तत्त्व। सर्व तत्त्व में एक निज आत्मा ही प्रधान तत्त्व है। उसका संस्तव करे, परिचय करे, अनुभव करे, ऐसा कहा गया है फिर भी श्री आचारांग सूत्र में फरमाया गया है कि "जो आत्मानुभव करते हैं वे अन्य स्थान में नहीं रांचते, नहीं रमण करते"। जो अन्य स्थान में नहीं रांचते वे ही एक आत्मा में रांचते-रमण करते हैं। इसी न्याय से समकिती जीव को धाई माता समान भिन्न अनुभव करने वाला कहा है। वह संसार में अपनायत नहीं करता तथा और भी श्री आचारांग सूत्र में फरमाया गया है कि "जो मूल कर्म—अग्र कर्म अर्थात् मिथ्यात्व को नाश करता है वह आत्म-दर्शन करता है और उसे मरण—भय नहीं रहता।

(२२) प्रश्न—तत्वार्थ श्रद्धान् समकित का क्या अर्थ है ?

उत्तर—तत्त्व कहे तो भाव (धर्म-स्वभाव सार वस्तु स्वरूप), अर्थ कहे तो पदार्थ। जिस पदार्थ का जो

सच्चा स्वभाव (धर्म) है, उसका श्रद्धान् समकित है। कारण खाली अर्थ कहे तो पदार्थ श्रद्धा में समकित माने तो यथार्थता सत्यता का विशेषण नहीं होने से विपरीत पदार्थ को मानने में भी समकित हो जावे। इसलिये यथार्थ वस्तु स्वरूप पदार्थ के निश्चय को ही समकित कहा है, सो बहुत ठीक है।

(२३) प्रश्न—जगत् में मुख्य तत्त्व कितने हैं?

उत्तर—दो। एक जीव और दूसरा अजीव।

(२४) प्रश्न—इन जीव अजीव के विशेष प्रकार से कितने प्रकार होते हैं?

उत्तर—एक अपेक्षा से छः भेद हैं, जिन्हें छः द्रव्य कहते हैं तथा दूसरी अपेक्षा से नव भेद हैं जिन्हें नव तत्त्व कहते हैं। ये सब प्रकार जीव अजीव की अवस्था (पर्याय) हैं।

(२५) प्रश्न—छः द्रव्य के नाम व गुण कहो?

उत्तर—(१) धर्मास्तिकाय का चलन सहाय क गुण है, जैसे जल मछली को चलने में सहायक है, चलने की प्रेरणा नहीं करता, इसी प्रकार

जीव पुद्गल को गति करने में धर्मास्ति-काय सहायक है, परंतु प्रेरक नहीं है ।

(२) अधर्मास्तिकाय का स्थिर सहायक गुण है । जैसे ग्रीष्म ऋतु में थके हुए मनुष्य को वृक्ष की छाया बैठने में सहायक है, प्रेरक नहीं ।

(३) आकाशास्तिकाय का जगह देना (अव-काश देना) गुण है । जैसे दूधमें शक्कर भींत में कीली को जगह होती है । ऐसे यह सब पदार्थों को रहने की जगह देता है । एक आकाश प्रदेश पर जीव पुद्गल के अनंत प्रदेश रखने की शक्ति विशेष है । यह खास स्वभाव है । जैसे छोटा भी जलचर जीव पानी में जीता है जब कि हाथी, सिंह, वगैरे डूब मरते हैं व बड़ा मच्छ भी पानी के बाहर मरजाता है। यह एक स्वभाव की विशेषता है ।

(४) कालद्रव्य का वर्तना गुण है जिसके निमित्त से नये पदार्थ जूने होते हैं, जूने पदार्थ नये होते हैं ।

(५) जीवद्रव्य के चार गुण अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आत्मिक सुख, अनंत आत्मशक्ति।

(६) पुद्गल द्रव्य--पुद् कहे तो मिलना, गल कहे तो गलना-बिखरना। जिसका गुण मिलना व बिखरना है जो सदा एकसा नहीं रहता इसके मुख्य गुण चार हैं, (१) वर्ण, (२) गंध, (३) रस, (४) स्पर्श।

(२६) प्रश्न—कोई लोक, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु; इनको अलग अलग स्वतंत्र (खास जुदे जुदे) तत्व मानते हैं सो कैसा है ?

उत्तर—यह ठीक नहीं, कारण पृथिवी, जल, अग्नि, वायु अलग अलग स्वतंत्र तत्व नहीं हैं। एक का दूसरा रूप बन जाता है। जैसे मिट्टी व जल के योग से वनस्पति बनती है वह अग्नि रूप हो जाता है। फिर पीछी वह अग्नि राख होकर मिट्टी बन जाती है। पानी उकलने पर भाफ बनकर वायु रूप हो जाता है। दो जाति की वायु (हाइड्रोजन व आक्सिजन) मिलाने से जल हो जाता है। एक परमाणु दूसरा रूप बनता है परन्तु कभी उसका

अस्तित्व सर्वथा नष्ट नहीं होता। यह जैन सिद्धांत आज सायन्स से सिद्ध हो चुका है और इसलिये सायन्स का मूल सूत्र यह हुआ कि किसी पदार्थ का सर्वथा नाश नहीं होता। सदा नित्य रहता, ऐसा कहा गया है। हर चीज की अवस्था बदलती है। इसे पर्याय कहते हैं, जिस अपेक्षा से सब पदार्थ को अनित्य भी माने हैं। सारांश द्रव्य की अपेक्षा से पदार्थ नित्य हैं। अवस्था (पर्याय) की अपेक्षा से अनित्य हैं।

(२७) प्रश्न—ज्ञान से क्या लाभ होता है ?

उत्तर—वस्तु को बराबर समझने से राग, द्वेष, हर्ष, शोक नहीं होता। कोई वस्तु में ममत्व (मेरापन) की बुद्धि नहीं होती। सदा समभाव रहता है। तथा पुद्गल में शरीर, धन, भोग, अन्न, वस्त्र, गहने, मकान, स्तुति, निंदा सब आजाते हैं; इनको मिलने बिखरने का स्वभाव वाले जानने वाला विवेकी मनुष्य इनमें मोह नहीं करता, कारण इन चीजों को नाशवान बराबर जानता है और वह खूब दान देता है। कभी उसे लोभ नहीं होता, शुद्ध शील पालता है। कारण वह एक गटरखाने में दूसरे गटरखाने के संयोगरूप भोग निंदनीय व दुःख—भंडार मानता है। तपस्या खूब करता है, कारण शरीर व भोजन को जीवका

साधन मानता है। शुद्ध भाव रखता है, कारण उसे रागद्वेष नहीं आता। इस प्रकार छः द्रव्य के बराबर ज्ञान होने से वीतराग भाव प्रकट होकर अनंत सुख (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

(२८) प्रश्न—धर्म शब्द के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर—धर्म शब्द के अभिप्राय से अनेक अर्थ हैं। एक वस्तु का स्वभाव सो धर्म (वत्थु सहावो धम्मो) अर्थात् जो वस्तु को वस्तुपने में कायम रक्खे सो धर्म। जैसे जीवका धर्म उसके चार गुण अनंत ज्ञानादि हैं। इन गुणों से ही जीव सर्व काल में जीवपने में कायम रहता है। दूसरा अर्थ–धर्म कहे तो जो जीव को दुःख में गिरते को बचाकर सुख में धारण कर रक्खे वह धर्म, अहिंसा, सत्य, दान, तप आदि जिनमे जीव सुख पाता है। यह धर्म जीव के परिणाम हैं अर्थात् चारित्र गुणकी पर्याय (हालत) है। तीसरा अर्थ–धर्म अर्थात् कर्त्तव्य–फरज़ भी है। इन सब अर्थों में धर्मको एक गुण माना है। अब जैनशास्त्र में पारिभाषिक धर्म शब्द एक अजीव अरूपी तत्त्व का नाम भी कहा है जो चलने में सहायक है। यह एक संज्ञा-विशेष है। यहां इतना भाव मिला सकते हैं कि दोनों में

चलने में मदद देना तुल्य है, कारण अहिंसा आदि भाव धर्म से जीव ऊँची गति में चला जाता है।

(२९) प्रश्न—अधर्म शब्द के कितने अर्थ हैं।

उत्तर—जुदी जुदी अपेक्षा से अधर्म शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

(१) वस्तु का मूल स्वभाव दूषित होवे, विकारी होवे उसे अधर्म कहते हैं। जैसे जीव का स्वभाव मूल गुण चार दूषित होवें तप अज्ञान।

(२) मिथ्यात्व (कुदर्शन, अंधता)

(३) इन्द्रियजन्य सुख दुःख, राग द्वेष (कुचारित्र)

(४) कुपुरुषार्थ (बालवीर्य), हिंसा, विषय, कषाय में प्रवृत्ति होना। इन चार कामों को अधर्म कहते हैं। धर्म से सुख शांति आनंद रहता है जब कि अधर्म से जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय, चिंता आदि अनंत दुःख भोगने पड़ते हैं।

दूसरा-अर्थ जो दुर्गति दुःख में गिरते हुए को नहीं बचावे सो अधर्म, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयसेवन, तृष्णा, निन्दा, क्रोध, मान, कपट, लोभ, कलह आदि अठारह पापस्थान हैं वे अधर्म हैं। तीसरा-जो अधर्म कहे तो कर्तव्य नहीं है। जो काम करने योग्य नहीं उसे करना सो अधर्म। चौथा अर्थ—जैन शास्त्र में पारिभाषिक अधर्म शब्द एक अजीव अरूपी तत्त्व का भी नाम है। यह संज्ञा विशेष है। स्थिर रहने में सहाय्य करे। यहां इतना भाव मिला सकते हैं कि स्थिर रहने में सहाय्य देना तुल्य है, कारण भाव अधर्म-हिंसादि कामों से दुःखपूर्ण संसार में ही जीव ठहरता है, ऊँचा नहीं जा सकता।

(२०) प्रश्न—नवतत्त्व क्या हैं ?

उत्तर—जीव और अजीव की हालत अवस्था अर्थात् पर्याय हैं। जीव का अजीव (कर्म) के साथ संबंध होने

से पुण्य पाप आश्रव व बंध होता है तथा संबंध छूटने से संवर, निर्जरा, मोक्ष होती हैं। इस प्रकार सब मिलकर नवतत्व होते हैं।

(३१) प्रश्न—जीवकी शुद्ध हालत (पर्याय) व अशुद्ध हालत (पर्याय) कौनसी मानी गई हैं ?

उत्तर—पुण्य, पाप, आश्रव, बंध; यह जीवकी अशुद्ध हालत है व संवर, निर्जरा तथा मोक्ष; जीवकी शुद्ध हालत है। अशुद्ध हालत संसार का कारण है व शुद्ध हालत मोक्ष का कारण है।

(३२) प्रश्न—नवतत्व का सामान्य लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) जीवका लक्षण शुद्ध अवस्था में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आत्मिक सुख, अनंत आत्मिक शक्ति। अशुद्ध अवस्था में अल्पज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान। अल्पदर्शन शक्ति या मिथ्यादर्शन। इंद्रियजन्य सुख दुःख, रागद्वेष, बालवीर्य अर्थात् कुपुरुषार्थ।

(२) अजीव का लक्षण—जड़—अचेतन।

(३) पुण्य—भाव पुण्य–शुभ परिणाम (विचार)। द्रव्य पुण्य–शुभकाम, शुभ कर्म-दल व शाता के संयोग।

(४) पाप—भाव—अशुभपरिणाम (विचार)। द्रव्य पाप–अशुभ काम, अशुभ कर्मदल व अशातकारी संयोग।

(५) आश्रव—भाव–शुभाशुभ परिणाम (विचार)। द्रव्य–शुभाशुभ काम–मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग व शुभाशुभ कर्म दल का संचय होना।

(६) संवर—भाव संवर–शुद्धोपयोग, राग, द्वेष, मोह (मिथ्यात्व मोहनीय) रहित परिणाम। द्रव्य–मन, वचन, काया, पांच इंद्रिय पर संयम, अहिंसादि पांच व्रत, पांच समीति आदि।

(७) निर्जरा—भाव–शुद्धोपयोग (राग, द्वेष, मोह रहित परिणाम), धर्म ध्यान (शुक्ल ध्यान)। द्रव्य में–अनशन (उपवास), उणोदरी आदि बारह प्रकार की निर्जरा

के काम व देशथकी अमुक अंश से कर्म दल का आत्मा से दूर होना।

(८) बंध—भाव–राग द्वेष मोह के परिणाम। द्रव्य–मन, वचन, काया की प्रवृत्ति तथा कर्मदल का जीव के प्रदेशों के साथ एक मेक होना।

(६) मोक्ष—भाव–परम विशुद्ध वीतराग परिणाम अकषायी, अजोगी, अलेशी अवस्था। द्रव्य में–स्थूल शरीर उदारिक, सूक्ष्म शरीर तेजस, कार्माण शरीर व आठों ही कर्मों का सर्वथा क्षय होना।

(३३) प्रश्न—व्यवहार समकित के गुण क्या फायदा करते हैं ?

उत्तर—व्यवहार समकित निश्चय समकित का साधक है। व्यवहार समकित के गुण तत्वज्ञान, वांचन, मनन व सम संवेग आदि गुणों के द्वारा उत्कृष्ट भावना व पुरुषार्थ से निश्चय समकित प्रकट न हो तो भी व्यवहार समकित से उच्च गति व आत्मा निर्मल तो अवश्य होती है। मिथ्यात्व में डूब कर अनन्त दुखी होने के स्थान व्यव-

हार समकित को सेवन कर भयङ्कर दुःखों से बचना हितकारी ही है।

(३४) प्रश्न—निश्चय समकित की पहिचान कैसे होती है ?

उत्तर—स्वानुभूति अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूप के अनुभव से निश्चय समकित जाना जाता है। जो अतींद्रिय (इंद्रिय विषयक सुख रहित) आत्मिक अविकारी निर्विकल्प सुख का अनुभव है, वह निश्चय समकित का लक्षण है।

(३५) प्रश्न—प्रकृति की अपेक्षा से समकित के भेद कितने हैं ?

उत्तर—चार। १ क्षायिक समकित। २ उपशम समकित। ३ क्षयोपशम समकित। ४ वेदक समकित। चार अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, और समकित मोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, इन सात प्रकृति का सर्वथा क्षय (नाश) करना जले बीजवत्—जैसे बीज की राख होने के बाद अंकुर नहीं उगता उसी प्रकार सात प्रकृति अनंत संसार भ्रमण कराने वाली हैं। उसके नाश होने के बाद पुनः वह न तो उत्पन्न होती है, न संसार में

भटकना पड़ता है। इसको चायिक समकित कहते हैं। उपशम समकित में इन सातों प्रकृति का उपशम होता है (ढक जाती हैं, सत्ता के अंदर रहती हैं)। जैसे भारी अग्नि सात प्रकृति में से कुछ प्रकृति का चय करे और कुछ उपशम (ढांक) कर सत्ता में रक्खे। उसे चयोपशम समकित कहते हैं। कुछ प्रकृति को चय करे और कुछ का उदय होय (वेदे) सो वेदक समकित है।

(३६) प्रश्न—विशेष प्रकार से समकित के कितने भेद हैं?

उत्तर—नव भेद हैं। चायिक और उपशम समकित, एक एक ही भेद ऊपर कहा उसी मुजब है। चयोपशम समकित के तीन भेद हैं।

(१) अनंतानुबंधी चार कषाय का चय करे और दर्शन-मोहनीय की तीन प्रकृति का उपशम करे।

(२) अनंतानुबंधी की चार और एक मिथ्यात्व-मोहनीय, इन पांच का चय करे और दो का उपशम करे।

(३) अनंतानुबंधी की चार और एक मिथ्यात्व-मोहनीय तथा मिश्र-मोहनीय इन छः का चय

करे तथा एक समकित-मोहनीय का उपशम करे।

वेदक समकित में केवल एक समकित-मोहनीय प्रकृति वेदे। उसकी छः प्रकृति का क्षय करे, उपशम करे या क्षयोपशम करे। इसके चार भेद हैं।

(१) अनंतानुबंधी की चार और मिथ्यात्व व मिश्र-मोहनीय इन छः का क्षय करे और एक समकित-मोहनीय को वेदे सो क्षायक वेदक।

(२) छः प्रकृति को उपशमावे और एक को वेदे सो उपशम समकित।

(३) चार अनंतानुबंधी को क्षय करे, मिथ्यात्व व मिश्र को उपशमावे और समकित-मोहनीय को वेदे सो पहिली क्षयोपशम वेदक।

(४) चार अनंतानुबंधी और मिथ्यात्व-मोहनीय की एक, इन पाँचों को क्षय करे, एक मिश्र-मोहनीय को उपशमावे और एक समकित-मोहनीय को वेदे सो दूसरी क्षयोपशम वेदक।

(३७) प्रश्न—चारों प्रकार के समकित में यथार्थ तत्त्व श्रद्धा व आत्मिक सुख में न्यूनाधिकता होती है कि समानता ?

उत्तर—चारों ही समकित में स्थिति की अपेक्षा से भेद है, परंतु निश्चय व अनुभव की अपेक्षा से कोई भेद नहीं है। स्थितिबंध कृत भेद होने से सम्यक्त्वों में स्थितियां भिन्न भिन्न हैं। अनुभाग-रसोदय कृत कोई भेद इन में नहीं है। सभी भेदों में आत्मा का निजस्वरूप के अनुभवसुख को देने वाला एक ही सम्यक्त्व गुण है। जैसे निर्मल जल में व कीचड़ जमे हुए जल में पड़ा हुआ रत्न बराबर प्रकाशता है। अंतर मात्र शुद्ध जल में का रत्न सदा प्रकाशता है जब कि जमे हुए कीचड़ के पानी का रत्न संयोगवशात् प्रकाश देता बंध भी हो सकता है, इसी प्रकार क्षायिक समकित शुद्ध जलवत् सादिअनंत (शुरू हुए वहां से सदा के लिये) कायम रहता है।

(३८) प्रश्न—चार प्रकार के बंध में फल देने वाला कौनसा बंध है ?

उत्तर—प्रकृति, स्थिति और प्रदेश तीनों बंध फल देने में व कोई गुणों का घात करने में समर्थ नहीं हैं। केवल

एक अनुभागबंध—रसबंध जो कषाय से ही उत्पन्न होता है, वह फल देने में समर्थ है।

(३६) प्रश्न—समकित प्रगट करने का अंतरंग कारण कर्म प्रकृति की अपेक्षा से सात प्रकृति का अभाव है तो सात प्रकृति जीव को क्या असर करती थी ?

उत्तर—अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ अनंतानुबंधी अनंत हैं। अनुबंध कहे तो रस, तीव्रता जिसमें। जो अनंत कर्म वर्गणा का बंध करता है, जो अनंत संसार का कारण है, जो अनंत ज्ञान सुख आदि गुणों का घात करता है उसे अनंतानुबंधी कहते हैं। पर वस्तु को अपनी मान कर उसमें रमण करना व अपने निज स्वरूप को भूलजाना इसका असर है। जैसे बहुत नसे से समझदार मनुष्य भी सार वस्तु को फेंककर असार संग्रह करने लगता है, पीत-ज्वर से उत्तम भोजन भी कडुआ लगता है, पीलिए के रोग से सुफेद मोती की माला भी पीली दीखती है, इसी तरह इसके उदय से आत्मिक सुख के स्थान इंद्रियजन्य सुखों में ममत्त्व भावना होती है। इसी के निमित्त से अनादि काल से अपना जीव संसारभ्रमण कर रहा है। अनंतानुबंधी चौकड़ी अनंतसुखदायी स्वरूपाचरण चारित्र गुण की घात करता है, मिथ्यात्व-

मोहनीय से परवस्तु में ममत्व होता है। विपरीत बुद्धि होकर शरीर भोगादिको अपनी वस्तु मानता है।

मिश्र-मोहनीय कुछ सत्य कुछ असत्य दोनों में ममत्व (अपनायत) पैदा करता है।

समकित-मोहनीय—शुद्ध सत्य (आत्मा) निश्चय में अस्थिरता (शंका, कंखादि) दोष उत्पन्न करता है।

(४०) प्रश्न—समकित उत्पत्ति में चारित्र मोह की अनंतानुबंधी चार प्रकृति का अभाव होने से कौनसा चारित्र गुण प्रगट होता है?

उत्तर—चारित्र का अर्थ रमण करना, विचरना, अनुभव करना है। अनादि से जो परद्रव्य में (विषय, कषाय में) रमण करता था वह अब देश से (कुछ अंश से) निज शुद्ध आत्मस्वरूप में रमण करता है। यह चौथा गुणस्थान से ही शुरू हो जाता है, इसीसे तीन लोक के विषय भोगों के सुख से समदृष्टि के आत्मरमणता का सुख अनंतगुणा बताया है।

(४१) प्रश्न—तीन दर्शन मोहनीय के अभाव से क्या होता है?

उत्तर—विपरीत निश्चय, मिश्रनिश्चय व सत्य में कुछ मलीनतायें, इन तीनों दोषों का नाश होकर यथार्थ शुद्ध निजरूप का निश्चय होता है।

(४२) प्रश्न—समकिती जीव अनुकूल प्रतिकूल संयोगों में अभय, अडिग कैसे रहता है?

उत्तर—समदृष्टि की आत्मा इतनी प्रबल, निर्भय हो जाती है कि उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। वह इष्ट अनिष्ट सब संयोगों को पुद्गल (जड़) की दशा (हालात-पर्याय) जानकर अपने स्वरूप से नहीं डिगता। वह विचारता है कि मैं इन जड़ पदार्थों (पुद्गलों) से भिन्न हूं, अकेला अनंत ज्ञान, दर्शन आदि गुणस्वरूप हूं, विकाररहित हूं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं। ये सब विकार पुद्गल के हैं तथा शरीर, इंद्रिय भोग, परिवार, धन, यश, निंदा, सुख, दुःख के निमित्त सब अनित्य व नाशवान् हैं, मेरे गुण को न बढ़ा सकते हैं, न घटा सकते हैं, मैं खुद ही कायर बनकर हर्ष, शोक, राग, द्वेष करके अपने ज्ञान सुखादि गुणों को मलीन दूषित—विकारी करता हूं। पहिले अज्ञान था जिससे मैं स्वयं अपने आपको दुखी करता था। अब मैंने सच्चा स्वरूप समझ लिया है जिससे समभाव में ही रहूंगा। मरण तक भी शरीर का नाश है, चेतनराय तो

सदा उसी रूप में रहता; ऐसे विचार करके सदा अमन रहे।

(४२) प्रश्न—रोग तथा मरणभय उत्पन्न होवे तब समदृष्टि क्या विचार करे ?

उत्तर—यह शरीर जड़ है, अचेतन है, हाड़, मांस, लोहू, मल, मूत्र, कीड़े, नसा जाल से भरपूर है। रोग शरीर को नाश कर सकता है। मरण सर्वथा शरीर छूटने को मानते हैं। रोग व मरण चैतन्य का तो कुछ भी नहीं ले सकते हैं। मुझे वेदना होती, दुःख होता है। मेरे जीवका चारित्र गुण आत्मस्वरूप में रमण करने का था। यह शरीर ममत्व भोग आनंद आदि कुकार्मों से दूषित होकर शारीरिक वेदना का भोगी बन रहा है। यदि मैं इस समय ज्ञान, वैराग्य व आत्म-भावना से समभाव रखकर दुःख सहन कर लूँगा तो सदा के लिये इस प्रकार की शारीरिक वेदनाएँ व मरण दुःख छूट जायगा। जैसे लेनदार आया, राजी से कर्ज़ चुका दिया, नया झगड़ा व कर्ज़ न किया तो सदा के लिये छुटकारा पाते हैं, इसी प्रकार यह सब दुःख मेरे ही खुद के अज्ञान व विषय सेवन का फल है। अब नया बीज नहीं बोऊंगा तो फल कैसे लगेंगे।

दोहा—सुख दुख जाने जीव सब, सुख दुख रूप न जीव
सुख दुख पुद्गल पिंड है, जड़ता रूप सदीव ॥१॥

रोग पीड़ता देह को, नहीं जीव को खास ॥
घर जले अग्नि थकी, नहीं घर का आकाश ॥२॥

इत्यादिक सुविचारों से सदा आत्मिक अमृत सुख का पान करे।

(४४) प्रश्न—सब सुख दुःख में समताभाव धर सकें, ऐसी शक्ति कब आती है ?

उत्तर—जीव अजीवादि नव तत्त्वों का द्रव्य, गुण, पर्याय से ज्ञान करके परवस्तु से मैं भिन्न हूं, ऐसी वारंवार अंतर उपयोग पूर्वक भावना करने से भेदज्ञान समकित होता है। उससे सदा परम समतारसका ही पान होता है और रागद्वेष मोह फटकने नहीं पाते।

(४५) प्रश्न—द्रव्य, गुण, पर्याय का ज्ञान करने की शिक्षा कहां दीगई है ?

उत्तर—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के मोक्ष मार्ग अध्ययन में प्रथम ज्ञान किस बात का करना, ऐसा बताते हुए पांचवीं गाथा में कहा है कि "यह पांच प्रकार का ज्ञान (मति, श्रुति, अवधि, मन, पर्यय व केवल ज्ञान) द्रव्य गुण और पर्याय को जानने का ही है। इस ज्ञान को सब तीर्थंकर

देवों ने ज्ञान कहा है। जहां यह ज्ञान नहीं वहां सम्यग् ज्ञान नहीं हो सकता, कारण जो वस्तु को बराबर न समझे वह किस प्रकार सत्य स्वरूप जान सके। श्री अनुयोगद्वार सूत्र में फरमाया है कि आचार्य महाराज अपने शिष्यों को सब शास्त्रों का ज्ञान द्रव्य, गुण, पर्याय सहित देवें। चार अनुयोग में द्रव्यानुयोग का अंतर उपयोग सहित ज्ञान को निश्चय ज्ञान कहा है और धर्म कथानुयोग, चरणकरणानुयोग व गणितानुयोग; इन तीन योगों को व्यवहारज्ञान कहा है।

(४६) प्रश्न—द्रव्य किसको कहते हैं।

उत्तर—(१) गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

(२) जो गुण पर्याय संयुक्त होवे उसे द्रव्य कहते हैं।

(३) जो गुणों का भाजन हो उसे द्रव्य कहते हैं।

(४) जो उत्पन्न होना, विनाश होना (पर्याय अपेक्षा से) व कायम रहना (द्रव्य अपेक्षा से); तीन गुण धरे उसे द्रव्य कहते हैं। जैसे जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य।

(४७) प्रश्न—गुण किसे कहते हैं।

उत्तर-(१) जो हमेशा द्रव्यके पूरे हिस्से व सब हालत में रहे उसे गुण कहते हैं।

(२) जो द्रव्य को बतावे (ओलखावे) उसे गुण कहते हैं। जैसे जीवका गुण, ज्ञान। पुद्गल का गुण वर्ण, गंध, रस, स्पर्श

(४८) प्रश्न—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—हालत व अवस्था को पर्याय कहते हैं, जो रूपांतर होवे, पलटती रहे उसे पर्याय कहते हैं।

(४९) प्रश्न—पर्याय के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो। शुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्याय।

(५०) प्रश्न—शुद्ध पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो दूसरे द्रव्य के निमित्त से न हो वह शुद्ध पर्याय (शुद्ध हालत) है।

(२) जो विकार रहित हो सो शुद्ध पर्याय है।

(३) जो सर्वकाल में एक सरीखी परिणमन

करती रहे, शुद्धता का कभी विनाश न हो
सो शुद्ध पर्याय है। जैसे जीवकी शुद्ध पर्याय
सिद्ध स्वरूप व केवल ज्ञान, केवल दर्शनादि

(४१) प्रश्न—अशुद्ध पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो दूसरे द्रव्य के निमित्त से हो
अशुद्ध पर्याय है।

(२) जो विकार सहित हो वह अशुद्ध पर्याय।

(३) जो सर्व काल में एक सरीखी न रहे
विनाशिक होवे वह अशुद्ध पर्याय है।
जीवकी अशुद्ध पर्याय, मनुष्य तिर्यंच आदि
व मति ज्ञानादि।

(४२) प्रश्न—शुद्ध पर्याय में जीवकी क्या
होती है ?

उत्तर—शुद्ध पर्याय में जीवके चारों ही भाव
शुद्ध होते हैं।

(४३) प्रश्न—प्राण के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो। एक द्रव्य-प्राण, दूसरा भावप्राण। द्र

प्राण के दश भेद हैं। पांच इंद्रिय, मन, वचन, काया, श्वासोश्वास और आयुष्य; ये द्रव्यप्राण कर्म के निमित्त से जीव को पैदा होते हैं और भाव प्राण के चार भेद हैं। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत शक्ति, ये चार भाव-प्राण सदा कायम रहते हैं। इन्हीं से जीव तीनों काल में कायम रहता, जीवित रहता है, ऐसा कहा गया है। संसारी जीवों के ये भाव-प्राण राग, द्वेष, मोह से दूषित हो रहे हैं, परंतु इनका सर्वथा नाश कभी भी नहीं होता है। द्रव्यप्राण के नाश को व्यवहार में मृत्यु कहते हैं। समदृष्टि मृत्यु समय व हरेक उपसर्ग में भाव-प्राण से आपको अजर-अमर-अविनाशी मानता हुआ अभय (परमानंदी) रहता है। दूसरे के द्रव्य-प्राणों को पीड़ा करने से वह जीव दुःख पाता है। इसी को हिंसा का पाप कहते हैं। इसके फल में खुद को भी पीड़ा दुःख भोगना पड़ता है। द्रव्यशरीर, मनादि को कष्ट देने से स्व तथा पर का राग, द्वेष, क्लेश, क्रोध, शोकादि होते हैं। इससे ज्ञानादि भावप्राण भी मलीन होते हैं, सो स्व-पर की भाव-हिंसा होती है, इसलिये किसी को दुःख न देना चाहिये।

(५४) प्रश्न—दुःख कैसे पैदा होता है?

उत्तर—भय से दुःख पैदा होता है।

(५५) प्रश्न—भय कैसे होता है?

उत्तर—प्रमाद से भय होता है।

(५६) प्रश्न—प्रमाद किसे कहते हैं.

उत्तर—"प्र"=अर्थात् विशेष प्रकार से। "माद" =अर्थात् मूढ़ हो जाना, मूर्छित हो जाना, आत्मस्वरूप भूलकर इंद्रिय सुख व बाह्य जड़ पदार्थों में ममत्व करना सुख दुःख मानना, वह "प्रमाद" है।

(५७) प्रश्न—प्रमाद के कितने प्रकार हैं?

उत्तर—पांच प्रकार हैं (१) मद (गर्व) (२) विष (३) कषाय (क्रोधादि) (४) निद्रा (५) विकथा (स्व हित सिवाय की बातें)।

(५८) प्रश्न—प्रमाद को कौन उत्पन्न करता है?

उत्तर—अज्ञान व मिथ्यात्व (विपरीत समझ अर्थात् अंधता)।

(५९) प्रश्न—दुःखों को नाश करने का क्या उपाय है?

उत्तर—सम्यग् ज्ञान व सची समझ से (समकितसे) प्रमाद को छोड़ना चाहिये। प्रमाद त्यागनेसे भयका नाश होवेगा और भय का नाश होने से सकल दुःखों का नी

नाश होवेगा और अक्षय सुख (सदा अभय अवस्था) रहेगा।

(६०) प्रश्न—समदृष्टि संसार के काम किस तरह करता है?

उत्तर—(१) जैसे किसी चोर को कोतवालने काला मुंह करके गधेपर बिठाया। वह मनुष्य यह काम हर्ष से नहीं करता किंतु बिना इच्छा के परवश होने से करता है, उसी प्रकार समदृष्टि जीव कर्मरूप कोतवाल की परतंत्रता में संसार के काम उदासीन (राग द्वेपरहित) भावों से करता है। जैसे धाई माता पुत्र को दूध पावे, रक्षा करे परंतु मनमें उसे अपना निजी पुत्र नहीं मानती, आपको उससे भिन्न भईती सेविका मानती है, इसी प्रकार समदृष्टि संसार में विरक्त रहे, आसक्त न हो।

(२) किसी विकट प्रसंग में तपाये हुए लोहे के पतरों की भूमि पर से किसी मनुष्य को खुले पैर दौड़ना पड़े तो वह उसमें आनंद नहीं मानता, वहां विश्राम नहीं

लेता, इसी प्रकार समदृष्टि जीव विषय कषाय रूपी भावअग्नि से तपायमान संसार प्रवृत्ति को करते समय उनमें आनंद न मानता। वहां विश्राम न लेता। शीघ्र उल्लंघकर सुख–स्थान (संयम) में विश्राम लेता है।

(६१)प्रश्न—समदृष्टि को संसार के काम करते हुए भी कर्मों का बंधन क्यों थोड़ा और लूखा होता है?

उत्तर—(१) समदृष्टि हरेक काम करने में हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, सत्यासत्य का पूर्ण विचार रखता है और अहित, अलाभ, अन्याय और असत्य को छोड़ता है।

(२) संसार के कामों में शरीर, धन, भोग व सब पदार्थों में स्वामीपने की (मेरी मालकी है ऐसी) बुद्धि नहीं रखता परंतु जीव की अशुद्ध दशासे रोग की चेष्टा तुल्य प्रवृत्ति करता हूं, ऐसा मानता है।

(३) अंतररुचि–अभिलाषा पूर्वक भोग सेवन नहीं करता।

(४) प्रत्येक काम में विरक्ति की भावना करता है हरेक

काम करते समय विचारता है, हे चेतन! यह हिंसा, विषय, कषाय तेरे को भयंकर दुःख देवेंगे। तूँ इन्हें छोड़, न छूटे तो घटा। तेरा धर्म (स्वभाव) तो हिंसा, विषय, कषाय को सर्वथा छोड़कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में लीन होने का है।

(५) समदृष्टि संसार के काम उदासीन (राग-द्वेष रहित) भावों से करता है, जिससे कर्मों का बंधन बहुत मंद होता है, कारण राग द्वेष के निमित्त से ही रसबंध (अनुभागबंध) होता है।

(६) समझूं संके पापसे, अणसमझूं हरखंत।
वे लूखां वे चाकणां, इण विध कर्म वधंत ॥१॥

संसारी प्रवृत्ति करते समय समदृष्टि जीव बड़ा दुःख माने, भय पावे, उसे घटाने का प्रयत्न करे जिससे लूखे कर्म बंधते हैं कि जब अज्ञानी जीव संसारी कामों में हर्ष शोक धरके चिकने कर्मबंध करता है।

सुपुरुषार्थ[१], सत्य, अहिंसा, प्रमाणिकता (ईमानदारी), समभाव, गुणानुराग, उदासीनता, क्षमा, निरभिमानता, निष्कपटता व निर्लोभता; इन गुणों का पालन करके व्यापार-काम, घरकाम व शरीर-रक्षा करता है जिससे समदृष्टि जीव को कर्मों का बंधन लूखा (शिथिल) व थोड़ा होता है।

१—उत्तम कामों में निरन्तर उद्योगी रहना।

शिक्षा—आज अपन लोग समदृष्टि श्रावक व साधु नाम धराते हैं, परंतु ऊपर के गुणों की प्राप्ति अल्प है। ऐसा जानकर यदि ऐसे लोक और परलोक के दुःखों से छूटना होवे तो ऊपर कहे हुए गुण प्रकट करना चाहिये।

(६२) प्रश्न—जीव के चेतनागुण के कितने प्रकार हैं?

उत्तर—दो हैं (१) ज्ञानचेतना (२) अज्ञानचेतना।

(६३) प्रश्न—ज्ञानचेतना किसे कहते हैं?

उत्तर—राग-द्वेष-मोह रहित शुद्ध आत्मज्ञान (आत्मानुभव) को ज्ञान-चेतना कहते हैं।

(६४) प्रश्न—ज्ञानचेतना कब प्रगट होती है?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार कर्मों का सर्वथा नाश करने से केवलज्ञान प्रगट होता है। उसे प्रतिपूर्ण ज्ञानचेतना कहते हैं।

(६५) प्रश्न—ज्ञानचेतना की शुरूआत कब से होती है?

उत्तर—अनन्तानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ और तीन दर्शन-मोहनीय—(मिथ्यात्व-मोहनीय, मिश्रमोहनीय, समकित-मोहनीय)। इन सात प्रकृति के त्याग से समकित गुण (आत्मबोध) प्रगट होता है। तब से दूज के चन्द्रवत् ज्ञानचेतना शुरू होती है। यहां से कुछ अंश से (देश थकी) अतीन्द्रिय आत्मिक सुख का अनुभव प्रगट होता है।

(६६) प्रश्न—ज्ञानचेतना को प्रगट करने का क्या उपाय है ?

उत्तर—अज्ञान, राग, द्वेष, मोह को घटाकर आत्मभावना चिन्तन करने से ज्ञानचेतना प्रगट होती है।

(६७) प्रश्न—अज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो यथार्थ आत्मस्वरूप को न समझे, शरीर, इंद्रिय व भोगों में ममत्व कर सुख-दुःख व राग-द्वेष के भाव उत्पन्न करे, वह अज्ञानचेतना है।

(६८) प्रश्न—अज्ञानचेतना के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो प्रकार हैं। एक कर्मचेतना, दूसरी कर्मफलचेतना।

(६९) प्रश्न—कर्मचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीव्रमोह के उदय से व वीर्यांतराय के क्षयोपशम से राग, द्वेष, मोह में प्रवृत्ति होना सो कर्मचेतना है। इसे कर्म-बंध का परिणाम कहते हैं। यह भाव कर्म है अर्थात् इसी से अनन्त द्रव्यकर्म (कर्मदल) आत्मा को चिपकते हैं।

(७०) प्रश्न—राग, द्वेष, मोह के कितने भेद हैं ?

उत्तर—आत्मा के सुख (चारित्र) गुण की घातक तेरह प्रकृति (चार कषाय व नव नोकषाय) हैं। उसमें सात प्रकृति राग की हैं (१) माया (कपट), (२) लोभ, (३) हास्य, (४) रति, हर्ष, (५) पुरुषवेद (पुरुष

संबंधी विकार-स्त्रीवांछादि), (६) स्त्रीवेद—स्त्री-संबंधी विकार (पुरुष वांछादि), (७) नपुंसक वेद (अतिविकार-हस्तदोष, सृष्टिविरुद्ध कर्म), स्त्रीके विषय उत्पादक शब्द, रूप, स्पर्श का निमित्त मिलते या भोगकी बात सुनते ही वीर्य-स्खलन होना व स्त्री पुरुष दोनों के भोगकी वांछा करना इत्यादि नपुंसक वेदके चिह्न हैं)

शिक्षा—आज विकार बढ़गया है, इसीसे नपुंसकत्व के चिह्न ज्यादा दिखाई देते हैं। जो पुरुषत्व है वह विरलों में है। पुरुष भी इन दोषों से नपुंसक हो जाता है। इस हालत को देखकर विकारों को जीतना व ब्रह्मचर्य गुण बढ़ाकर तामसी खुराक त्याग, व्यायाम, आसन, सत्संग, उत्तम वाचन, सद्भावना और सुरिवाजों से पीछा पुरुषत्व संपादन करना जरूरी है। दवाइयों के धोखे में कभी नहीं आना. पौष्टिक दवाई क्षणभर ताकत देवेगी, आखिर दुगुना विकार जागकर ज्यादा बुरी हालत होवेगी। कुदरती व कायमी पुरुषार्थ सात्विक उपायों से मिलता है।

द्वेषकी छः प्रकृति हैं-(१) क्रोध, (२) मान (गर्व), (३) अरति (दुःखित होना), (४) भय (डर), (५) शोक (चिन्ता), (६) दुगंच्छा (अरुचि, निंदा, अभाव)।

मोह की तीन प्रकृति हैं—मिथ्यात्वमोह, मिश्रमोह, समकितमोह ।

(७१) प्रश्न—कर्मफलचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—सुख दुःख का भोगना सो कर्मफलचेतना है। कर्म उदय के परिणाम को कर्मफल-चेतना कहते हैं।

(७२) प्रश्न—चेतना के ज्ञान करने का सार क्या ?

उत्तर—कर्मचेतना अर्थात् राग, द्वेष, मोह से सब दुःख होते हैं, कारण संसार (जन्म-जरा-मरण) का बीज राग-द्वेष है और कर्मफल अर्थात् सुख दुःख बुद्धि से राग द्वेष होते हैं. ऐसा जान इन दोनों अज्ञानचेतना का त्याग करना चाहिये और ज्ञानचेतना समभाव प्रगट करने से सत्य अविनाशी सुख इस लोक तथा परलोक में सदा प्राप्त होता है।

(७३) प्रश्न—समदृष्टि की क्या विशेषता है ?

उत्तर—वह निर्मोही रहता है। संसार के किसी पदार्थ में ममत्व, मोह या स्वामीपन (अपनापन) नहीं धरता, केवल उदासीन (राग, द्वेष रहित) प्रवृत्ति करता है। सदा विषयजन्य प्रवृत्ति घटाता है, परवशता से न छूटे तो अंतःकरण से इसका पश्चात्ताप करता है।

(७४) प्रश्न—कर्ता, भोक्ता और ज्ञाता का क्या अर्थ है?

उत्तर—राग, द्वेष, मोह के परिणाम को कर्मचेतना (कर्मबंधक परिणाम) कहते हैं; यही कर्तापन है अर्थात् इससे जीव कर्म का कर्ता होता है।

इष्ट अनिष्ट संयोग में सुख दुःख बुद्धि होने को कर्म-फलचेतना (कर्म उदय परिणाम) कहते हैं । यही नाँकापन है ।

राग, द्वेष, मोह व सुखदुःख बुद्धि रहित उदासीन भाव—समभाव—आत्मानुभव को ज्ञानचेतना कहते हैं। यही ज्ञातापन है ।

कर्त्ता, भोक्ता बनने से बहुत नवीन कर्मबंध होता है । ज्ञातापन से कर्मक्षय होते हैं ।

(७५) प्रश्न—चारित्रमोह के उदय में समदृष्टि को क्या होता है ?

उत्तर—अल्प इष्ट, अनिष्ट बुद्धि होवे, परंतु ममत्व-भाव–स्वामीपन नहीं होने से तथा भेदज्ञान होने से तुरत पश्चात्ताप कर विरक्त बन जावे, इससे चिकने कर्मों का बंध समदृष्टि को नहीं हो सकता ।

(७६) प्रश्न—मिथ्यात्वमोह व चारित्रमोह का जीव पर क्या असर होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्वमोह के निमित्त से जीव शरीर, इंद्रिय भोगादि में मेरेपने की बुद्धि करता है और चारित्र-मोह के उदय से इष्ट अनिष्टबुद्धि (हर्षशोक-रागद्वेष) करता है, दोनों के अभाव से वीतराग बन जाता है ।

(७७) प्रश्न—भेदज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर—स्यादवाद सहित द्रव्यानुयोग का व्यवहार निश्चय रूप जानकर अपनी निज आत्मा को सकल जीव अजीवादि अन्य द्रव्यों से भिन्न जाने तथा अनुभवे और द्रव्यकर्म (आठ कर्मवर्गणा), भाव कर्म (राग द्वेष, मोह), नोकर्म (शरीरभोगादि) में मैं और मेरापने की बुद्धि थी, उस विपरीत बुद्धि (मिथ्यात्त्व) को छोड़े और अनंत ज्ञान, दर्शन सहित मैं हूँ, ऐसा शुद्ध आतमस्वरूप संशय-विपरीत, अनध्यवसाय दोषरहित अनुभवे सो भेदज्ञान है। इसको सम्यक्-ज्ञान कहते हैं।

दोहा—भेदज्ञान सो मुक्ति है, कुगति करो किम कोय ॥
वस्तु भेद जाने नहीं, सुगति कहां से होय ॥१॥
भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर ॥
धोबी अतर आतमा, धोवे निजगुण चीर ॥२॥

चौपाई—

भेद-ज्ञान संवर जिन पायो, सो चेतन शिवरूप कहायो ॥
भेद-ज्ञान जिनके घट नाहीं, ते जड़ जीव बँधे जगमाहीं ॥३॥

दोहा—भेद-ज्ञान थी अलगो रहे, तेनी भवस्थिति दूर।
जनम मरण करसे घणां, रहे संसार भरपूर ॥
भेद-ज्ञान अभ्यास से, टले मिथ्यात्त्व दूर।
समकित सहज आवे सही, वरते आनंद पूर ॥

(७८) प्रश्न—स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद का क्या अर्थ है ?

उत्तर—स्याद् कहे तो कथंचित्—किसी अपेक्षा से। वाद कहे तो कथन करना। जो वचन किसी अपेक्षा से हो और जिसमें दूसरी अपेक्षाएं भी गौण स्वीकार की जावें, वह स्याद्वाद है।

(७९) प्रश्न—स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद का क्या लक्षण है ?

उत्तर—(१) जो व्यवहार और निश्चय दोनों को उचित स्थान पर विधिपूर्वक माने, केवल एक ही पक्ष व्यवहार ही न माने या निश्चय ही न माने।

(२) जो "हां" और "ना" की मर्यादा विधिपूर्वक माने जैसे प्रवृत्ति छोड़ने योग्य है। यह निषेध-मर्यादा है, परन्तु जहां अशुभ प्रवृत्ति होती हो वहां शुभ प्रवृत्ति आदरने योग्य है। आहार, निद्रा छोड़ना चाहिये परन्तु शरीर नहीं चले, असमाधि होती दीखे तो विवेक पूर्वक मर्यादा से आहार, निद्रा आदि का सेवन करे। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहां "हां" और "ना" की मर्यादा जरूरी है। एकांत स्थापना या उत्थापना करने से गम्भीर नुकसान हो जाता है।

(३) जो "ऐसा ही" है यों न माने परन्तु "ऐसा

भी" है माने। जैसे जीव नित्य ही है ऐसा न माने परन्तु जीव नित्य भी द्रव्य की अपेक्षा से है और अनित्य भी मनुष्य तिर्यंच आदि पर्याय (हालत) की अपेक्षा से माने। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में अनंतधर्म, अनंतगुण, अनंतपर्याय हैं, उन सब को विधिपूर्वक स्वीकार करे। "ही" एकांतवचन है और "भी" अनेकांत है।

(४) जो एकान्त ज्ञान से ही या एकांत क्रिया से ही मोक्ष न माने परन्तु ज्ञान और क्रिया दोनों से मोक्ष होती है, ऐसा माने।

(५) जैसे सूर्य के प्रकाश में सब जाति के प्रकाशित दीपक रत्नादि पदार्थों का तेज समा जाता है, वैसे ही स्याद्वाद में सब नय, अपेक्षा, आशय संगृहीत हो जाते हैं।

(८०) प्रश्न—स्याद्वाद का ज्ञान करने से क्या लाभ होता है?

उत्तर—स्याद्वाद से सत्यस्वरूप प्राप्त होता है। स्याद्वाद से ही मिथ्याज्ञान व मिथ्यादर्शन का नाश होकर सम्यक् ज्ञान व सम्यक् दर्शन प्रकट होता है। सब अपेक्षाओं को बराबर समझने से अर्थात् स्याद्वाद का ज्ञान होने से समभाव प्रकट होता है और राग-द्वेष, मोह, वैर विरोध आदि का नाश होता है। जहां रागद्वेष खींचताण, मतपक्ष है वहां स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद (सत्य

स्वरूप) नहीं है, परन्तु एकांतवाद अर्थात् मिथ्यात्व है। इसलिये हे चेतन, तू हमेशा अपेक्षावाद (स्याद्वाद) को समझकर राग, द्वेष, वैर, विरोध, कलह को छोड़कर प्रशांत भावी बन।

(८१) प्रश्न—समकित (आत्मबोध) रूपी बीज कैसी भूमि में फूलता फलता है ?

उत्तर—जिन जीवों की जीवनभूमि (१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) तीव्र विषयवासना, (५) तृष्णा, (६) अतिक्रोध, (७) अहंकार, (८) कपट, (९) लोभ, (१०) कुसंप, (११) परनिंदा, (१२) स्वप्रशंसा, (१३) कदाग्रह और (१४) अविवेक, ये अनीति के दोष रूपी कंकर, कांटे, खड्डे दूर करके समभूमि बनी है और जिसमें मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ, इन चार शुभ भावनाओं का पानी सिंचन हुआ है, ऐसी भूमि में समकित रूपी बीज फूलता फलता है।

(८२) प्रश्न—मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ भावना का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मोक्ष का बीज समकित है और समकित का बीज चार भावना हैं। मैत्री आदि चार गुण प्रगट होने के बाद समकित गुण प्रगट होता है, इसलिये इन चार भाव-

नाओं को हमेशा शुभ व शुद्ध साधन रूप चिंतन करना परम आवश्यक है।

जीव हमेशा भावना अर्थात् विचार तो करता ही है, परन्तु अशुभ भावना ज़्यादा रहती है, इसलिये भावना का स्वरूप समझकर शुद्ध भावना का चिन्तन करना चाहिये। इन चार भावना के हरेक के चार चार भेद हैं।

१ मैत्री भावना-(१) मोहमैत्री-स्त्री, पुत्र, धन भोगादि की बाह्य आनन्द की अपेक्षा से प्रीति, (२) शुभमैत्री-उपकारी सज्जन आदि के प्रति प्रीति भक्ति तथा उत्तम काम में ऐक्य, (३) शुद्ध साधन मैत्री—देव, गुरु, धर्म व ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रति भक्ति व मैत्री, (४) शुभ मैत्री-अनंत ज्ञानादि निज गुणों से मैत्री-एकता का अनुभव। "हे चेतन! तू ही तेरा मित्र है, क्यों अन्य में राग द्वेष धरता है? (श्री आचारांग सूत्र)"

(२) प्रमोद भावना-(१) मोहजन्य हर्ष-स्वपर को भोगोपभोग की प्राप्ति में आनन्द, (२) शुभ हर्ष-दान, पुण्य, सेवाभाव, नैतिक गुण व सुविद्या, स्व-परको प्राप्त होने में हर्ष, (३) शुद्धसाधन हर्ष—सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का स्व-परको प्राप्ति में आनन्द, (४) शुद्धानन्द-आत्मिक सुख, अविकारी, अतींद्रिय, निर्विकल्प निज-सुख में लीन होना।

(३) करुणा भावना—(१) मोहजन्य करुणा-स्व-परको भोगोपभोग, धन, वैभव, प्रशंसा आदि प्राप्ति न होने में दुखी होना, (२) शुभ करुणा—शारीरिक व मानसिक पीड़ा से दुखी देख कर करुणा भावना, (३) शुद्ध साधन करुणा—अज्ञान, मिथ्यात्व, विषय, कषाय में स्व-परको सदा अनन्त-दुखी होना जान ये दोष त्याग करके सम्यग् ज्ञान दर्शन चरित्र विरतसंयम व समतादि गुण प्रकट करना तथा प्रकट कराना, (४) शुद्ध करुणा-स्व स्वभाव (आत्मस्वरूप) में लीन रहना। ज्ञानादि निजगुण की मलीनता ही दुःखहेतु जान आत्मगुणों की शुद्धि करना।

(४) माध्यस्थ भावना—(१) मोहजन्य समभाव—लज्जा, भय, लोभ, स्वार्थ या अज्ञानवश शांति धरना, (२) शुभ समभाव—ऐक्य, सहन-शीलता, गुणानुराग गंभीरता के गुण तथा कलह, कुसंप, धर्मान्ध विरोध के नुकसान विचार कर समभाव धरना, (३) शुद्ध साधन समभाव—रागद्वेष करने से भाव हिंसा होती है। मैं शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, मन, वचन, काया, कषाय, कर्म रहित हूं। मैं अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्तिस्वरूप हूं। ऐसी भावना विचार कर समभाव धरना। (४) शुद्ध समभाव—परम समतादि भाव ही मेरा निज

गुण है। मैं क्यों विकार पाऊँ? क्यों राग द्वेष लाऊँ? ऐसा विचार करके निज स्वरूप में लीन होवे।

चारों भावना में मोहजन्य पहिला भेद इस लोक तथा परलोक में दुःखदायी है व पाप बंध हेतु है और दूसरा शुभभेद इस लोक तथा परलोक में बाह्य सुखदायी व पुण्य गति का कारण है। तीसरा शुद्ध साधन नामक भेद इस लोक तथा परलोक में बाह्य तथा अभ्यंतर दोनों में सुखदाई व बहुत कर्म क्षय का कारण है। और शुद्ध नामक चौथा भेद इस लोक तथा परलोक में परम सुखदाई व मोक्षप्राप्ति का प्रधान कारण है।

(८३) प्रश्न—समकित (आत्मबोध) गुण सर्वोत्कृष्ट क्यों कहाता है?

उत्तर—जैसे रोगी बहुत काल से दुखी है, जगत् में रोग से मुक्त होने के उपाय हैं, परंतु क्या रोग है, कौनसा उपाय अकसीर है; ऐसे बोध के बिना वह सदा दुखी रहता है, इसी प्रकार यह आत्मा, जड़संगी (पुद्गलसंगी) बन अनादि काल से दुखी होरहा है, इन दुःखों से छूटने का मार्ग बताना ज्ञान का काम है। मार्ग का निश्चय करना समकित गुण का काम है और मार्ग पर चलना चारित्र का काम है। मार्ग बता भी दिया परंतु निश्चय नहीं है तो उस पर बराबर अंततक नहीं चल सकते।

चलना भी शुरू किया परंतु निश्चय किये बिना रास्ते में उलटे मार्ग में जा सकते हैं। इसलिये सुमार्ग निश्चय अर्थात् समकित गुण सर्वोत्कृष्ट हैं और इसे प्रगट करने का उत्कृष्ट पुरुषार्थ करना चाहिये।

काव्य विभाग

अब सम्यक्त्व-उत्पत्ति का अंतरंग कारण आत्मा का शुद्ध परिणाम है सो कहते हैं:-

दोहा—अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय।
मिथ्या गंठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय॥१॥

अधःकरण (आत्मा के शुद्ध परिणाम), अपूर्वकरण (पूर्व न हुए ऐसे शुद्ध-परिणाम शुद्धस्वरूप का अनुभव) और अनिवृत्तिकरण (नहीं पलटे ऐसे शुद्ध परिणाम), इन तीन करण रूप जो कोई परिणाम करे उसकी मिथ्यात्वरूप गांठ छिन्नभिन्न होकर समकित (आत्मानुभव) गुण प्रगट होता है।

२. अब सम्यक्त्व के जो आठ स्वरूप हैं उनके नाम कहते हैं—

दोहा—समकित उत्पति चिह्न गुण, भूषण दोष विनाश।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरणों विवरण तास॥२॥

अर्थ—आठ प्रकार से समकित का विवेचन शास्त्रकारों ने किया है सो आठ द्वार के नाम कहते हैं—

१–समकित, २–उत्पत्ति, ३–चिह्न, ४–गुण, ५–भूषण, ६–दोष, ७–नाश और ८ अतिचार।

३. अब सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं:—

चौपाई–सत्य प्रतीति अवस्था जाकी।
दिन दिन रीति गहे समता की।
छिन छिन करे सत्य को साको।
समकित नाम कहावे ताको ॥३॥

अर्थ—जिसको आत्मा के सत्य स्वरूप की प्रतीति पजती है और प्रति दिन समता गुण बढ़ता जाता है और तिक्षण सत्य कहे तो शुद्ध सत्यानुभव का प्रकाश रहता है अर्थात् सहानुभूति कायम रहती है, उसे समकित कहते हैं।

४. अब सम्यक्त्व की उत्पत्ति कहते हैं:—

दोहा—कै तो सहज स्वभाव के, उपदेशे गुरु कोय।
चहुंगति सैनी जीव को, सम्यक् दर्शन होय ॥४॥

अर्थ–किसी को तो सहज स्वभाव ही से सम्यक्त्व उपजता है और किसी को गुरु उपदेश से सम्यक्त्व उपजता है। ऐसे चारों गति में के मन है जिसको ऐसे (संज्ञी) जीव को सम्यग्दर्शन होता है।

५. अब सम्यक्त्व के चिह्न कहते हैं:—

दोहा—आपा परिचै निज विषै, उपजै नहिं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लच्छन एह॥५॥

अर्थ—अपने में आत्म अनुभव करने में संशय (अस्थिरता) नहीं उपजती और स्वाभाविक कपट से रहित (सरल) वैराग्य अवस्था हो, ये समकित के चिह्न हैं।

६. अब सम्यक्त्व के गुण कहते हैं:—

दोहा—करुणा वच्छल सुजनता, आतमनिंदा पाठ।
समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ॥६॥

अर्थ—करुणा, वात्सल्य, सज्जनता, स्वलघुता, समता भाव, भक्ति, उदासीनता और धर्म प्रेम ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं।

७. अब सम्यक्त्व के पांच भूषण कहते हैं:—

दोहा—चित प्रभावना, भावयुत, हेय उपादेय वानि।
धीरज हर्ष प्रवीणता, भूषण पंच बखानि॥ ७॥

अर्थ—ज्ञान की वृद्धि करना, ज्ञानवान होकर हेय और उपादेय उपदेश देना, धीरज धरना, संतोषी रहना और तत्त्व में प्रवीण होना; ये सम्यक्त्व के पांच भूषण हैं।

सफल-जीवन ।

(ले० पं० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ)

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की पहिली गाथा का भावार्थ

एक तरह से जीवन मिलना महँगा नहीं है। प्राणी को मरने के बाद बिना किसी टके पैसे के जीवन मिल ही जाता है। इस प्रकार का जीवन जितना सस्ता है सफल-जीवन उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक महँगा है। लाखों मनुष्यों में एकाध ही अपने जीवन को सफल बना पाता है। जीवन मिलना सरल है परन्तु जीवन की सफलता के साधन मिलना मुश्किल है। उत्तराध्ययन में चार बातें दुर्लभ बतलाई गई हैं जो कि जीवन की सफलता के लिये आवश्यक कही जा सकती हैं।

> चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
> माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मिय वीरियं।

प्राणी को चार कारणों का मिलना बहुत मुश्किल है। मनुष्यत्व, शास्त्रज्ञान, श्रद्धा और संयम पालन करने की शक्ति।

बतलाई गई है। किन्तु मनुष्यत्व की दुर्लभता बतलाई गई है। मनुष्यभव पाजाना एक बात है और मनुष्यत्व प्राप्त करलेना दूसरी बात है। जानी हुई दुनियां में मनुष्य तो करीब १॥ अर्ब हैं परंतु मनुष्यत्ववाले मनुष्यों की गिनती अगर की जाय तो वह अंगुलियों पर की जा सकेगी। इसीलिये शास्त्र में मनुष्यभव की दुर्लभता की अपेक्षा मनुष्यत्व की दुर्लभता का कथन किया है। यह बात बड़े मार्के की है।

सच है, मनुष्यभव पाजाने पर भी अगर मनुष्यत्व प्राप्त न किया तो मनुष्यजीवन किस काम का? परंतु यहां पर प्रश्न यह है कि मनुष्यत्व आखिर है क्या? जिसे न पाने पर मनुष्यजन्म ही व्यर्थ माना जाता है।

मनुष्यभव मिलने पर मनुष्य का आकार मिलता है परंतु मनुष्यत्व के लिये आकार की नहीं किन्तु गुणों की आवश्यकता है। एक कवि का कहना है कि जब तक गुणियों के भीतर मनुष्य की गणना न हो तब तक उसकी माता पुत्रवती ही नहीं है।

'गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम ॥ १ ॥

अर्थात् गुणी लोगों की गिनती करते समय जिसके नाम पर अंगुली न रक्खी गई अर्थात् जिसका नाम न लिया गया उस पुत्र से अगर कोई माता पुत्रवती कहलाये तो कहिये वन्ध्या किसे कहेंगे?।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि श्रेष्ठ गुणों को धारण करनेवाला ही मनुष्य है। बाकी तो मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्याकार प्राणी हैं।

मनुष्य शब्द का एक अर्थ यह भी किया जाता है कि 'मनु' की संतान है वह मनुष्य है। यद्यपि मनु की संतान सभी हैं लेकिन मनु की संतान होने का गौरव धारण करने वाले थोड़े हैं। सच्ची संतान तो वही है जो अपने पूर्व पुरुषों का गौरव धारण कर सके। मनु उन्हें कहते हैं जो युग निर्माण करते हैं। अर्थात् समाज की गिरी हुई हालत को उठा कर युगान्तर उपस्थित कर देते हैं। जैन-शास्त्रों में मनुओं का (कुलकरों का) जो उल्लेख मिलता है उस से साफ़ मालूम होता है कि उनने युग (कर्मभूमि) की आदि में समाज की आवश्यकता को पूर्ण किया था। आज भी जो मनुष्य, समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है समाज में युगान्तर उपस्थित करता है वह मनुष्य है, वही मनु की सच्ची सन्तान है।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में इतनी शक्ति या योग्यता नहीं हो सकती। फिर भी प्रत्येक मनुष्य मनु की संतान होने के गौरव की रक्षा कर सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही मनुष्य युगान्तर उपस्थित कर दे। इमारत सरीखे साधारण कार्य को भी एक ही कारीगर नहीं बना पाता फिर युगान्तर उपस्थित करना तो बड़ी बात है। हां! इतना हो सकता है कि हम उसके लिये कुछ भी कर गुज़रें। अगर हम एक ईंट भी जमा सके तो भी कार्यकर्ता कहलायँगे। मनु का कार्य कर सकेंगे। यही तो मनुष्यत्व है।

एक दूसरा कवि मनुष्यत्व का विवेचन इन शब्दों में करता है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च। सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्॥
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो। धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चारों बातों में तो मनुष्य पशु के समान ही है। मनुष्य में अगर कोई विशेषता है तो धर्म की है। जिस मनुष्य में धर्म नहीं है वह पशु के समान है।

मतलब यह है कि इस कवि ने मनुष्यत्व का चिह्न रक्खा है धर्म, जो मनुष्यधर्म को धारण कर सका वही सच्चा मनुष्य है। धर्म का विषय बहुत गहरा और विस्तीर्ण है। उसके ऊपर तो कई स्वतंत्र लेख लिखे जा सकते हैं इसलिये धर्म के विषय में हम यहां अधिक कुछ न कहेंगे। परन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि धर्म का मूल सचाई है। 'सचाई' का संस्कृत पर्यायवाची शब्द है 'सम्यक्त्व'। सम्यक्त्व से ही मनुष्यत्व है और मिथ्यात्व से ही पशुत्व है, एक कवि ने सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की महिमा को थोड़े में ही बता दिया है—

> नरत्वेपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतसः।
> पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्यक्तचेतनाः॥

अर्थात् जिनका चित्त मिथ्यात्व से दूषित होगया है वे मनुष्य होकर भी पशु हैं और जिनका आत्मा सम्यक्त्व से निर्मल होगया है, वे पशु होकर भी मनुष्य हैं। इससे साफ मालूम होता है कि मनुष्यत्व का ठेका सिर्फ मनुष्यों को ही प्राप्त नहीं है। और मनुष्य होने से ही मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो जाता। पशुओं में भी ऐसे पशु होते हैं जिन्हें हम मनुष्य कह सकते हैं। और मनुष्यों में भी ऐसे प्राणी होते हैं जिन्हें हम पशु कह सकते हैं इससे मालूम होता है कि मनुष्य होने पर भी मनुष्यत्व मिलना मुश्किल है। इसीलिये उत्तराध्ययन की गाथा

में चार दुर्लभों में सबसे पहिली दुर्लभ वस्तु मनुष्यत्व बतलाई गई है, वहां पर मनुष्यभव न लिखकर जो मनुष्यत्व लिखा गया है उसने अर्थ को बहुत गम्भीर बना दिया है। सफल-जीवन बनाने के लिये यह सबसे पहिली शर्त है।

जो इस पहिली शर्त को पूर्ण कर सका वह आगे की तीन शर्तों को भी पूर्ण कर सकेगा। सच पूछा जाय तो आगे की तीन शर्तें, मनुष्यत्व के ही पूर्ण विकाश के लिये हैं।

दूसरी शर्त है शास्त्रज्ञान। यों तो शास्त्रज्ञान होना सरल है। दश पांच वर्ष रखड़ते रखड़ते सभी विद्वान् बन जाते हैं। बात बात में धर्म २ चिल्लाना आता है। परंतु सच्चा शास्त्रज्ञान, धर्म के रहस्यों के पहिचानने की योग्यता मुश्किल है। जैनशास्त्र के ज्ञानका सार इतना ही है कि "धर्म आत्मा में है बाहर नहीं"। धर्म न तो मंदिरों में है न मसजिदों में, न तीर्थों में, न पोथियों में, वह तो अपनी आत्मा में है। लोगों ने धर्म का आधार शरीर मान लिया है। जाति और कुल को धर्म का ठेकेदार बना दिया है। वे हाड़ मांस के शरीरों में भी छूत अछूत का विचार करते हैं यही तो मिथ्याज्ञान है। सैकड़ों पोथों को निगल जाने पर भी जिसने अपनी आत्मा की शक्ति को न पहचाना, शरीर की शुद्धि अशुद्धि के पीछे ही पड़ा रहा वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो तो भी सम्यग्ज्ञानी नहीं कहा जा सकता।

जैनशास्त्रों में सब से बड़ी विशेषता यही है कि वह बाहिरी क्रियाकांडों में धर्म का अस्तित्व नहीं मानता, जिसने इतनी बात समझ ली उसने समस्त शास्त्रों का सार पालिया। शास्त्र

पढ़कर जो इस रहस्य को समझ सकते हैं उन्हें 'श्रुति' सुलभ नहीं है। किन्तु जो लोग शास्त्रों का बोझा ढोकर भी उसके रहस्य को नहीं समझते उन्हें 'श्रुति' दुर्लभ है। अगर शास्त्रों के पढ़ने से ही 'श्रुति' सुलभ होजाती तो उत्तराध्ययन सूत्र में चार दुर्लभों में 'श्रुति' दुर्लभ न बताई जाती।

तीसरी दुर्लभ वस्तु है 'श्रद्धा', यों तो श्रद्धा का राज्य सारे संसार में है। श्रद्धा के मारे दुनियां परेशान है और 'सत्य' मारा मारा फिरता है। लेकिन सच पूछा जाय तो यह श्रद्धा का फल नहीं है। श्रद्धा तो दिव्य गुण है। संसार में यह अंधेर मचाया है अन्धश्रद्धा ने। अन्धश्रद्धा के फंदे में पड़कर मनुष्य, विवेकशून्य बन गया है। उसने मनुष्यत्व को भुला दिया है। वह अत्यन्त संकुचित बन गया है। वह अन्धश्रद्धा सुलभ है। लेकिन श्रद्धा दुर्लभ है। वह सम्यग्ज्ञानपूर्वक होती है। वह प्रत्यक्ष अनुमान के विरुद्ध नहीं है। श्रद्धा शब्द का वास्तविक अर्थ है आत्मविश्वास। आत्मा अनंत शक्तिशाली है। वह अनन्त कर्म वर्गणाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के विश्वास से जो कर्मक्षेत्र में कूद पड़ते हैं। अनंत याधाएं और अनंत विघ्न जिनके विश्वास को हटा नहीं सके वही सच्चे श्रद्धालु हैं। जो कुलजाति आदि की पर्वाह न करके कहते हैं—

"दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्॥

"कुल में जन्म मिलना दैव के आधीन है, लेकिन पुरुषार्थ तो मेरे आधीन है" वे ही श्रद्धालु हैं। जैनधर्म यह नहीं कहता कि तुमको शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है। मुनि बनने का अधिकार नहीं है। वह अधिकारी का

ठेका नहीं देता। बल्कि कहता है कि आत्मा को पहिचानो और जो कुछ कर सकते हो करो। वह स्वप्न में भी नहीं विचारो कि मुझे इस बात का अधिकार है या नहीं। तुच्छ से तुच्छ, नीच से नीच प्राणी को धर्म पालन करने का अनन्त अधिकार है। जो उन अनन्त अधिकारों और आत्मा की अनन्त शक्ति में विश्वास रखता है वही सच्चा श्रद्धालु है।

चौथी दुर्लभ वस्तु है संयमशक्ति। संसार में यह पदार्थ सबसे अधिक दुर्लभ है। परंतु जितना ही अधिक दुर्लभ है लोगों ने इसे उतना ही अधिक खिलवाड़ की वस्तु बना रक्खा है। जिन लोगों में मनुष्यत्व नहीं, ज्ञान नहीं, श्रद्धा नहीं, वे संयमी बनने की डींग हांकते हैं। संयम की जैसी मिट्टी पलीद हुई है वैसी किसी की नहीं हुई है।

संयम के गौण साधनों को संयम समझना सब से बड़ी भूल है। उपवास, रसत्याग, अनेक तरह के वेष, स्त्री पुरुषों का त्याग आदि संयम के साधन हो सकते हैं परंतु ये स्वयं संयम नहीं हैं। फिर संयम क्या है और संयमी कौन है?

संयम है मनको वशमें रखना। कषायों को दूर रखना। जो मनुष्य हमारा बड़ा से बड़ा अनिष्ट कर रहा हो उस पर भी जिसे क्रोध नहीं आता, जिसे अपनी विद्वत्ता तथा ऋद्धि का घमण्ड नहीं है, जो अपनी पूज्यता का भी घमण्ड नहीं करता, जो यश का भिखारी नहीं है, जिसके हृदय में ईर्षा नहीं है, जो दूसरे के यश को सह सकता है, जो फूट का शत्रु हो, विश्वप्रेम ही जिसकी रागवृत्ति है, जो छल कपट से दूर है, जिसने बड़ी से बड़ी ऋद्धि को मिट्टी के समान समझा है, जो

उदारता का भंडार है, पापियों को देखकर जो घृणा न करके दया करता है, विरोधी के साथ भी जो मित्र जैसा बर्ताव करता है। जो सहनशीलता का घर है, वही संयमी है, वही साधु है। वही जगत् के लिये प्रातःस्मरणीय है। परंतु ऐसा संयम मिलना मुश्किल है। तपस्या का भेष धारण करने वाले (साधु) भारत में करीब ६० लाख व्यक्ति हैं उनमें ऐसे कितने हैं जिनकी कषायें पानी में खींची गई लकीर के समान शीघ्र ही विलीन होजाती हों। जिनमें सच्चा त्याग और सच्ची उदासीनता हो? ऐसे व्यक्ति अंगुलियों पर नहीं तो अंगुलियों के पोरों पर ज़रूर गिने जा सकते हैं इसीलिये उत्तराध्ययन में संयम को दुर्लभ कहा है।

इन चार दुर्लभ वस्तुओं को जो पा सका है उसीका जीवन सफल है।*

(जैनप्रकाश)

---

* इस लेख के संग्रह करने के लिये जैन प्रकाश व पंडितजी ने सहर्ष अनुमति दी है, जिसके लिये हम आपका आभार मानते हैं।

—सम्पादक.

"समकित" पर पूर्वाचार्यों के वचनामृत

(चौपाई तथा दोहे)

सुन समकित स्वरूप की बातें। मिटे मोह की सत्ता जातें।
आग साथ सिद्धान्त विचारे। आतमगुण परगुण निरधारे॥१॥

सम्यक्त्व औषध लगे, मिटे कर्म का रोग।
कोयला छोड़े कालिमा, होत अग्नि संयोग॥ २ ॥
समकित रूपी चाँदनी, जिहँ घर में परकाश।
तिहँ घट में उद्योत है, होत तिमिर को नाश॥ ३ ॥
समकित रूप अनूप है, जो पहिचाने कोय।
तीन लोक के नाथ को, महिमा पावे सोय॥ ४ ॥
कूकस विषय विकार सम, मत भख मूढ़ गँवार।
समकित रस तू चाखिले, गुरु-मुख करि निर्धार॥ ५ ॥
मन वच तन थिरते हुए, जो सुख समकित मांहि।
इन्द्र नरेन्द्र फणीन्द्र के, ता समान सुख नाहिं॥ ६ ॥
समकित से प्रभु बनत है, समकित सुख का मूल।
समकित चिन्तामणि तजी, मति भटके कहुँ भूल॥ ७ ॥
बिन सम्यक्त्व विचार के, तू जंगल को रोज।
मिथ्या यों ही पचत है, क्यों न करे अब खोज॥ ८ ॥
समकित के आने बिना, मति भूसे ज्यों स्वान।
लोक गडरिया चाल तजि, अब आपो पहिचान॥ ९ ॥
जगत मोह फाँसी प्रबल, करे न सत्य उपाय।
कर संगत सम्यक्त्व की, सहज मुक्त हो जाय॥ १० ॥
अति अगाध संसार-नद, विषय नीर गम्भीर।
समकित बिन पार न लहै, कोटि करहु तदबीर॥ ११ ॥

* श्री वीतरागाय नमः *

नय प्रमाण का थोकड़ा

प्रकाशक

हीरालाल माणकचन्द गोलछा

बीकानेर,

निवेदन

भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित पूर्ण द्रव्यानुयोग की बात रहने दीजिये। इस वर्त्तमान काल में उपलब्ध द्रव्यानुयोग सम्बन्धी शास्त्र भी अत्यन्त विस्तृत हैं। और फिर आजकल की बोलचाल की भाषा में न होने से सर्वसाधारण उनका उपयोग नहीं कर सकते। इस दशा में द्रव्यानुयोग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सरल उपाय थोकड़ा है। थोकड़ा शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने की कुंजी (Key) है। इससे सभी जिज्ञासु सरलता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसी विचार से "नय प्रमाण का थोकड़ा" प्रकाशित किया गया है।

इस थोकड़े की भाषा विशुद्ध हिन्दी नहीं है। उस की शुद्धता पर ध्यान भी नहीं दिया गया है। कारण यह कि जिन लोगों ने प्राकृत के शब्दों से इसे याद किया है, उनके लिए शुद्ध हिन्दी अनुकूल नहीं पड़ती। उनकी जबान पर ऐसा ही बैठा होता है। अतः इसकी भाषा पर ध्यान न देकर भावों की ही ओर ध्यान देने की कृपा करें।

इस थोकड़े के शुद्ध करने में लींबड़ी सम्प्रदाय के श्रीमान् १००८ श्री शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्द्रजी महाराज श्रीमान् १००८ श्री उपाध्याय आत्मारामजी महाराज और परम-प्रतापी श्रीमान् १००८ पूज्यश्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के आचार्य १००८ श्री पूज्य जवाहिरलालजी महाराज के सुशिष्य १००७ श्री पंडितरत्न घासीलालजी महाराज से बहुत सहायता मिली है। अतः इन सब महानुभावों का आभार मानते हैं।

आशा है पाठकगण इससे लाभ उठाकर कृतार्थ करेंगे।—

निवेदक—

बीकानेर
२१-१-२८ ई.

भैरोंदान जेठमल सेठिया

विषयसूची

॥ श्रीशान्तिनाथाय नमः ॥

सात नयों का थोकड़ा

वीरं प्रणम्य सर्वज्ञं, गौतमं गणिनं तथा ।
नयानां क्रियते व्याख्या, स्वात्मानुग्रहहेतवे ॥१॥

श्रीअनुयोगद्वार सूत्र में सात नयों का अधिकार चला है यह इक्कीस द्वार कर के अनेक स्थल में वर्णित है उस अधिकार को कहते हैं—

२१ द्वारों के नाम.

१ नयद्वार, २ निक्षेपद्वार, ३ द्रव्यगुणपर्याय, ४ द्रव्यक्षेत्रकालभाव, ५ द्रव्यभाव, ६ कारणकार्य, ७ निश्चयव्यवहार, ८ उपादान तथा निमित्तकारण, ९ प्रमाण ४, १० गुणगुणी, ११ सामान्यविशेष, १२ ज्ञेयज्ञानज्ञानी, १३ उत्पादव्ययध्रुव, १४ आधाराधेय, १५ आविर्भावतिरोभाव, १६ मुख्यता और

गौणता, १७ उत्सर्गापवाद, १८ आत्मा ३, १९ ध्यान४, २० अनुयोग ४, २१ जागरणा ३।

प्रथम नयद्वार के अन्तर्द्वार (भेद) ११.

१ नामद्वार, २ शब्दार्थद्वार, ३ स्वरूपद्वार, ४ लक्षणद्वार, ५ भेदद्वार, ६ दृष्टान्तद्वार, ७ नयावतारद्वार, ८ द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकद्वार, ९ सप्तभङ्गीद्वार, १० सात नयों के ७०० भेद द्वार, ११ निश्चयव्यवहारद्वार।

अन्तर्द्वारों में—१ नाम द्वार.

सात मूलनयों के नाम कहते हैं– १ नैगमनय, २ संग्रहनय, ३ व्यवहारनय, ४ ऋजुसूत्रनय, ५ शब्दनय, ६ समभिरूढनय, ७ एवंभूतनय।

२ शब्दार्थद्वार.

प्रथम नय शब्द का अर्थ लिखते हैं—जो वस्तु के संपूर्ण अंश का ज्ञान करानेवाला हो उस को प्रमाण कहते हैं, अथवा जो समस्त वस्तु को परिच्छिन्न माने भिन्न २ करे संशय विमोह और विभ्रम से रहित वस्तु

की जैसी की तैसी स्थापना करे वही प्रमाण कहा जाता है, उस प्रमाण के दो भेद हैं—सविकल्प और निर्विकल्प। जो इन्द्रियद्वारा प्रवर्त्तने वाले मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञान स्वरूप हो वह सविकल्प है और जो इन्द्रियातीत केवलज्ञान रूप हो वह निर्विकल्प है। इस प्रकार प्रमाण के अर्थ जानना। और जो इसी प्रमाण के द्वारा गृहीत (ग्रहण की हुई) वस्तु के एक अंश का ज्ञान कराने वाला हो उस को नय कहते हैं। अथवा ज्ञाता (जानने वाले) का जो अभिप्राय है वही नय कहा जाता है और नाना स्वभाव से लेकर वस्तु को एक स्वभाव में स्थापित करे उसको तथा वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

७ नयों के लक्षण—

जो विकल्प से संयुक्त हो वह नैगमनय १। जो अभेदरूप से वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रहनय २। जो

१— इसके अन्य स्थल में ऐसे भी लक्षण कहे हैं, जैसे—एक वचन में एक अध्यवसाय उपयोग में ग्रहण आवे उस का सामान्य रूप पने सर्व वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रह नय; अथवा सब भेदों को सामान्य पने ग्रहण करे वह संग्रहनय, अथवा 'संगृह्णते इति संग्रहः' जो समुदाय अर्थ ग्रहण करे वह संग्रहनय कहा जाता है।

इस (संग्रह) नय से जिस जिस अर्थ को ग्रहण किये उन्हीं अर्थों के भेद करके वस्तु का फैलाव करे वह व्यवहार नय ३। जो सरल भांति सूचना करे वह ऋजुसूत्रनय ४। जो शब्द व्याकरण से प्रकृतिप्रत्यय द्वारा सिद्ध हो वह शब्दनय ५। जो शब्द में भेद होते हुए भी अर्थ का भेद नहीं हो जैसे- शक्र इन्द्र पुरन्दर आदि, वह समभिरूढ नय ६। और जो क्रिया के प्रधान पने से हो वह एवंभूत नय ७ कहा जाता है।

३ स्वरूपद्वार.

(नैगम नय)

(१)

नैगमनय वाला पदार्थ को सामान्य, विशेष तथा उभयात्मक मानता है, तीन काल की बात मानता है और निक्षेपा चार मानता है। नैगम नय का अर्थ यह है कि- नहीं है एक गम (विकल्प) जिस के अर्थात् अनेक मान अनुमान और प्रमाण करके वस्तु को माने वही नैगम कहा जाता है।

(संग्रह नय)
(२)

संग्रह नय वाला पदार्थ को सामान्य मानता है विशेष नहीं, तीन काल की बात मानता है, निक्षेपा चार मानता है, संग्रह संग्रह में वस्तु को ग्रहण करे, इस पर दातून का दृष्टान्त, जैसे- किसी साहूकार ने अपने अनुचर (दास) को कहा कि दातून लाओ, तब वह दास 'दातून' ऐसा शब्द सुनकर दातून मसी (दन्त-मञ्जन) कूंची जिभी झारी काच कांगसा रुमाल पाग पोशाक अलंकार, इत्यादि दातून की सब सामग्री ले आया। इस प्रकार संग्रह नय वाला एक शब्द में अनेक वस्तु को ग्रहण करे जैसे वन को वन कहे परन्तु वन में वस्तुएँ अनेक हैं।

(व्यवहार नय)
(३)

व्यवहार नय वाला पदार्थ को विशेषसहित सामान्य मानता है, तीन काल की बात मानता है, निक्षेपा चार मानता है, तथा जो वस्तु का विवेचन करे अर्थात् भेद करे उस को व्यवहार कहते हैं, जैसे--जीव के दो

भेद--सिद्ध और संसारी, सिद्ध के दो भेद-अनन्तर सिद्ध और परम्परसिद्ध, संसारी जीव के भी दो भेद सयोगी(१३ वें गुणठाणवाले)और अयोगी(१४ वें गुणठाणवाले),सयोगी के दो भेद-छद्मस्थ और केवली(१३वें गुणठाणवाले),छद्मस्थ के दो भेद-सकषायी छद्मस्थ और अकषायी छद्मस्थ, अकषायी छद्मस्थ के दो भेद-उपशान्तकषायी छद्मस्थ (११ वें गुणठाणवाले) और क्षीणकषायी छद्मस्थ(१२ वें गुणठाणवाले), सकषायी छद्मस्थ के दो भेद-सूक्ष्मसम्पराय(१० वें गुणठाण)वाले और बादरसंपराय वाले, बादरसम्पराय वाले के दो भेद- प्रमादी और अप्रमादी (७ वें ८ वें ९वें गुणठाणवाले), प्रमादी के दो भेद- सविरति और अविरति, सविरति के दो भेद- सर्वविरति साधु (छठेगुणठाणवाले) और देशविरति श्रावक (५ वें गुणठाणवाले), अविरति के दो भेद- अविरतिसम्यग्दृष्टि(चौथे गुणठाणवाले) और अविरति मिथ्यादृष्टि (पहलेगुणठाणवाले) दूसरे तीसरे गुणठाणवाले को भी मिथ्यात्व की क्रिया लगती है इसलिए वे भी मिथ्यादृष्टि के सामिल गिनेगये हैं । मिथ्यादृष्टि के दो भेद-- भव्य (मुक्तिगमनयोग्य) और अभव्य (मुक्तिगमन के अयोग्य)

भव्य के दो भेद–ग्रन्थि भेदी (ग्रन्थिरहित) और अग्रन्थि-भेदी (ग्रन्थिसहित)। इसी रीति से पुद्गल के भी दो भेद मानते हैं–परमाणु और स्कन्ध, स्कन्ध के दो भेद–जीवसहित और जीवरहित, जीवसहित स्कन्ध के दो भेद--सूक्ष्म स्कन्ध और बादर स्कन्ध। इत्यादि भिन्न २ विवेचन करे उस को व्यवहारनय कहते हैं।

(ऋजुसूत्र नय)

(४)

ऋजुसूत्र नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, निक्षेपा चार मानता है, वर्तमान काल को मुख्य कर के वस्तु मानता है, जैसे किसी ने कहा कि सौवर्ष पहले सुवर्ण की वृष्टि हुई थी तो इस नय वाला कहता है कि-निरर्थक, तथा सौवर्ष पीछे सुवर्ण की वृष्टि होगी, तो भी निरर्थक। ऐसे ऋजुसूत्र नय वाला वर्तमान काल को मुख्य कर के वस्तु मानता है, जिस पर साहूकार के बेटे की बहू का दृष्टान्त-- जैसे कोई साहूकार अपने मकान की पौषधशाला में सामायिक करके बैठा था उस वखत किसी दूसरे पुरुष ने आकर उस के बेटे की बहू को पूछने लगा कि तुम्हारे ससराजी कहां गये हैं? तो वह बेटे की

वहू बोलती है कि मेरे ससरेजी पंसारी बाजार में सूंठ मिरच विगेरे खरीदने को गये हैं, तब उस पुरुष ने पंसारी बाजार में जाकर सेठजी की तलास की मगर वहां नहीं पाये तो पीछा आकर फिर पूछता है कि बाई ! वहां तो सेठजी नहीं मिले सच बताइये कि सेठजी कहां गये हैं ? तब वह बोलती है कि मेरे ससरेजी मोची के यहां जूते खरीदने को गये हैं, तब उस पुरुष ने मोचियों के बाजार में जाकर तलास की तो वहां भी सेठजी नहीं पाये तब पीछा वहां आया तो इतने में सेठजी की सामायिक पूरी हो गई थी, सेठजी सामायिक पारकर उस पुरुष से मिले और बात चीत कर उस को सीख दी और वेंट की वहू से कहने लगे कि वहू ! तूं जानती थी के ससराजी सामायिक लेकर बैठे हैं तो फिर नाहक इतना झूंठ क्यों बोली? तब उस वहू ने ऐसा उत्तर दिया कि आप का मन उस वखत पंसारी के यहां तथा मोची के यहां गया था इसलिए मैंने उस पुरुष से ऐसा कहा. । इस प्रकार ऋजुसूत्र नय वाला वर्त्तमान काल को मुख्य रख कर वस्तु को मानता है ।

(शब्दनय)
(५)

शब्द नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है, निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों का एक ही अर्थ मानता है, लिङ्ग और शब्द में भेद नहीं मानता है जैसे शक्र, पुरन्दर, शचीपति, देवेन्द्र, सब को एक मानता है।

(समभिरूढ नय)
(६)

समभिरूढ नय वाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थ मानता है, लिङ्ग और शब्द में भेद मानता है जैसे शक्रेन्द्र-- जब शक्रासन पर बैठा हुआ अपनी शक्ति द्वारा देवताओं को आज्ञा मनाता है उस वखत वह शक्रेन्द्र है। पुरन्दर--जब वज्र हाथ में लेकर वैरी देवताओं के पुरको विदारे (नाश करे) उस वखत वह पुरन्दर है। शचीपति-- जब इन्द्राणियों की

सभा में बैठाहुआ रंग राग नाटक चेटक देखे इन्द्रियजन्य सुखों का अनुभव करे उस वखत वह शचीपति है। देवेन्द्र–जब देवताओं की सभा में बैठा हुआ न्याय (इन्साफ़) करे उस समय वह देवेन्द्र है। ऐसे समभिरूढनयवाला शब्द पर आरूढ होकर सदृश शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। अथवा किञ्चित् ऊन वस्तु को भी संपूर्ण वस्तु मानता है, जैसे–तेरहवें चौदहवें गुणठाणावाले केवली भगवान् को भी सिद्ध मानता है।

(एवंभूत नय)

(७)

एवंभूतनयवाला पदार्थ को सामान्य नहीं मानता है विशेष मानता है, वर्त्तमान काल की बात मानता है निक्षेप १ भाव मानता है, सदृश शब्दों का उपयोग सहित भिन्न भिन्न अर्थ ग्रहण करता है, जैसे शक्रेन्द्र–शक्र आसन पर बैठाहुआ अपनी शक्ति से उपयोग सहित देवताओं को आज्ञा मनावे उस वखत वह शक्रेन्द्र है शेष पूर्ववत्। इस एवंभूत नय में उपयोग सहित क्रिया की मुख्यता है। इस नयवाला जो वस्तु अपने गुणों में संपूर्ण हो और अपने गुणों की यथावत्

क्रिया करे उसी को पूर्ण वस्तु कहता है, जैसे पानी से भरा हुआ स्त्री के शिरपर जलाहरणरूप चेष्टा करता हुआ हो उसी समय उस को घट (घडा) कहता है किन्तु घर के कोने में पड़े हुए घट को घट नहीं मानता है,ऐसे ही जब जीव सब कर्मों का क्षय कर के मुक्तिक्षेत्र में विराजमान हो तब ही उस को सिद्ध कहता है।

४ लक्षणद्वार.

णेगेहिं माणेहिं मिणइत्ति णेगमस्स य निरुत्ती।
सेसाणंपि नयाणं, लक्खणमिणमो सुणह वोच्छं ॥१॥
संगहिअपिंडिअत्थं, संगहवयणं समासओ बिंति।
वच्चइ विणिच्छियत्थं, ववहारो सव्वदव्वेसुं ॥२॥
पच्चुप्पन्नग्गाही, उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो।
इच्छइ विसेसियतरं, पच्चुप्पण्णं णओ सद्दो ॥३॥
वत्थूओ संकमणं, होइ अवत्थू नए समभिरूढे।
वंजण-अत्थ-तदुभयं, एवंभूओ विसेसेइ ॥४॥

(अनुयोगद्वारसूत्र)

१ नैगम नय सामान्य विशेष तथा उभय प्रधान वस्तु को मानता है। २ संग्रहनय सामान्य प्रधान वस्तु को मानता है यथा सत् जगत्। ३ व्यवहारनय विशेष

प्रधान लोकरूढ वस्तु को मानता है। ४ ऋजुसूत्र नय वर्तमान कालविषयक वस्तु को मानता है, अतीत अनागत काल विषयक वस्तु को नहीं मानता है। ५ शब्दनय काल लिङ्ग और वचन वगैरह के भेद से वस्तु को भिन्न भिन्न मानता है, अभूत् भवति भविष्यति. तटः तटी तटं. देवः देवौ देवाः, इन के लिङ्ग तथा वचन भेद होने से वस्तु को भी भिन्न२ प्रकार से मानता है। ६ समभिरूढ नय व्युत्पत्ति के भेद से वस्तु को भिन्न भिन्न मानता है, यथा इन्दनात् इन्द्रः, शकनात् शक्रः, पुरदारणात् पुरन्दरः, इस प्रकार यह नय इन्द्र शक्र पुरन्दर. इन शब्दों को व्युत्पत्ति की प्रधानता से भिन्न मानता है। ७ एवंभूत नय क्रियाविशिष्ट वस्तु को ही वस्तु तरीके मानता है यथा इन्दनक्रिया में परिणत होने से इन्द्र. पुरदारण में प्रवृत्त होने से पुरन्दर मानता है। क्रियारहित काल में इन्द्रादि शब्दों को इन्द्र शक्र पुरन्दर तरीके नहीं मानता है। समभिरूढ नय में क्रिया करो अथवा न करो परन्तु व्युत्पत्ति अर्थ होना चाहिये, और एवंभूत नय में क्रिया मुख्य होनी चाहिये, इन दोनों में केवल इतना ही भेद है। इन नयों के लक्षणों का विशेष विवरण अन्य स्थल से जानलेना।

५ भेद द्वार

(नैगमभेदाः)

नैगमनय के तीन भेद हैं– अंश, आरोप और संकल्प, और विशेषावश्यक में चौथा उपचरित भेद भी कहा है।

अंश नैगम के दो भेद हैं– भिन्नांश और अभिन्नांश, इनमें से स्कन्धादिक के जुदे अंश को भिन्नांश कहते हैं और अविभाग गुण को अभिन्नांश कहते हैं।

आरोप नैगम के चार भेद हैं– द्रव्यारोप, गुणारोप, कालारोप और कारणारोप। १ द्रव्यारोप– वास्तव में द्रव्य तो न हो परन्तु उसमें द्रव्य का आरोप करना, जैसे काल को द्रव्य कहना। २ गुणारोप– द्रव्य के विषय में गुण का आरोप करना, जैसे 'ज्ञान' यह आत्मा का गुण है परन्तु जो ज्ञान है वही आत्मा है, इस तरह ज्ञान को ही आत्मा कहना। ३ कालारोप— इसके भी दो भेद हैं– भूत और भविष्यत्, भूत— जैसे दीपमालिका के दिन कहे कि आज श्री महावीरस्वामी का निर्वाण है, यह वर्त्तमान काल में भूत(अतीत)काल का आरोप किया, भविष्यत्–जैसे आज श्री पद्मनाभ प्रभु का जन्म कल्याणक है, यह वर्त्तमान काल में भविष्यत्

(अनागत)काल का आरोप किया, जैसे वर्त्तमान काल के साथ दो भेद कहे हैं इसी तरह भूत और भविष्यत् काल के साथ भी दो दो भेद होते हैं, एवं कालारोप के ६ भेद अन्यस्थल से जानलेवें। ४ कारणारोप– कारण चार प्रकार का है– १ उपादानकारण, २ असाधारण कारण, ३ निमित्त कारण, और ४ अपेक्षाकारण। इन में जो निमित्त कारण है उस निमित्त में जो बाह्य क्रिया अनुष्ठान द्रव्य साधन सापेक्ष अथवा देव और गुरु ये सब धर्म के निमित्त कारण हैं सो इन को ही धर्म कहना, जैसे श्री वीतराग सर्वज्ञ देव परमात्मा भव्य जीवों को आत्म-स्वरूप दिखाने के लिए निमित्त कारण है सो उस निमित्त कारण को ही भक्तिवश होकर भव्यजीव कहते हैं कि हे प्रभो! तूं हमारे को तार तूं ही तरण तारण है, ऐसा जो कहना सो निमित्त कारण में उपादान कारण का आरोप करना है। वैसे ही अपेक्षा कारण में निमित्त कारण का आरोप करना, जैसे शुद्ध आहारादि को ज्ञान का निमित्त कारण कहना। असाधारण कारण में उपादान कारण का आरोप करना, जैसे ज्ञान का क्षयोपशम अथवा अंग असाधारण कारण है उसी को ज्ञानस्वरूप आत्मा कहना अर्थात् प्रशस्त क्षयोपशमवाले को प्रशस्त ज्ञान वाला कहना।

अपेक्षा कारण में उपादान कारण का आरोप करना जैसे मुनि के पात्रादि उपकरण को चारित्र (संयम) का आधार कहना, इसी का नाम कारणारोप है।

संकल्प नैगम के दो भेद होते हैं- स्वयंपरिणामरूप और कार्यरूप। स्वयंपरिणामरूप- जो वीर्य चेतना का संकल्प होना, इस जगह जुदा २ क्षय और उपशम भाव लेना है। दूसरा कार्यरूप- जैसा २ कार्य हो वैसा २ उपयोग हो, जैसे मिट्टी का करवा बना उस समय करवे का उपयोग और ढकनी बनी उस समय ढकनी का उपयोग।

(संग्रह नय)

संग्रह नय के दो भेद हैं-सामान्यसंग्रह और विशेषसंग्रह। सामान्यसंग्रह के भी दो भेद हैं-मूलसामान्यसंग्रह और उत्तरसामान्यसंग्रह। मूलसामान्यसंग्रह के अस्तित्व १ वस्तुत्व २ द्रव्यत्व ३ प्रमेयत्व ४ प्रदेशत्व ५ और अगुरुलघुत्व ६, ये छह भेद हैं और उत्तरसामान्यसंग्रह के दो भेद हैं-जातिसामान्य और समुदायसामान्य। जातिसामान्य-जो एक जातिमात्र को ग्रहण करे। समुदायसामान्य-जो समुदाय अर्थात्

समूह यानें सब को ग्रहण करे। यह उत्तरसामान्य चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन को ग्रहण करता है, और पूर्वोक्त जो मूलसामान्य है वह अवधि दर्शन तथा केवल दर्शन को ग्रहण करता है। अथवा इस सामान्य विशेष का ऐसा भी अर्थ होता है कि द्रव्य ऐसा नाम लेने से सर्व द्रव्यों का संग्रह हो गया इसका नाम सामान्य संग्रह है, और केवल एक जीवद्रव्य कहा तो सर्व जीवद्रव्य का संग्रह हो गया परन्तु अजीव सब टल गये, इस का नाम विशेष संग्रह है।

(व्यवहार नय)

व्यवहार नय के दो भेद हैं–शुद्ध व्यवहार और अशुद्ध व्यवहार। शुद्ध व्यवहार के दो भेद हैं–वस्तुगततत्त्वग्रहणाव्यवहार और वस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार। १ वस्तुगततत्त्वग्रहणाव्यवहार–जो आत्मतत्त्व अर्थात् अपने निज स्वरूप को ग्रहण करे और परवस्तुगत तत्त्व को छोड़े उस का नाम वस्तुगततत्त्वग्रहणा व्यवहार है। दूसरा जो भेद वस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार है उसके भी दो भेद हैं—१ स्ववस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार और २ परवस्तुगततत्त्वजानन-

व्यवहार। पहले भेद का अर्थ यह है कि- स्व याने अपनी आत्मा का जो तत्त्व याने ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य आदि अनन्तगुण आनन्दमय है, मेरा कोई नहीं और मैं किसी का नहीं हूँ, ऐसा जो अपने स्वरूप को जानना उस का नाम स्ववस्तुगततत्त्व जानन व्यवहार है १। दूसरा भेद परवस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार है उस के किसी अपेक्षा से तो एक ही भेद है और किसी अपेक्षा से चार अथवा पांच भेद भी हो सकते हैं, इन सब को एक साथ दिखाते हैं, जैसे धर्मास्तिकाय में चलन-सहाय आदि गुण (लक्षण) हैं और अधर्मास्तिकाय में स्थिर सहाय आदि गुण हैं, आकाश में अवगाहनादि गुण हैं, पुद्गल में मिलन विखरन आदि गुण हैं और काल में नया पुराना वर्त्तनादि गुण हैं, इत्यादिक। इन सब परवस्तुगततत्त्व को जानना उस का नाम परवस्तुगततत्त्वजाननव्यवहार है।

अन्य प्रकार से भी इस वस्तुगत व्यवहार के तीन भेद होते हैं सो भी दिखाते हैं- १ द्रव्यव्यवहार २ गुणव्यवहार और ३ स्वभावव्यवहार। द्रव्यव्यवहार उस को कहते हैं कि जगत् में जो द्रव्य (पदार्थ) हैं उन को यथार्थ जानें, इस द्रव्य व्यवहार के कहने से बौद्धादि मत का निराकरण होता है। दूसरे गुणव्यवहार

को कहते हैं– जो गुण गुणी का समवाय सम्बन्ध है उस को यथार्थ जाने और गुण गुणी के परस्पर भेद और अभेद दोनों को माने, इस गुणव्यवहार से वेदान्त मत का निराकरण होता है। तीसरा स्वभावव्यवहार– द्रव्य में जो स्वभाव है उस को यथार्थ जानें इस स्वभावव्यवहार से नैयायिक मत का निराकरण होता है।

इसी शुद्धव्यवहार के अन्य प्रकार से भी दो भेद होते हैं – साधनव्यवहार और विवेचनव्यवहार, साधन व्यवहार उस को कहते हैं जो उत्सर्ग मार्ग से नीचे के गुणस्थान को छोड़ और ऊपर के गुणस्थान में श्रेणी आरोहणरूप करके समाधि में होकर आत्मरमण करे। विवेचनव्यवहार के दो भेद हैं - स्वविवेचनव्यवहार और परग्रहण करावनरूप विवेचनव्यवहार। स्वविवेचन व्यवहार के दो भेद हैं –उत्सर्ग और अपवाद, उत्सर्ग स्वविवेचनव्यवहार- निर्विकल्पसमाधिरूप है, और अपवादस्वविवेचनव्यवहार–अपवाद से विकल्प सहित शुक्लध्यान का प्रथम पाया है । परग्रहणकरावनरूप विवेचन व्यवहार–यद्यपि ज्ञान दर्शन चारित्र आदि आत्मा से अभेदरूप होकर एक क्षेत्र में अर्थात् आत्मप्रदेश में रहते हैं परन्तु जिज्ञासु के समझाने के लिए ज्ञान दर्शन और चारित्र को जुदे२ कहकर आत्म-

बोध कराना, जैसे किसी को ज्ञान गुण लेकर ज्ञानी कहना, दर्शन से दर्शनी और चारित्र से चारित्री इत्यादि ।

अशुद्धव्यवहार के भी दो भेद हैं– १ संश्लेषित अशुद्ध व्यवहार और असंश्लेषित अशुद्धव्यवहार । संश्लेषित अशुद्ध व्यवहार उस को कहते हैं जो 'यह शरीर मेरा है और मैं शरीर का हूँ' ऐसा कहना । असंश्लेषित अशुद्ध व्यवहार उस को कहते हैं जो 'धनादि मेरा है' ऐसा कहना ।

इस अशुद्ध व्यवहार का अन्य प्रकार से भी भेद होते हैं सो इस प्रकार – इस के मुख्य दो भेद हैं–विवेचनरूप अशुद्ध व्यवहार और प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार । विवेचनरूप अशुद्ध व्यवहार तो अनेक प्रकार का है । दूसरा जो प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार है उस के तीन भेद हैं-वस्तुप्रवृत्ति, साधनप्रवृत्ति और लौकिकप्रवृत्ति । उन में भी साधनप्रवृत्ति के तीन भेद हैं–लोकोत्तरसाधनप्रवृत्ति, कुप्रावचनिक साधनप्रवृत्ति और लोकव्यवहार साधनप्रवृत्ति । लोकोत्तरसाधनप्रवृत्ति–जो अरिहन्त की आज्ञा से शुद्ध साधनमार्ग में इहलोक संसार पुद्गल भोग आशंसादि दोष रहित जो रत्नत्रयी की परिणति परभाव त्याग सहित

है। कुप्रावचनिक साधन प्रवृत्ति–जो स्याद्वाद के बिना मिथ्याभिनिवेश सहित साधनप्रवृत्ति है। लोकव्यवहार साधनप्रवृत्ति–जो लोक के–अपने अपने देश और कुल की रीति के– अनुसार प्रवृत्ति करना।

तीसरे प्रकार से भी इस अशुद्ध व्यवहार के चार भेद होते हैं–शुभव्यवहार, अशुभव्यवहार, उपचरितव्यवहार और अनुपचरितव्यवहार। शुभव्यवहार उसे कहते हैं जो पुण्य की क्रिया करे। अशुभव्यवहार उसे कहते हैं जो पाप की क्रिया करे। उपचरित व्यवहार उस को कहते हैं जो धनादि परवस्तु हैं उन को अपनी कहे। अनुपचरित व्यवहार उसे कहते हैं जो शरीर आदि परवस्तु यद्यपि निश्चय नय से जीव से भिन्न है परन्तु पारिणामिक भाव से जीव के साथ इकट्ठो मिलजाने से तादात्म्य को प्राप्त हुई है इस को अपनी कर के मानना।

(ऋजुसूत्र नय)

ऋजुसूत्र नय के दो भेद हैं–सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूलऋजुसूत्र। सूक्ष्म ऋजुसूत्रवाला एक समय में जैसा परिणाम हो वैसा ही मानता है, पाकक्रिया को

नहीं मानता है। स्थूलऋजुसूत्रवाला बाह्य प्रवृत्ति अथवा कथनी के कथनेवाले को जैसा देखता है वैसा ही मानता है।

(शब्द नय)

शब्द नय के चार भेद हैं-नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। इन चार भेदों को ही जैनशास्त्र में निक्षेप कहते हैं।

(समभिरूढ नय)

समभिरूढ नय का यह एक ही भेद है।

(एवंभूत नय)

एवंभूत नय का भी पूर्वोक्त केवल एक ही भेद है।

अब अन्य प्रकार से भी नयों के भेद कहते हैं—

१इसके अन्यठिकाने सात भेद भी कहे हैं, देखो नयचक्र देवचन्दजी कृत। २ इन निक्षेपों का विशेष विवरण देखो आगमसार नयचक्र, द्रव्यानुभवरत्नाकर आदि। ३ इस के अन्य ठिकाने दो भेद भी कहे हैं देखो नयचक्र देवचंदजी कृत।

(नैगम नय)

नैगमनय भूत भावी और वर्त्तमान काल के भेद से तीन प्रकार का है-भूत नैगम, भावी नैगम और वर्त्तमान नैगम। अतीत काल में वर्त्तमान काल का आरोप करना वह भूत नैगम है, जैसे दीपमालिका के दिन कहना कि आज श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्ष गये। भावी नैगम उसे कहते हैं जो भावी (भविष्यत्) काल में भूतकाल का आरोप करना, जैसे श्री अरिहन्त देव हैं सो सिद्ध ही हैं, ऐसा कहना। वर्त्तमान नैगम उसे कहते हैं जो वस्तु करने को प्रारम्भ की वह कुछ हुई कुछ न हुई हो उस वस्तु को हुई कहना जैसे ओदन (चाँवल) पकाया नहीं है परन्तु पकाने की तैयारी कर रहे हैं उस समय कहे कि ओदन पकाते हैं।

(संग्रह नय)

संग्रह नय के दो भेद हैं- सामान्यसंग्रह और विशेष संग्रह। सामान्यसंग्रह वह है जो सब वस्तुको सामान्यपने ग्रहण करे, जैसे- सब द्रव्य परस्पर अविरोधी हैं ऐसा कहना। विशेषसंग्रह वह है जो अन्य वस्तु को त्याग कर स्वजाति को संग्रह करे, जैसे

सब जीव चेतनस्वभाव द्वारा विरोधरहित है ऐसा कहना।

(व्यवहार नय)

व्यवहारनय दो प्रकार का है—सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार और विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार। सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहार- जैसे जो द्रव्य है सो जीव अजीव स्वरूपी है ऐसा कहना। विशेष संग्रहभेदकव्यवहार—जैसे जीव है सो संसारी भी है मुक्त भी है, ऐसा कहना।

(ऋजुसूत्र नय)

ऋजुसूत्र नय के भी दो भेद हैं— सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र। सूक्ष्म ऋजुसूत्र—जो सूक्ष्मपने वस्तु को संग्रह करे तथा जो एक समयावस्थायी पर्याय माने। स्थूलऋजुसूत्र-- जो स्थूलपणे वस्तु को संग्रह करे, तथा मनुष्यादि पर्याय को अपने २ आयुः प्रमाण काल तक ठहरना माने।

(शब्द नय)

शब्द नय एक प्रकार का है—जो शब्द के द्वारा ही वस्तु

को जाने जैसे-दारा, भार्या कलत्र। ये शब्द अनेक हैं परन्तु अर्थ एक ही है।

(समभिरूढ नय)

समभिरूढ नय का भी एक भेद है जो जहां जैसी स्थापना कर के वस्तु को दृढ करे जैसे गो पशु है।

(एवंभूत नय,

एवंभूत नय का भी एक भेद है-जो जहां सार्थक पने शब्द कहकर नाम ले जैसे-'इन्दतीति इन्द्रः' जो ऐश्वर्य धारण करे उसी का नाम इन्द्र है।

६ दृष्टान्तद्वार.

सात नयों पर तीन दृष्टान्त हैं-पायली, बसती और प्रदेश।

पायली का दृष्टान्त--

कोई पुरुष हाथ में फरसी (कुल्हाडी) ले कर जंगल को चला, उस पुरुष को देख कर किसीने कहा कि हे भाई! तूं कहां जाता है? तब वह अविशुद्ध नैगम

१ देशविशेष में प्रसिद्ध धान्य मापने का एक पात्र

नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली लेने को जाता हूँ, अब वृक्ष छेदते हुए उस को देख कर किसी पुरुष ने पूछा भाई! तूँ क्या छेदता है?, तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि भाई! मैं पायली छेदता हूँ। अब वह वृक्ष काट कर घर लाया और घड़ने लगा तब किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या घड़ता है? तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली घड़ता हूँ। उस लक्कड़ को वींधणी से कोरते हुए को देख कर किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या कोरता है?,तब वह विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली कोरता हूँ। उस को लेखिनी से समारते हुए को देखकर किसी ने पूछा कि भाई! तूं क्या समारता है? तब वह अत्यन्त विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली को समारता हूँ। अब वह पायली संपूर्ण तैयार हो गई और उस को पायली कहना, यहां तक विशुद्धतर नैगमनय का अभिप्राय है। व्यवहार नय का भी इसी तरह मानना है। तब संग्रहनय वाला बोला कि भाई! जब इस में धान्य भरोगे तब यह पायली कही जायगी अन्यथा यह काष्ठ है। ऋजुसूत्र नय वाला

तूं इन सब द्वीप समुद्रों में रहता है ? तब वह विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं मध्य जम्बूद्वीप में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई ! मध्य जम्बूद्वीप में तो दश क्षेत्र[1] हैं तो क्या तूं इन दशों ही क्षेत्रों में रहता है ? तब वह पुरुष अत्यन्त विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं भरतक्षेत्र में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! भरतक्षेत्र तो दो हैं - दक्षिणार्द्ध भरत और उत्तरार्द्ध भरत, तो क्या तूं दोनों ही क्षेत्रों में रहता है ? तब वह पुरुष अत्यन्त विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में तो ग्राम, आगर, नगर, खेड़, कव्बड़ मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम, संबाह, संनिवेश आदि बहुत से हैं तो क्या तूं इन सभी में रहता है ? तब वह पुरुष फिर कुछ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पाटलीपुत्र नगर में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि पाटलीपुत्र नगर में तो बहुत

---

१ क्षेत्रों के नाम-भरत, एरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवास, रम्यकवास, देवकुरु, उत्तरकुरु, पूर्वमहाविदेह, पश्चिममहाविदेह क्षेत्र।

से घर हैं तो क्या तू सभी घरों में रहता है? तब वह पुरुष फिर कुछ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं देवदत्त के घर में रहता हूँ, तब वह निपुण पुरुष बोला कि देवदत्त के घर में तो कोठे बहुत हैं तो क्या तू सभी कोठों में रहता है? तब वह पुरुष फिर कुछ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं मध्य घर (कोठे) में रहता हूँ। यहां तक तो विशुद्धतर नैगम नय का अभिप्राय है। तथा व्यवहार नय का भी अभिप्राय इसी प्रकार का है। तब उस पुरुष को निपुण पुरुष ने कहा कि भाई! मध्य घर (कोठे) में तो जगह बहुत हैं तो तू कहां रहता है? तब वह पुरुष संग्रह नय के अभिप्राय से बोला कि भाई! मैं अपनी शय्या पर रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! शय्या को तो बहुत से आकाश प्रदेशों ने अवगाहे हैं तो तू कहां रहता है? तब वह पुरुष ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से बोला कि मेरी आत्मा (शरीर) ने जितने आकाशप्रदेश अवगाहे हैं उतने में रहता हूँ। तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई! आकाश प्रदेशों को तो जीव और अजीव दोनों ने भी अवगाहे हैं तो तू कहां

१ जीव-सूक्ष्मनिगोदादिक । २ अजीव-पुद्गल स्कंधादिक ।

रहता है? तब वह शब्दादि तीन नयों के अभिप्राय से बोला कि मैं अपने आत्मस्वरूप में रहता हूँ।

प्रदेश का दृष्टान्त—

नैगम नय वाला छह द्रव्यों का प्रदेश कहता है जैसे- धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश, पुद्गल-स्कन्ध का प्रदेश, देश का प्रदेश। नैगम नय वाले के ऐसे कहनेपर संग्रह नय वाला बोला कि जो तू छह द्रव्यों का प्रदेश कहता है सो छह द्रव्यों का प्रदेश नहीं होता है क्यों कि देश का जो प्रदेश है वह उसी द्रव्य (स्कन्ध) का है किन्तु छठा प्रदेश अलग नहीं है, इस पर दृष्टान्त कहते हैं- जैसे किसी साहूकार के दास ने खर (गर्दभ) खरीदा तब वह साहूकार कहता है कि दास भी मेरा और खर भी मेरा है परन्तु खर दास का नहीं कहलाता है। इस दृष्टान्त से छह द्रव्यों का प्रदेश मत कहो परन्तु पांच द्रव्यों का प्रदेश कहो—

१ शब्दनय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने स्वभाव में रहता हूं। समभिरूढ नय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने गुणों में रहता हूं। एवंभूतनय के अभिप्राय से कहता है कि मैं अपने ज्ञान दर्शन के उपयोग में रहता हूं।

धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश और पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश। संग्रहनय वाले के ऐसे बोलने पर व्यवहार नय वाला कहता है कि जो तूं पांच का प्रदेश कहता है सो नहीं होता है, किस कारणसे? सो कहते हैं-जैसे पांच मित्र मिल कर (शामिल में) कोई वस्तु खरीदते हैं रूपा सोना धन धान्य आदि तो वे रूपा सोना आदि उन पांचों का कहलाता है, इसी रीति से पांचों का प्रदेश कहने से ऐसी शङ्का होती है कि पांचों के मिलने पर एक प्रदेश होता होगा, इस वास्ते पांच का प्रदेश मत कहो परन्तु प्रदेश पांच प्रकार का है ऐसा कहो जैसे-धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश, पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश। व्यवहार नय वाले के ऐसे कहने पर ऋजुसूत्र नय वाला कहता है कि जो तूं पांच प्रकार का प्रदेश कहता है सो नहीं होता है, किस कारण से? कि पांच प्रकार का प्रदेश कहने से ऐसी शङ्का प्राप्त होती है कि एकेक द्रव्य का प्रदेश पांच पांच प्रकार का होता होगा, इस तरह पचीस प्रकार के प्रदेश हो जाते हैं इसलिए पांच प्रकार का प्रदेश मत कहो किन्तु 'भइयव्वो' भजनीय प्रदेश कहो-१ स्यात् धर्मास्तिकाय का प्रदेश

२ स्यात् अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ स्यात् आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४ स्यात् जीव का प्रदेश, ५ स्यात् पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश। ऋजुसूत्र नय वाले के ऐसे बोलने पर शब्द नय वाला कहता है कि जो तूं 'भइयव्वो' भजनीय प्रदेश कहता है सो नहीं होता है क्यों कि भजनीय प्रदेश कहने से ऐसी शङ्का प्राप्त होती है कि जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वही स्यात् अधर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा। इस रीति से जो अधर्मास्ति काय का प्रदेश है वही स्यात् धर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा। इसी तरह आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश और पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश को भी समझ लेना चाहिये। ऐसे (भजनीय प्रदेश) कहने से तो अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी इसलिए भजनीय प्रदेश मत कहो किन्तु ऐसा कहो कि जो धर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही धर्मप्रदेश है, जो अधर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही अधर्म प्रदेश है, जो

आकाश रूप द्रव्य का प्रदेश है वही आकाशप्रदेश है, जो जीवरूप द्रव्य का प्रदेश है वह जीव नहीं है, जो पुद्गलस्कन्ध रूप द्रव्य का प्रदेश है वह पुद्गलस्कन्ध नहीं है। शब्द नय वाले के ऐसे कहने पर समभिरूढ नय वाला बोलता है कि जो तूं धर्मरूप द्रव्य का प्रदेश को धर्म प्रदेश कहता है शेष पूर्ववत् यावत् जो पुद्गलस्कन्धरूप द्रव्य का प्रदेश को पुद्गलस्कन्ध नहीं कहता है, यह नहीं होता क्योंकि इस जगह समास दो होते हैं तत्पुरुष और कर्मधारय, न मालूम कि तूं किस समास के अभिप्राय से बोलता है, तत्पुरुष समास के अभिप्राय से बोलता है ? या कर्मधारय समास के अभिप्राय से ? जो तूं तत्पुरुष समास के अभिप्राय से बोलता है तो ऐसा मत कहो और अगर कर्मधारय समास के अभिप्राय से कहता है तो विशेष प्रकार से कहो, जैसे–" धम्मे अ से पएसे अ से पएसे धम्मे। अहम्मे अ से पएसे अ से पएसे अहम्मे। आगासे अ से पएसे अ से पएसे आगासे। जीवे अ से पएसे अ से पएसे नोजीवे। खंधे अ से पएसे अ से पएसे नो-खंधे। " अर्थ– धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वही प्रदेश धर्मद्रव्य है। अधर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वही प्रदेश अधर्मद्रव्य है। आकाशास्तिकाय का जो

प्रदेश है वही प्रदेश आकाश द्रव्य है। जीव का जो प्रदेश है वह प्रदेश जीवद्रव्य नहीं है और पुद्गलस्कन्ध का जो प्रदेश है वह प्रदेश पुद्गलस्कन्ध नहीं है। समभिरूढ नय वाले के ऐसे बोलने पर एवंभूत नय वाला कहता है कि जो जो धर्मास्तिकायादिक वस्तु तू कहता है वह वह 'सर्वं' सब 'कृत्स्नं' देशप्रदेशकल्पनारहित, 'प्रतिपूर्णं' स्व स्वरूप से अभिन्न, 'निरवशेषं' अवयवरहित, 'एकग्रहणगृहीतं' जो एकही नाम से बोलाजावे नतु अनेक नामों से, कारण कि नाम के भेद से वस्तु में भेद की आपत्ति होजाती है इस लिए धर्मास्तिकायादि वस्तु को संपूर्ण कहो किन्तु देशप्रदेशादिरूप से मत कहो क्यों कि देश भी मेरे मत में वस्तु नहीं है और प्रदेश भी मेरे मत में वस्तु नहीं है, सिर्फ अखण्ड वस्तु का ही सत्व से उपयोग होता है ॥

७ नयावतार द्वार

प्रथम जीव के विषय में सात नय कहते हैं— नैगमनय के मत से गुण पर्याय और शरीर सहित सभी जीव हैं, इस नय ने ऐसे कहते हुए पुद्गलद्रव्य धर्मास्तिकाय आदि को भी जीव में गिनलिया। संग्रह नय कहता है कि असंख्यात प्रदेश वाला जीव है, इस नय

ने केवल आकाश प्रदेश को छोड़ दिया। व्यवहार नय कहता है कि जो विषयों को ग्रहण करे, कामादि की चिन्ता करे, पुण्यादि क्रिया करे वह जीव है, इस ने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा अन्य सब पुद्गलों को छोड़ दिया किन्तु पांच इन्द्रियां, मन और लेश्या आदि सूक्ष्म पुद्गलों को जीव में ही गर्भित रक्खा, क्यों कि यह नय इन्द्रियादि विषयों को लेता है। ऋजुसूत्र नय कहता है कि जो उपयोग वाला है वही जीव है, इस नय ने सब पुद्गलों से जीव का पृथग्भाव तो किया किन्तु ज्ञान अज्ञान का भेद नहीं किया। शब्द नय के अभिप्राय से नाम स्थापना द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों वाला जीव है, इस नय ने गुण और निर्गुण का भेद नहीं किया। समभिरूढ नय वाला कहता है कि जो ज्ञानादिक गुणों से युक्त है वही जीव है, इस नय ने मतिज्ञान और श्रुतज्ञान आदि जो साधक अवस्था के गुण हैं उन को भी जीव में शामिल किया। एवंभूत नय के अभिप्राय से वही जीव है जो अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्य से युक्त होकर शुद्ध सत्ता वाला है, इसनय ने सिद्ध अवस्था के जो गुण हैं उन्हीं गुणों से युक्त को जीव कहा है।

अब धर्म के विषय में सातों नयों को उतारते हैं—

नैगमनय के मत में सब धर्म हैं क्यों कि सब कोई धर्म की इच्छा रखता है, इस नयने अंशरूप धर्म को भी धर्म नाम कहा है। संग्रह नय के मत से जो वंशपरम्परा का धर्म है वही धर्म है, इस नय ने अनाचार को छोड़कर कुलाचार को ग्रहण किया है। व्यवहारनय के मत से जो सुख का कारण है वही धर्म है, इस नय ने पुण्य की करनी को ही धर्म कहा। ऋजुसूत्र नय के मत से उपयोगसहित वैराग्यपरिणाम को धर्म कहते हैं, इस में यथाप्रवृत्तिकरण का परिणाम भी धर्म हो जाता है जो परिणाम मिथ्यात्वी लोगों को भी होता है। शब्दनय के मत से समकित की प्राप्ति को ही धर्म कहते हैं क्यों कि धर्म का मूल समकित है। समभिरूढ नय के मत से जीव अजीवादि नव तत्त्वों को या छह द्रव्यों को जानकर अजीव का त्याग करनेवाला और जीव-सत्ता को ध्यानेवाला जो ज्ञान दर्शन चारित्र का परिणाम वही धर्म है, इस नय ने साधक और सिद्ध इन दोनों परिणामों को धर्म में अङ्गीकार किया। एवंभूत नय के मत से शुक्लध्यान रूपातीत परिणाम और क्षपकश्रेणि, ये जो कर्मक्षय के हेतु हैं वेही धर्म है क्यों कि जीव

का मूलस्वभाव ही धर्म है, इस धर्म से ही मोक्षरूप कार्य की सिद्धि होती है।

अब सिद्ध के विषय में सातों नयों को उतारते हैं—

नैगम नय के मत से सब जीव सिद्ध हैं क्यों कि कुछ ज्ञान का अंश तो प्रायः सब जीवों में रहता है। तथा ग्रन्थों में ऐसा भी कहा है—आठ रुचकप्रदेश तो सब जीवों के सिद्ध के प्रदेशों के समान अत्यन्त निर्मल ही रहते हैं उन में कर्म कदाऽपि नहीं लग सकते। संग्रह नय के मत से सब जीवों की सत्ता सिद्ध के समान है, इस नयने पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा छोड़ कर द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा को अंगीकार किया है। व्यवहार नय के मत से मन की एकाग्रता कर [illegible] उसे सिद्ध कहते हैं, इस नय ने व्यवहार [illegible] है। ऋजुसूत्र नय के मत से जिस ने [illegible] अपने आत्मा की सत्ता को पिछानी [illegible] सहित होकर ध्यान में लीन होवे, [illegible] अपने जीव को सिद्धसमान माने [illegible] है, इस नय की दृष्टि से क्षायिक सम्यक्[illegible] मोक्ष सिद्धि के लिए जो सम्यक्त्व से [illegible] चारित्र आराधने की जो जो क्रिया करते [illegible] सिद्ध है। शब्द नय के मत से जो आत्मि[illegible]

शुद्ध उपयोग की एकाग्रता से धर्म शुक्ल ध्यान द्वारा समकितादि (सम्यक्त्वादि) गुण को प्रकट करता हुआ मोहनाशक १२ वें गुणठाणे क्षीणमोही होकर आत्म-सिद्धियों को प्राप्त करे वह सिद्ध है। इस नय ने क्षपक श्रेणि वाले को सिद्ध माना है। समभिरूढ नय के मत से जो केवलज्ञान केवल दर्शन आदि गुणों से विभूषित है वही सिद्ध है, इस नय ने १३ वें १४ वें गुणठाणा में वर्त्तमान केवली भगवान् को भी सिद्ध माना है। एवंभूत नय के मत से वही सिद्ध कहा जा सकता है जो अष्ट कर्मों का क्षय कर के लोक के अग्रभाग में विराजमान और आठों गुणों से युक्त है।

अब समायिक पर सात नय उतारते हैं—

नैगम नय के मत से जब सामायिक करने का परिणाम हुआ तब ही सामायिक माना जाता है। संग्रह नय के मत से सामायिक के उपकरण लेकर विनयपूर्वक गुरु के समीप जाकर विधिपूर्वक आसन बिछाता है उस वखत सामायिक कहा जाता है। व्यवहार नय के मत से "करेमि भंते" का पाठ उच्चारण कर सावद्य योग का त्याग पूर्वक पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) करे उस वखत सामायिक माना जाता

है। ऋजुसूत्र नय के मत से मन वचन और काया के योग जब शुभ भाव में प्रवर्त्तने लगे तब ही सामायिक कहा जाता है। शब्द नय के मत से जीव और अजीव को सम्यक् प्रकार जानकर जीव-सत्ता को ध्यावे और अजीव से ममत्व भाव को दूर करे उस वखत सामायिक कहा जाता है। इस नय के अभिप्राय से क्षायिक सम्यक्त्व वाले के सामायिक माना है। समभिरूढ नय के मत से शुद्ध आत्मस्वरूप में रमण करे उस वखत सामायिक माना जाता है, इस नय ने केवली भगवान् के ही सामायिक माना है। एवंभूत नय के मत से सकल कर्म रहित शुद्ध आत्मा शुद्ध उपयोग युक्त अनन्त चतुष्टय[1] सहित के सामायिक माना जाता है, इस नय के अभिप्राय से सिद्धों के सामायिक माना है।

अब बाण पर सात नय उतारते हैं—

मार्ग में जाते हुए किसी पुरुष को बाण लगा तब वह पुरुष बाण को हाथ में लेकर नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि यह बाण मुझे लगा है और बहुत दुखः देता है। तब संग्रह नय वाला बोला कि

[1] अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य।

बाण का तो कोई कसूर नहीं है बाण तो किसी पुरुष के हाथ से छुटा है इस वासते बाण के चलाने वाले का कसूर है। तब व्यवहार नय वाला बोला कि भाई! बाण मारने वाले का कोई कसूर नहीं है परन्तु तुम्हारे अशुभ ग्रह का जोर है अर्थात् अशुभ ग्रह का कसूर है। तब ऋजुसूत्र नय वाला बोला कि भाई! ग्रह का कोई कसूर नहीं है क्योंकि ग्रह तो सब ही समानदृष्टि वाले हैं किसी को भी दुःख देते नहीं हैं परन्तु तुम्हारे कर्मों का कसूर है। तब शब्दनय वाला बोला कि भाई! कर्मों का कोई कसूर नहीं है क्योंकि कर्म तो जड़ (अचेतन) हैं, कर्मों के करने वाले तो अपने जीव ही हैं, जिस परिणाम से कर्म करते हैं वैसे ही फल भोगते हैं इसलिए तुम्हारे जीव का ही कसूर है। तब समभिरूढ नय वाला बोला कि भाई! जीव का तो कोई कसूर नहीं है जैसा केवली भगवान् ने भाव देखा हो वैसा ही जीव का परिणाम होता है, तदनुसार कर्म करता है, और वैसा ही फल भोगता है, उस को कोई टालने समर्थ नहीं है इसलिए समभाव का अवलम्बन करना चाहिये। तब एवंभूत नय वाला बोला कि ये सुख दुःख आदि सब बाह्य व्यवहार रूप प्रवृत्ति है, कर्मों का कर्त्ता तथा भोक्ता कर्म ही है परन्तु

निश्चय दृष्टि से तो जीव जन्म मरण रोग शोक सुख दुःख करके रहित है, शुद्ध स[illegible] परमानन्द सुखमय सत्ता से [illegible] आत्म स्वरूप में रमण करना ही सुख का कारण है।

८ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-द्वार.

सात नयों में नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र, ये चार नय तो द्रव्यार्थिक हैं और शब्द समभिरूढ और एवंभूत, ये तीन नय पर्यायार्थिक हैं।

कितनेक आचार्य निम्नोक्त प्रकार से भी कहते हैं— नैगम संग्रह व्यवहार, ये तीन नय तो द्रव्यार्थिक हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत, ये चार नय पर्यायार्थिक हैं।

द्रव्यार्थिक नय के दश भेद होते हैं वे इस प्रकार— १ नित्यद्रव्यार्थिक, २ एकद्रव्यार्थिक, ३ सद्द्रव्यार्थिक, ४ वक्तव्यद्रव्यार्थिक, ५ अशुद्धद्रव्यार्थिक, ६ अन्वय-

---

१ जो उत्पाद और व्यय पर्यायों को गौण मानकर द्रव्य के सत्ता-गुण को ही मुख्यतया ग्रहण करे उस को द्रव्यार्थिक कहते हैं।

२ जो पर्यायों को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसको पर्यायार्थिक कहते हैं।

द्रव्यार्थिक, ७ परमद्रव्यार्थिक, ८ शुद्धद्रव्यार्थिक, ९ सत्ताद्रव्यार्थिक और १० परमभावग्राहकद्रव्यार्थिक।

१ नित्यद्रव्यार्थिक– जो सब द्रव्य को नित्यरूप से स्वीकार करे। २ एकद्रव्यार्थिक– जो अगुरुलघु और क्षेत्र की अपेक्षा न करके एक मूलगुण को ही इकट्ठा ग्रहण करे। ३ सद्द्रव्यार्थिक– जो ज्ञानादि गुण से सब जीव समान हैं इसलिए सब को एक ही जीव कहता हुआ स्वद्रव्यादि को ग्रहण करे; जैसे "सल्लक्षणं द्रव्यम्"१। ४ वक्तव्यद्रव्यार्थिक— जो द्रव्य में कहने योग्य गुण को ही ग्रहण करे। ५ अशुद्धद्रव्यार्थिक– जो आत्मा को अज्ञानी कहे। ६ अन्वयद्रव्यार्थिक– जो सब द्रव्यों को गुण और पर्याय से युक्त माने। ७ परमद्रव्यार्थिक– जो 'सब द्रव्यों की मूल सत्ता एक है' ऐसा कहे। ८ शुद्धद्रव्यार्थिक– जो प्रत्येक जीव के आठ रुचक प्रदेशों को शुद्ध निर्मल कहे। ९ सत्ताद्रव्यार्थिक– जो 'जीव के असंख्यात प्रदेश एक समान है' ऐसा माने। १० परमभावग्राहकद्रव्यार्थिक– जो 'गुण और गुणी एक द्रव्य है, आत्मा ज्ञान रूप है' ऐसा माने।

पर्यायार्थिक नय के छह भेद होते हैं वे इस

१ यह ग्रन्थ की बात है शास्त्रों में नहीं मिलती।

निश्चय दृष्टि से तो जीव जन्म मरण रोग शोक सुख दुःख करके रहित है, शुद्ध सच्चिदानन्द परमज्योति परमानन्द सुखमय सत्ता से सिद्धसमान है इसलिए आत्म स्वरूप में रमण करना ही सुख का कारण है।

८ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-द्वार.

सात नयों में नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्र, ये चार नय तो द्रव्यार्थिक हैं और शब्द समभिरूढ और एवंभूत, ये तीन नय पर्यायार्थिक हैं।

कितनेक आचार्य निम्नोक्त प्रकार से भी कहते हैं— नैगम संग्रह व्यवहार, ये तीन नय तो द्रव्यार्थिक हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत, ये चार नय पर्यायार्थिक हैं।

द्रव्यार्थिक नय के दश भेद होते हैं वे इस प्रकार— १ नित्यद्रव्यार्थिक, २ एकद्रव्यार्थिक, ३ सद्द्रव्यार्थिक, ४ वक्तव्यद्रव्यार्थिक, ५ अशुद्धद्रव्यार्थिक, ६ अन्वय-

---

१ जो उत्पाद और व्यय पर्यायों को गौण मानकर द्रव्य के सत्ता-गुण को ही मुख्यतया ग्रहण करे उस को द्रव्यार्थिक कहते हैं।

२ जो पर्यायों को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसको पर्यायार्थिक कहते हैं।

द्रव्यार्थिक, ७ परमद्रव्यार्थिक, ८ शुद्धद्रव्यार्थिक, ९ सत्ताद्रव्यार्थिक और १० परमभावग्राहकद्रव्यार्थिक।
१ नित्यद्रव्यार्थिक– जो सब द्रव्य को नित्यरूप से स्वीकार करे। २ एकद्रव्यार्थिक– जो अगुरुलघु और क्षेत्र की अपेक्षा न करके एक मूलगुण को ही इकट्ठा ग्रहण करे। ३ सद्‌द्रव्यार्थिक– जो ज्ञानादि गुण से सब जीव समान हैं इसलिए सब को एक ही जीव कहता हुआ स्वद्रव्यादि को ग्रहण करे; जैसे "सल्लक्षणं द्रव्यम्"। ४ वक्तव्यद्रव्यार्थिक— जो द्रव्य में कहने योग्य गुण को ही ग्रहण करे। ५ अशुद्धद्रव्यार्थिक– जो आत्मा को अज्ञानी कहे। ६ अन्वयद्रव्यार्थिक– जो सब द्रव्यों को गुण और पर्याय से युक्त माने। ७ परमद्रव्यार्थिक– जो 'सब द्रव्यों की मूल सत्ता एक है' ऐसा कहे। ८ शुद्धद्रव्यार्थिक– जो प्रत्येक जीव के आठ रुचक प्रदेशों को शुद्ध निर्मल कहे। ९ सत्ताद्रव्यार्थिक– जो 'जीव के असंख्यात प्रदेश एक समान है' ऐसा माने। १० परमभावग्राहकद्रव्यार्थिक– जो 'गुण और गुणी एक द्रव्य है, आत्मा ज्ञान रूप है' ऐसा माने।

पर्यायार्थिक नय के छह भेद होते हैं वे इस

१ यह ग्रन्थ की बात है शास्त्रों में नहीं मिलती।

प्रकार—१द्रव्य के पर्याय को ग्रहण करने वाला, भव्यत्व सिद्धत्व वगैरह द्रव्यके पर्याय हैं। २ द्रव्य के व्यञ्जन पर्यायों को मानने वाला, द्रव्य के प्रदेश मान वगैरह व्यञ्जन पर्याय कहेजाते हैं। ३ गुणपर्याय को मानने वाला, एक गुण से अनेकता होनी गुणपर्याय है जैसे धर्मादि द्रव्यों के एक गति—सहायकता गुण से अनेक जीव और पुद्गलों को सहायता करनी। ४ गुण के व्यञ्जन पर्यायों का स्वीकार करनेवाला, एक गुण के अनेक भेदों को उसके व्यञ्जन—पर्याय कहते हैं। ५स्वभाव पर्यायोंको मानने वाला,स्वभावपर्याय अगुरुलघु को कहते हैं,येपांचों पर्याय सब द्रव्य में हैं। ६ विभाव पर्यायको माननेवाला पर्यायार्थिक नय का छठा भेद है, विभावपर्याय जीव और पुद्गल में ही है अन्य द्रव्य में नहीं, जीव का चारों गतियां में नये नये भावों का ग्रहण करना और पुद्गल का स्कन्ध वगैरह होना ही क्रमशः उन दोनों द्रव्यों के विभावपर्याय हैं।

प्रकारान्तर से पर्यायार्थिक नय के छह भेद कहते हैं— १ अनादिनित्यपर्याय— जैसे पुद्गलद्रव्य का मेरु प्रमुख पर्याय—। २ सादिनित्यपर्याय— जैसे जीवद्रव्य का सिद्धत्व पर्याय। ३ अनित्यपर्याय— जैसे प्रत्येक समय में द्रव्य उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।

४ अशुद्धअनित्यपर्याय–जैसे जीव–द्रव्य के जन्म और मरण । ५ उपाधिपर्याय–जैसे जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध । ६ शुद्धपर्याय–जैसे मूलपर्याय[1] सब द्रव्यों का एकसमान है ।

अब दूसरी तरह से भी द्रव्यार्थिक के १० भेद और पर्यायार्थिक के ६ भेद कहते हैं जिस में द्रव्यार्थिक के १० भेद इस प्रकार–१ कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक–जो कर्मादि स्वरूप से अलग शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना, जैसे संसारी जीव को सिद्धसमान कहना । २ उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक–जो उत्पाद व्यय की गौणता कर सत्ता स्वरूप से वस्तु को ग्रहण करना, जैसे द्रव्य नित्य है ऐसा कहना । ३ भेद कल्पनानिरपेक्ष(भिन्नस्वगुणपर्याय से अभिन्नशुद्ध द्रव्य का ग्राहक)शुद्ध द्रव्यार्थिक–जो भेद कल्पना से अभिन्न शुद्ध वस्तु कहना जैसे निजगुणपर्याय से द्रव्य अभिन्न है ऐसा कहना । ४ कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक–जो कर्मोपाधि संयुक्त वस्तु का अनुभव करना, जैसे आत्मा को क्रोधी मानी आदि कहना । ५ उत्पादव्ययप्राधान्येन सत्ताग्राहक–अशुद्ध द्रव्यार्थिक–

[1] अगुरुलघु पर्याय ।

उत्पाद व्यय से संयुक्त वस्तु का अनुभव करना, जैसे वस्तु एक समय में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से संयुक्त है, ऐसा कहना। ६ भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक-जो भेदकल्पना करके संयुक्त अशुद्ध वस्तु का अनुभव करना, जैसे 'ज्ञान दर्शनादिक आत्मा का गुण हैं' ऐसा कहना। ७ अन्वय द्रव्यार्थिक-जो गुण पर्याय स्वभाव करके वस्तु का अनुभव करना, जैसे गुण-पर्याय-स्वभाववन्त द्रव्य है ऐसा कहना। ८ स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक-जो स्वद्रव्य को ही ग्रहण करे जैसे स्वद्रव्यादिचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य है ऐसा कहना। ९ परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक-जो परद्रव्य करके वस्तु को ग्रहण करे जैसे परद्रव्यादिचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य नहीं है ऐसा कहना। १० परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक- जो स्वकीय स्वरूप का अनुभव करना जैसे ज्ञानस्वरूपी आत्मा है ऐसा कहना।

पर्यायार्थिक नय के दूसरी तरह से ६ भेद इस प्रकार-अनादिनित्य पर्यायार्थिक जो अनादि और नित्य पर्याय पने वस्तु का अनुभवविषय, जैसे पुद्गलपर्याय नित्य है मेरु प्रमुख। २ सादिनित्यपर्यायार्थिक- जो सादि

२ द्रव्य क्षेत्र काल भाव।

करके संयुक्त हैं परन्तु नित्य है और पर्याय पने अनुभव करना, जैसे सिद्धों का पर्याय नित्य है। ३ अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक– जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय स्वभाव से अनुभव करना जैसे समय समय प्रति पर्याय विनाशवान् है। ४ सत्ता सापेक्ष स्वभाव नित्याशुद्ध पर्यायार्थिक– जो सत्ता स्वभाव संयुक्त नित्य अशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना जैसे एक समय में पर्याय तीन स्वभावात्मक है। ५ कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावनित्यशुद्ध पर्यायार्थिक– जो कर्म के उपाधि स्वभाव से भिन्न नित्य शुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीव के पर्याय सिद्धपर्याय के समान शुद्ध हैं। ६ कर्मोपाधि सापेक्षस्वभाव अनित्याशुद्ध पर्यायार्थिक– जो कर्मोपाधि स्वभाव से संयुक्त अनित्याशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीवों की उत्पत्ति और विनाश है।

९ सप्तभङ्गीद्वार.

भङ्गों के नाम— १ स्यात् अस्ति, २ स्यात् नास्ति, ३ स्यात् अस्ति नास्ति, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात्

१. पूर्वपर्यायस्य विनाशः, उत्तरपर्याय स्योत्पादः, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वम्।

अनेक अवक्तव्य,७ स्यात् एक अनेक युगपद् अवक्तव्य।

१०सात नयों के ७०० भेद द्वार.

सात नयों के मूल भेद दो हैं द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं- १ नैगम २ संग्रह और ३ व्यवहार। पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं-१ ऋजुसूत्र २ शब्दनय ३ समभिरूढ ४ एवंभूत।

पूर्वोक्त द्वार ८ वाँ पृष्ठ ४३ में दूसरी तरह से द्रव्यार्थिकनय के १० भेद और पर्यायार्थिक नय के ६ भेद कहे हैं उन में से द्रव्यार्थिक नय के १० भेदों को "नैगमनय के तीन भेद- अतीत अनागत और वर्त्तमान। संग्रह नय के दो भेद-सामान्य संग्रह और विशेष संग्रह। व्यवहार नय के दो भेद- सामान्य संग्रह भेदक व्यवहार और विशेषसंग्रहभेदक व्यवहार।" इन सातों के ऊपर गुणने से ७० भेद,और पर्यायार्थिक नय के ६ भेदों को "ऋजुसूत्र नय के दो भेद- सूक्ष्म ऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र, तथा शब्द समभिरूढ और एवंभूत, इन के एकेक भेद अर्थात् इन तीनों के तीन भेद" इन पांचों के ऊपर गुणाने से ३० भेद। ये सब मिल कर १०० भेद हुए। इन (१००) भेदों को सात भंगों पर गुणने से ७०० भेद हो। हैं।

११ निश्चयव्यवहार द्वार

पूर्वोक्त सातों नयों को सामान्य से निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों में समावेश करते हैं—

निच्छयमग्गो मुक्खो, ववहारो पुरणकारणो वुत्तो।
पढमो संवररूवो, आसवहेऊ तओ बीओ ॥१॥

तात्पर्यार्थ- निश्चय नय से सत्ता का ज्ञान मोक्ष का कारण है और व्यवहार नय से क्रियाओं का करना पुराय का हेतु है इसलिए निश्चय नय संवररूप- संवर का कारण- है और व्यवहार नय आश्रव का साधन है, अर्थात् शुभव्यवहार पुण्य कर्मों का और अशुभ व्यवहार पाप कर्मों का आश्रव है। यहां पर कोई कहे कि व्यवहार को छोड़ कर केवल निश्चय का ही आदर करना ठीक है, इस का उत्तर यह है कि—

जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहारनिच्छए मुयह।
एगेण विणा तित्थं,छिज्जइ अन्नेण ओ तच्चं ॥२॥

भावार्थ- भव्यजीवों को चाहिये कि यदि वे जिन-मत को अङ्गीकार करना चाहते हैं तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों नयों में से किसी का भी त्याग न करें। क्योंकि व्यवहार के अनुसार प्रवृत्ति और निश्चय

के अनुसार श्रद्धा करनी चाहिये। व्यवहार का उत्थापन करने से तीर्थ-शासन-का ही उच्छेद होता है। यथा- "नहु एगचक्केण रहो पयाति" अर्थात् एक चक्र से रथ नहीं चलता है। जो व्यवहार को नहीं मानता है वह गुरुवन्दना, जिनभक्ति, तप और प्रत्याख्यान आदि आचार-धर्म- को भी छोड़ देता है। आचार का त्याग करने से निमित्त कारण छोड़ दिया जाता है, निमित्त कारण के विना केवल उपादान कारण से कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, इसी से व्यवहार नय का मानना आवश्यक है। यदि केवल व्यवहार नय ही माना जाय तो विना निश्चय नय के तत्त्वों के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही नहीं होने पाता और विना यथार्थ ज्ञान (तत्त्वज्ञान) के मोक्ष नहीं हो सकता, इसलिए विना निश्चय के व्यवहार निष्फल है, इन- व्यवहार और निश्चय-दोनों के मिलने से ही कार्य की सिद्धि होती है इसलिए शास्त्रों में- "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ऐसा कहा है, अर्थात् ज्ञानांश निश्चय और क्रियांश व्यवहार है, इन दोनों से ही मोक्ष होता है॥ ८॥

२ निक्षेप द्वार.

जत्थ य जं जाणेज्जा, निक्खवं निक्खिवे निरवसेसं।
जत्थवि य न जाणिज्जा,चउक्कगं निक्खिवे तत्थ ॥१॥
(अनुयोगद्वारसूत्र)

अर्थ– जिस जीवादि वस्तु में जितने निक्षेप अपने से हो सके उतने निक्षेप सब में करना चाहिये। जो सब निक्षेपों का स्वरूप न जान सकें तो नाम स्थापना द्रव्य और भाव,ये चार निक्षेप तो जरूर करने चाहिये।१।

निक्षेप किस को कहते हैं? "प्रमाणनययोर्निक्षेपणं निक्षेपः।" इति वचनात, प्रमाण और नय से वस्तु को स्थापित करे उसे निक्षेप कहते हैं। वह चार प्रकार का होता है- १नाम निक्षेप, २स्थापना निक्षेप, ३द्रव्य निक्षेप, और ४ भाव निक्षेप।

१ नाम निक्षेप–जिस पदार्थ में जो गुण नहीं है उस को उस नाम से कहना वह नाम निक्षेप है। इस के तीन भेद होते हैं– १यथातथ्य नाम, २अयथातथ्य-नाम, और ३ अर्थशून्य नाम। १ यथातथ्य नाम–गुण-निष्पन्न नाम अर्थात् जो नाम गुण कर के सहित हो, जैसे परम ऐश्वर्यादिरूप इन्द्र की पदवी के भोगने वाले

को ही इन्द्र कहना, ऐसे ही तीर्थङ्कर चक्रवर्त्ती वासुदेव, इत्यादि, अथवा जीव का नाम जीव चैतन्य आत्मा, इत्यादि अनेक भेद कहना। २ अयथातथ्यनाम-जो नाम गुण कर के रहित हो, जैसे गोपालदारकादि को इन्द्रादिक शब्द कर के बोलाना, अथवा तनसुख धनसुख नयनसुख परमसुख हेमचन्द्र हस्तिमल्ल नरसिंह अमरचन्द धनपाल, तथा लक्ष्मीबाई दयाबाई इत्यादि। ३ अर्थशून्य नाम-जो नाम अर्थ से शून्य हो और जिस नाम के अक्षर प्रकट रूप में न हों, जैसे हाँसी खाँसी छींक बगासी (जम्भाई) टचकार और नूपुर का शब्द, इत्यादि।

२ स्थापना निक्षेप- जो सङ्केत पदार्थ के अर्थ से शून्य हो और उसी सङ्केत पदार्थ के अभिप्राय से जिस में आकार दिया जावे, जैसे जम्बूद्वीप के पट को जम्बूद्वीप कहना, सतरंज के मोहरों को हाथी घोड़ा आदि कहना, तथा लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहना। इसके भी दो भेद हैं-सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना। सद्भावस्थापना-जो चारभुजा की मूर्त्ति चारभुजा का आकार, नान्दिये की मूर्त्ति नान्दिये का आकार। असद्भावस्थापना-गोल [illegible] को तेल सिन्दूर लगाकर कहे [illegible] मेरे क्षेत्रपालजी।

इस के भी दो भेद हैं- इत्तरिय (इत्वरिका) और आवकहिय (यावत्कथिका), इत्तरिय-जो थोड़े काल के लिए बनाई जावे, आवकहिय- जो जावजीव के लिए बनाई जावे।

३ द्रव्यनिक्षेप- जो पदार्थ आगामी परिणाम की योग्यता रखने वाला हो, जैसे राजा के पुत्र को राजा कहना। अथवा अतीत अनागत पर्याय के कारण को भी द्रव्यनिक्षेप कहते हैं, इस के दो भेद हैं—आगम-द्रव्यनिक्षेप और नोआगम-द्रव्यनिक्षेप।

४ भावनिक्षेप- जो वर्त्तमान पर्याय संयुक्त वस्तु हो, जैसे राज्य करते हुए पुरुष को राजा कहना। इस के दो भेद हैं- आगम भावनिक्षेप और नो-आगम-भावनिक्षेप।

अब आवश्यक पर चारों निक्षेपों को उतारते हैं-आवश्यक याने जो अवश्य करने के योग्य हो, अथवा मर्यादा सहित समस्त प्रकार से आत्मा को ज्ञानादि गुणों द्वारा वश करना, या गुणशून्य आत्मा को समस्त प्रकार से गुणों में निवास कराना वह आवश्यक है। इस के चार भेद होते हैं-१ नामावश्यक, २ स्थापना-वश्यक, ३ द्रव्यावश्यक और ४ भावावश्यक।

१ नामावश्यक—किसी एक जीव का या एक अजीव का तथा बहुत से जीवों का या बहुत से अजीवों का, तथा एक जीवाजीव का या बहुत से जीवाजीव का आवश्यक ऐसा नाम नियत करना उस को नामावश्यक कहते हैं।

२ स्थापनावश्यक—"जण्णं कट्ठकम्मे वा चित्तकम्मे वा पोत्थकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सब्भावठवणा वा असब्भावठवणा वा आवस्सए त्ति ठवणा ठविज्जइ, सेत्तं ठवणावस्सयं" (अनुयोगद्वा०सू. १०) अर्थ- जो क० काष्ठ से निपजाया हुआ रूप, चि० चित्रलिखित रूप, पोत्थ० वस्त्र से निपजाया हुआ रूप जैसे लड़कियों के बनाए हुए तुलादुली (गुड़िया) के रूप, अथवा संपुटक रूप पुस्तक में वर्त्तिकालिखित रूप, अथवा ताड़पत्रादिकों को काट (कोर) कर के बनाया हुआ रूप, लेप्प० मृत्तिकादि से बनाया हुआ लेप्य रूप, गं० अत्यन्त कारीगरी कर के गाँठोंसे निपजाया हुआ रूप, वे० पुष्पवेष्टन क्रम से निपजाया हुआ आनन्दपुरादि में प्रसिद्ध रूप, अथवा जैसे कोई एक दो आदि वस्त्रों को वींटता हुआ किसी रूप (आकार) को बनावे, पू० पित्तल आदि धातु को ढाली हुई

प्रतिमा का रूप, सं० बहुत से वस्त्रादिकों के टुकड़ों को सांध कर बनाया हुआ रूप जैसे कञ्चुकी, अक्ख-ए० चन्दन के पासों का रूप, व० कोड़ियों का रूप। इन काष्ठकर्म आदि दशों के विषय में आवश्यक क्रिया युक्त साधु का एक अथवा अनेक, सद्भाव- (काष्ठकर्मादिकों के विषय यथार्थ आकार) अथवा असद्भाव- (चन्दन कौड़ादिकों के विषय आकार रहित) स्थापना करे वह स्थापनावश्यक है। इन नाम और स्थापना में क्या विशेष है ? उत्तर- नाम तो यावत्कथिक (अपने आश्रय द्रव्य की अस्तित्व कथा पर्यन्त रहने वाला) होता है और स्थापना इत्वरा (थोड़े काल तक रहने वाली) और यावत्कथिका (अपने आश्रय द्रव्य की सत्तापर्यन्त रहने वाली) दोनों तरह की होती है।

३ द्रव्यावश्यक के दो भेद होते हैं—आगमतो द्रव्यावश्यक और नोआगमतो द्रव्यावश्यक। आगमतो द्रव्यावश्यक-"जस्सणं आवस्सए त्ति पदं सिक्खितं १, ठितं २, जितं ३, मितं ४, परिजितं ५, नामसमं ६, घोससमं ७, अहीणक्खरं ८, अणच्चक्खरं ९, अव्वाइद्धक्खरं १०, अक्खलिअं ११, अमिलिअं १२, अवच्चामेलिअं १३, पडिपुण्णं १४, पडिपुण्णघोसं १५, कंठोट्ठविप्पमुक्कं १६, गुरुवायणोवगयं १७, सेणं तत्थ वायणाए

१८, पुच्छणाए १९, परिअट्टणाए २०, धम्मकहाए २१, नो अणुपेहाए, कम्हा?" अणुवओगो दव्व" मिति कट्टु। (अनुयोगद्वार० सूत्र १३) अब इस सूत्र का अर्थ लिखते हैं-जस्स० जिस किसी ने आवश्यक ऐसा पद (शास्त्र) शुद्ध सीखा है १, ठि० स्थिर किया है २, जि० पूछने पर शीघ्र उत्तर दिया है ३, मि० पद अक्षर की संख्या का सम्यक् प्रकार जानपना किया है ४, परि० आदि से अन्त तक और अन्त से आदि तक पढ़ा है ५, नाम० अपना नामसदृश पक्का किया है याने भूले नहीं ६, घोस० उदात्तानुदात्तादि घोषसहित ७, अही० गा० अक्षर बिन्दु मात्रा हीन नहीं ८, अण० अक्षर बिन्दु मात्रा अधिक नहीं ९, अव्वा० अनिक अक्षर तथा उलट पलट न बोले १०, अक्ख० अस्खलित उच्चारण याने बोलते समय अटके नहीं ११, अमि० मिलेहुए (संदिग्ध) अक्षर नहीं १२, अवचा० एक पाठ को बारंबार बोले नहीं अथवा सूत्रसदृश पाठ अपने मत से बनाकर सूत्र में बोले नहीं, अथवा एक सूत्र के सरीखे पाठ को सूत्रमध्ये पढ़ा कर बोले नहीं १३, पडि० काना मात्र आदि परिपूर्ण बोले १४, पडि० घोसं० काना मात्र आदि परिपूर्ण घोष कर के सहित १५, कंठो० कंठ ओष्ठ से न मिला हुआ याने स्फुट प्रकट १६,

१६, गुरु० गुरु की दी हुई वाचना कर के पढ़ा है १७, फिर वह पुरुष वहां वा० दूसरे को वाचना देता है १८, पु० प्रश्न पूछता है १९, परि० वारवार याद करता है २०, धम्म० उपदेश देता है २१, अर्थात् इन इक्कीस बोलों से तो सहित है, परन्तु उस में उपयोग नहीं है तो उसको आगम से द्रव्यावश्यक कहते हैं, क्योंकि जो उपयोग रहित होता है वह द्रव्यावश्यक कहा जाता है।

अब इस पर सात नयों को उतारते हैं– नैगम नय के अभिप्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करे उस को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं, दो पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम से दो द्रव्यावश्यक कहते हैं और तीन पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उस को आगम से तीन द्रव्यावश्यक कहते हैं, इस प्रकार जितने पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उतने ही को आगम से द्रव्यावश्यक कहते हैं। व्यवहार नय वाले का भी यही अभिप्राय है। संग्रह नय के अभिप्राय से एक पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करे अथवा बहुत से पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करें उन सब को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं। ऋजुसूत्र नय के अभि-

आप से एक पुरुष उपयोग रहित आवश्यक करे उस को आगम से एक द्रव्यावश्यक कहते हैं परन्तु पृथक् (जुदेजुदे) उपयोग रहित आवश्यक करने वालों को इस नय वाला आगम से द्रव्यावश्यक नहीं मानता है क्योंकि इस (ऋजुसूत्र) नय वाला अतीत और अनागत काल को छोड़ कर केवल वर्त्तमान काल को मुख्य रख कर उपयोग रहित अपने ही आवश्यक को आगम से एक द्रव्यावश्यक मानता है, जैसे स्वधन (अपना धन)। शब्दादि तीन नय वाले- जो आवश्यक का जानकार है और उपयोग रहित है उस को वस्तु (आवश्यक) नहीं मानते हैं क्योंकि जो जानकार है वह उपयोग रहित नहीं होता और जो उपयोग रहित है वह जानकार नहीं हो सकता, इसलिए इस को शब्दादि तीन नय वाले आगम से द्रव्यावश्यक ही नहीं मानते हैं।

नोआगम से द्रव्यावश्यक के तीन भेद हैं- १ जानकशरीर (ज्ञशरीर) द्रव्यावश्यक, २ भव्यशरीर द्रव्यावश्यक और ३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक।

१ जानकशरीर नोआगम से द्रव्यावश्यक- जैसे कोई पुरुष आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का जानकार

था और वह कालप्राप्त होगया, उस के मृतक शरीर को भूमि पर अथवा संथारे पर लेटा हुआ देख कर किसी ने कहा कि यह इस शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भाव से आवश्यक इस सूत्र का अर्थ सामान्य प्रकार से प्ररूपता था, विशेष प्रकार से प्ररूपता था, समस्त प्रकार भेदाभेद द्वारा प्ररूपता था तथा क्रिया विधि द्वारा सम्यक् प्रकार दिखलाता था, जैसे शहद के घड़े को तथा घी के घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शहद का घड़ा तथा घी का घड़ा था।

२ भव्यशरीर नोआगम से द्रव्यावश्यक– जैसे किसी श्रावक के घर पर लड़के का जन्म हुआ उस वक्त उस को देख कर कोई कहे कि इस लड़के की आत्मा इस शरीर से जिनोपदिष्ट भाव द्वारा आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का जानकार भविष्यत् काल में (आयंदा) होगा, जैसे नये घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शहद का घड़ा तथा घी का घड़ा होगा।

३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त नो आगम से द्रव्यावश्यक के तीन भेद होते हैं– १ लौकिक २कुप्रावचनिक और ३लोकोत्तर। लौकिक-जानक शरीर-भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त- नोआगम से द्रव्यावश्यक यह है जो कोई राजेश्वर तलवर माडम्बिक कौटुम्बिक

इभ्य श्रेष्ठी सेनापति सार्थवाह इत्यादिकों का प्रभात पहले यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय के वक्त मुख धोना दाँत प्रक्षालना तेल लगाना स्नान-मज्जन करना सर्षप दूध आदि माङ्गलिक उपचारों का करना आरीसे में मुख देखना धूप पुष्पमाला सुगन्ध ताम्बूल वस्त्र आभूषण आदि सब वस्तुओं द्वारा शरीर का शृङ्गार करना इत्यादि करने बाद राजसभा में पर्वतों में या बाग बगीचे आदि में नित्य प्रति अवश्यमेव जाना। इति लौकिक जानकशरीर- भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त-नो आगम से द्रव्यावश्यक है।

कुप्रावचनिक जानकशरीर- भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त- नोआगम से द्रव्यावश्यक- जो " चरग १ चीरिग२ चम्मखण्डिअ३ भिक्खोंड४ पंडुरंग५ गोअम६ गोव्वतिअ७ गिहिधम्म ८ धम्मचिंतग ९ अविरुद्ध१० विरुद्ध११वुड्ढ १२ सावग१३ प्पभितिओ पासंडत्था कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव तेयसा जलंते इंदस्स वा खंदस्स वा रुद्दस्स वा सिवस्स वा वेसमणस्स वा देवस्स वा नागस्स वा जक्खस्स वा भूअस्स वा मुगुंदस्स वा अज्जाए वा दुग्गाए वा कोट्टकिरियाए वा उवलेवण- संमज्जण-आवरिसण-धूव-पुप्फ-गंध- मल्लाइआइं दव्वावस्सयाइं करेंति, सेत्तं कुप्पावयणियं दव्वावस्सयं। "

(श्री अनुयोग द्वार सूत्र सूत्र. २०) अर्थ— च० खातेहुए फिरने वाले१, ची० रास्ते में पड़े हुए चींथरों को पहनने वाले२, चम्म० चर्म को पहनने वाले३, भि० भिक्षा माँगकर खानेवाले४, पंडु० शरीर पर भस्म लगाने वाले५, गो० बैल को रमाकर आजीविका करने वाले६, गो० गाय की वृत्ति से चलने वाले७, गि० गृहस्थ धर्म को ही कल्याणकारी मानने वाले८, धम्म० यज्ञादि धर्म की चिन्ता करने वाले९, अवि० विनयवादी१०, वि० नास्तिकवादी ११, वु० तापस१२, सा० ब्राह्मण प्रमुख १३ पा० पाखण्डमार्ग में चलने वाले, इत्यादिकों का कल्लं० कल पाउ० प्रभात पहले यावत् जाज्वल्यमान सूर्योदय के होते हुए इ० इन्द्र के स्थान पर, खं० स्कन्द (कार्तिकेय) देव के स्थान पर, रु० महादेव के स्थान पर, शि० व्यन्तर विशेष के स्थान पर, वे० वैश्रमण के स्थान पर, दे० सामान्य देव के स्थान पर, ना० नागदेव के स्थान पर ज० व्यन्तर विशेष के स्थान पर भू० भूतों के स्थान पर मु० बलदेव के स्थान पर अ० आर्या—प्रशान्तरूप देवी केस्थान पर दु० महिषारूढ़ देवी के स्थानपर को० कोट्टकिया देवी के स्थान पर गोबर आदि से लीपना संमार्जन करना सुगन्ध जल छिड़कना धूप देना पुष्प चढ़ाना गंध देना सुगन्ध

मालपका पहिनाना इति कुप्रावचनिक जानक-शरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त-नो आगम से द्रव्यावश्यक।

लोकोत्तर जानकशरीर भव्यशरीर तद्व्यतिरिक्त नो आगम से द्रव्यावश्यक-"जे इमे समणगुणमुक्कजोगी छक्कायनिरणुकंपा हया इव उद्दामा गया इव निरंकुसा घट्टा मट्टा तुप्पोट्ठा पंडुरपडपाउरणा जिणाणमणाणाए सच्छंदं विहरिऊणं उभओ काले आवस्सयस्स उवट्ठंति, से तं लोगुत्तरिअं दव्वावस्सयं।" अर्थ-जे० जो ये साधु के सत्ताईस गुण और शुभ योग कर के रहित. छ० षट्काय की अनुकंपा से रहित ह० बिना लगाम के घोड़े की तरह उतावले चलने वाले. ग० अंकुशरहित हस्तिवत् मदोन्मत्त. घ० फेनादि किसी द्रव्य से सुहाली करने के लिए जंघों को घसने वाले मे० तैल जलादि से शरीर और केशों को मसारने वाले. तु० होठों के मालिश करने वाले अथवा शीतरक्षादि के लिए मदन (मीण) से होठों को वेष्टित करने वाले. पंडु० धोये हुए सफेद वस्त्रों को पहिननेवाले. जि० तीर्थंकरों की आज्ञा से बाहिर. स० स्वच्छंद मति से विचरने वाले जो दोनों वक्त आवश्यक करते हैं। इति लोकोत्तर-जानक शरीर-भव्य शरीर-तद्व्यतिरिक्त नोआगम से द्रव्यावश्यक। इति द्रव्यावश्यक।

भावावश्यक के दो भेद हैं – १ आगम से भावा-वश्यक और २ नोआगम से भावावश्यक।

आगम से भावावश्यक – जिसने आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का ज्ञान किया है और उपयोग कर के सहित है उस को आगम से भावावश्यक कहते हैं। नोआगम से भावावश्यक के तीन भेद होते हैं – १ लौकिक नोआगम से भावावश्यक २ कुप्रावचनिक नो आगम से भावावश्यक और ३ लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक।

लौकिक नोआगम से भावावश्यक-जो लोग पूर्वाह्न – प्रभात समय – उपयोग सहित भारत और अपराह्न-दुपहर पीछे–उपयोग सहित रामायण को बांचे तथा श्रवण करे उसको लौकिक नोआगम से भावावश्यक कहते हैं।

कुप्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक–जो ये पूर्वोक्त चरक चीरिक यावत् पाखंड मार्ग में चलने वाले यथावसर " इज्जंजलिहोमजपोन्दुरुक्कनमोक्कारमाइ–आइं भावावस्सयाइं करेंति से तं कुप्पावयणिअं भावावस्सयं " इ० यज्ञ विषय जलांजलि का देना अथवा संध्याऽर्चनसमय जलांजलि का देना, अथवा देवी के सन्मुख हाथ जोड़ना, हो० अग्निहवन का

करना, ज० मंत्रादि का जप करना, उन्हु० देवतादि के सन्मुख धूपभवत् गर्जितशब्द करना नमो० "नमो भगवते दिवसनाथाय" इत्यादि नमस्कार का करना; ये पूर्वोक्त कृत्य जो भाव से उपयोगसहित करे उस को कुप्राचनिक नोआगम से भावावश्यक कहते हैं, इति कुप्रावचनिक नोआगम से भावावश्यक।

लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक— "जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाये तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणो उभओकालं आवस्सयं करेंति, सेतं लोगुत्तरियं भावावस्सयं"। ज० जो ये स० शांत स्वभाव रखने वाले साधु, स० साध्वी सा० साधु के समीप जिनप्रणीत समाचारी को सुनने वाले श्रावक, सा० श्राविका, तच्चित्ते० उसी आवश्यक में सामान्य प्रकार से उपयोग सहित चित्त को रखने वाले, तम्मणे० उसी आवश्यक में विशेष प्रकार से उपयोग सहित मन को रखने वाले, तल्लेसे० उसी आवश्यक में शुभ परिणाम रूप लेश्या वाले, तद० तच्चित्तादिभावयुक्त उसी आवश्यक की विधिपूर्वक क्रिया करने के अध्यवसाय वाले, तत्तिव्व० उसी

आवश्यक में प्रारंभ काल से लेकर प्रतिक्षण चढ़ते २ प्रयत्नविशेष अध्यवसाय के रखने वाले, तदट्ठो० उसी आवश्यक के अर्थ के विषे उपयोग सहित अर्थात् तीव्रतर वैराग्य के रखने वाले, तदप्पि० उसी आवश्यक में सब इन्द्रियों (इन्द्रियों के व्यापार) को लगाने वाले, तब्भा० उसी आवश्यक के विषे अव्यवच्छिन्न उपयोग सहित अनुष्ठान से उत्कृष्ट भाव द्वारा परिणत ऐसे आवश्यक के परिणाम रखने वाले, अण्णत्थ० उसी आवश्यक के सिवाय अन्यत्र किसी भी स्थान पर मन वचन और काया के योगों को न करते हुए चित्त को एकाग्र रखने वाले, दोनों वक्त उपयोग सहित आवश्यक करें उसको लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक कहते हैं। इति लोकोत्तर नोआगम से भावावश्यक।

अथ आवश्यक के एकार्थिक नाम कहते हैं--

१ आवस्सयं- २ अवस्संकरणिज्जं ३ धुवनिग्गहो ४ विसोही य।

५ अज्झयण छक्कवग्गो, ६ नाओ ७ आराहणा ८ मग्गो ॥ १ ॥

समणेणं सावएणय, अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।
अतो अहोनिसस्सय, तम्हा आवस्सयं नाम ॥ २ ॥

आव० जो साधु आदिकों के अवश्य करने योग्य हो उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा जिस के द्वारा ज्ञानादिक गुण तथा मोक्ष समस्त प्रकार से वश (स्वाधीन) किया जावे उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा समस्त प्रकार से इंद्रिय कषाय आदि भाव शत्रुओं को वश करने वालों से जो किया जावे उसको आवश्यक कहते हैं, अथवा जो समग्र गुण-ग्रामों का स्थानभूत हो उसको आवासक (आवश्यक) कहते हैं, इत्यादि और भी दूसरे अर्थ अपनी बुद्धि से जान लेना चाहिये। अव० मोक्षार्थी पुरुषों के जो नियम से अनुष्ठान करने योग्य हो उसे अवश्यंकरणीय कहते हैं २। धुव० अनाद्यनंत कर्मों का तथा उस के फलभूत संसार का निग्रह हेतु होने के कारण उस को ध्रुवनिग्रह कहते हैं ३। वि० कर्मों से मलिन आत्मा को विशुद्धि करने का कारण होने से उस को, विशुद्धि कहते हैं ४। अज्झ० सामायिकादि छह अध्ययनों का समूह रूप होने से उस को अध्ययनषड्वर्ग कहते हैं॥ नाओ० अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का सच्चा उपाय होने से उस को न्याय कहते हैं, अथवा जीव और कर्मों के सम्बन्ध (अनादि कालका झगड़ा) को मिटाने वाला होनेके कारण इसको न्याय कहते हैं ६। आरा० मोक्ष की आराधना

का कारण होने से उस को आराधना कहते हैं ७। मग्गो० मोक्ष रूप नगर में पहुँचाने वाला होने से उस को मार्ग कहते हैं ८। साधु और साध्वी श्रावक और श्राविकाओं से रात और दिन की संधि में यह अवश्य किया जाता है, इसलिए इस को आवश्यक कहते हैं।

३ द्रव्यगुण-पर्याय-द्वार

द्रव्य—"गुणपर्यायवद्द्रव्यम्" इति (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३८) वचनात् जो गुणों के समूह और पर्याय से युक्त हो उसको द्रव्य कहते हैं।

गुण—"सहभाविनो गुणाः" इति वचनात्, द्रव्य के पूरे हिस्से में और उस की सब हालतों में रहे उसको गुण कहते हैं।

पर्याय— "गुणविकाराः पर्यायाः" इति वचनात् गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं, अथवा "क्रमवर्त्तिनः पर्यायाः" इति वचनात् जो क्रमसे बदलती रहे उस को पर्याय कहते हैं।

द्रव्य के दो भेद हैं- १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य। गुण के अनेक भेद हैं, परन्तु मुख्यतया जीव

के गुण ज्ञानादि और पुद्गल के गुण वर्णादि हैं।

पर्याय के दो भेद हैं— १ आत्मभावी पर्याय, जैसे जीव की ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्याय, २ दूसरी क्रमभावी पर्याय–जैसे जीव चार गति चौबीस दंडक, चौरासी लाख जीवयोनि में गमनागमन द्वारा अनेक प्रकार की पर्यायों को धारण करे।

अब प्रकारान्तर से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते हैं – द्रव्य तो छह प्रकार का है – १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ये तीन तो एक एक द्रव्य हैं। ४ जीवास्तिकाय, ५ पुद्गलास्तिकाय और ६ काल द्रव्य : ये तीन अनन्त द्रव्य हैं।

इन के गुण कहते हैं — (१) धर्मास्तिकाय के ४ गुण हैं — १ अरूपित्व २ अचेतनत्व ३ अक्रियत्व और ४ चौथा गतिसहायकत्व गुण है। (२) अधर्मास्तिकाय के भी ४ गुण हैं, जिन में तीन तो पूर्वोक्त और चौथा स्थितिसहायकता गुण है। (३) आकाशास्तिकाय के भी चार गुण हैं, जिन में तीन तो वे ही पूर्वोक्त और चौथा अवगाहनदानत्व गुण है। (४) जीव द्रव्य के भी चार गुण हैं – १ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र और ४ अनन्त वीर्य। (५) पुद्गल द्रव्य के भी चार गुण हैं – १ रूपित्व, २ अचे-

तनत्व, ३ सक्रियत्व और चौथा मिलन विखरन रूप पूरनंगलन गुण है। (६) कालद्रव्य के भी चार गुण हैं– १ अरूपित्व, २ अचेतनत्व, ३ अक्रियत्व और चौथा नया पुराना वर्त्तनालक्षण गुण है।

इन में प्रत्येक की पर्यायें चार चार होती हैं — १धर्मास्तिकाय की चार पर्यायें–१स्कन्ध, २देश, ३प्रदेश और ४अगुरुलघु। २अधर्मास्तिकाय और ३आकाशास्तिकाय की भी ये ही चार चार पर्यायें होतीं हैं। ४जीव द्रव्य की चार पर्यायें–१अव्याबाध, २अवगाह, ३ अमूर्त्त और ४ अगुरुलघु। ५पुद्गल द्रव्य की चार पर्यायें– १वर्ण, २गन्ध, ३रस, और ४स्पर्श अगुरुलघु सहित। ६ काल द्रव्य की चार पर्यायें –१अतीत, २अनागत, ३वर्त्तमान और ४अगुरुलघु।

फिर अन्य प्रकार से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते हैं– द्रव्य तो पूर्वोक्त छह प्रकार का है। गुण दो प्रकार का है- सामान्य और विशेष।

१– मुख्यपन से जीव की ये चार पर्यायें बतलाई हैं लेकिन और भी अनन्त पर्यायें होती हैं, क्योंकि भगवती. श. २ उ. १ खंधकजी के अधिकार में "अणंता णाणपज्जवा" इत्यादि अनन्त २ पर्यायें कहीं हैं। तथा प्रज्ञापना,सूत्र के ५ वें पर्याय पद में भी जीव के ज्ञानादि की अनन्त पर्यायें कथन की गई हैं।

सामान्य गुण दश प्रकार का होता है- १अस्तित्व, २वस्तुत्व, ३द्रव्यत्व, ४प्रमेयत्व, ५अगुरुलघु, ६प्रदेशत्व, ७चेतनत्व, ८अचेतनत्व, ९मूर्त्तत्व, और १०अमूर्त्तत्व। इन के लक्षण- १अस्ति (है) ऐसा जो भाव हो उस को अस्तित्व याने सद्रूपत्व कहते हैं। २सामान्य विशेषात्मक वस्तु के भाव को वस्तुत्व कहते हैं। ३द्रव्य के स्वभाव को अर्थात् अपने अपने प्रदेश के समूहों से अखण्डवृत्ति द्वारा स्वभाव विभाव पर्यायों को वर्त्तमान में प्राप्त होता है भविष्यत् में प्राप्त होगा और भूत काल में प्राप्त हुआ था ऐसा जो द्रव्य का स्वभाव उस को द्रव्यत्व कहते हैं। ४प्रमाण द्वारा जिसका स्वपर स्वरूप जाना जावे वह प्रमेय है, उस के भाव को प्रमेयत्व कहते हैं। ५सूक्ष्म, वाणी के अगोचर, प्रतिक्षण वर्त्तता रहे और आगम प्रमाण से माना जावे, ऐसा जो गुण है उस को अगुरुलघु कहते हैं। ६प्रदेश के भाव (अविभागी पुद्गल परमाणु से व्याप्त) को प्रदेशत्व कहते हैं। ७चेतन के भाव को चेतनत्व (चैतन्य) कहते हैं। ८अचेतन के भाव को अचेतनत्व (अचैतन्य) कहते हैं। ९ जो रूप रस गन्ध और स्पर्श से सहित है वह मूर्त्त है, उस के भाव [illegible] कहते हैं। १० जो रूप रस [illegible] वह

अमूर्त्त है, उस के भाव को अमूर्त्तत्व कहते हैं।

धर्मास्तिकायादि छह द्रव्यों में से एक एक द्रव्य में पूर्वोक्त इन दश सामान्य गुणों में के आठ आठ गुण पाये जाते हैं, जैसे–१जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७चेतनत्व, ८अमूर्त्तत्व) पाये जाते हैं। २ पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व और अमूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण(१अस्तित्व, २वस्तुत्व, ३द्रव्यत्व, ४प्रमेयत्व, ५अगुरुलघु, ६प्रदेशत्व, ७अचेतनत्व, ८मूर्त्तत्व,)पायेजाते हैं। ३-६ धर्म अधर्म आकाश और काल इन चार द्रव्यों में चेतनत्व और मूर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७अचेतनत्व, ८अमूर्त्तत्व) पाये जाते हैं। इस प्रकार दश गुणों में से दो दो गुण वर्ज कर शेष आठ आठ गुण प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं।

विशेष गुण सोलह प्रकार का होता है– १ज्ञान, २दर्शन, ३सुख, ४वीर्य, ५स्पर्श, ६रस, ७गन्ध, ८वर्ण, ९गतिहेतुत्व, १०स्थितिहेतुत्व, ११अवगाहनहेतुत्व, १२वर्त्तनाहेतुत्व, १३चेतनत्व, १४अचेतनत्व, १५मू-

त्तत्व, और १६अमूर्त्तत्व। इन का अर्थ इन्हीं शब्दों से ही स्पष्ट है इसलिए यहां विस्तार नहीं किया है। इन सोलह विशेष गुणों में अन्त के चार गुण स्वजाति की अपेक्षा से सामान्य और विजाति की अपेक्षा से विशेष हैं।

इन सोलह गुणों में से जीव और अजीव (पुद्गल) में छह छह गुण पाये जाते हैं, जैसे–१ जीव में–(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) सुख, (४) वीर्य, (५) चेतनत्व और (६) अमूर्त्तत्व। २ अजीव (पुद्गल) में–(१) स्पर्श, (२) रस, (३) गन्ध, (४) वर्ण, (५) मूर्त्तत्व और (६) अचेतनत्व। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य, इन चारों में तीन तीन गुण पाये जाते हैं वे इस प्रकार–हैं ३ धर्म द्रव्य में–गतिहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व। ४ अधर्मद्रव्य में-स्थितिहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व। ५ आकाश-द्रव्य में– अवगाहनदानत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व। ६ काल-द्रव्य में– वर्त्तनाहेतुत्व, अचेतनत्व और अमूर्त्तत्व।

अब पर्याय का स्वरूप कहते हैं—गुण के विकार को पर्याय कहते हैं। इस के दो भेद हैं– स्वभावपर्याय और विभाव[illegible] विकार को स्वभाव

पर्याय कहते हैं, वह बारह प्रकार की होती है– छह वृद्धि रूप और छह हानिरूप । प्रथम वृद्धिरूप के छह भेद दिखाते हैं–१ अनन्तभाग वृद्धि २असंख्यातभागवृद्धि, ३ संख्यातभागवृद्धि, ४संख्यातगुणवृद्धि, ५असंख्यातगुणवृद्धि, ६अनन्तगुणवृद्धि । अब हानिरूप के छह भेद दिखाते हैं-- १ अनन्तभागहानि, २ असंख्यात-भागहानि, ३ संख्यातभागहानि, ४ संख्यातगुणहानि, ५ असंख्यातगुणहानि, ६ अनन्तगुणहानि। यह स्वभाव पर्याय छहों द्रव्यों में पाई जाती है ।

विभावपर्याय चार प्रकार की होती है, वह जीव और पुद्गल दो ही द्रव्यों में पाई जाती है, शेष चार द्रव्यों में नहीं। जीव द्रव्य के आश्रय विभावपर्याय इस प्रकार है– १ विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय–नरनारकादि पर्याय, अथवा चौरासी लाख जीवयोनि पर्याय। २ विभाव-गुणव्यञ्जन-पर्याय– मत्यादि चार ज्ञान। ३ स्वभाव-द्रव्यव्यञ्जन पर्याय– जैसे चरमशरीर से किञ्चित् न्यून सिद्धपर्याय है । ४ स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय– अनन्तचतुष्टयस्वरूप। पुद्गल द्रव्य के आश्रय से विभावपर्याय इस प्रकार है– १ विभावद्रव्यव्यञ्जन पर्याय– द्व्यणुकादि स्कन्ध । २ विभावगुणव्यञ्जन

पर्याय- रस से रसान्तर और गन्ध से गन्धान्तर आदि। ३ स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय- अविभागी परमाणु- पुद्गल । ४ स्वभावगुणव्यञ्जन पर्याय- एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श।

४ द्रव्य- क्षेत्र- काल-भाव द्वार.

(द्रव्य.)

जगत् में जो पदार्थ अपनी पर्याय को प्राप्त होता रहे उसे द्रव्य कहते हैं, क्योंकि गुण और पर्याय से युक्त ही द्रव्य माना गया है। द्रव्य के धर्मास्तिकायादि छह भेद हैं।

(क्षेत्र—आकाश)

जो वस्तु जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहे (रोके) उस को क्षेत्र (स्थानविशेष) कहते हैं। इस के मुख्य दो भेद हैं- लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश के तीन भेद हैं- अधोलोक (नीचालोक), तिर्यग्लोक (तिरछालोक) और ऊर्ध्वलोक (ऊंचा लोक)। अधोलोक के सात भेद- १ रत्नप्रभा पृथिवी अधोलोक, २ शर्कराप्रभा पृथिवी अधोलोक, ३ वालुकाप्रभा पृथिवी अधोलोक, ४ पङ्कप्रभा पृथिवी अधोलोक, ५ धूमप्रभा-

पृथिवी अधोलोक, ६तम:प्रभा पृथिवी अधोलोक, और ७तमस्तम:प्रभा पृथिवी अधोलोक। तिर्यग्लोक के जम्बू द्वीप और लवणसमुद्र से यावत् स्वयम्भूरमण द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र तक जितने असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, उतने ही तिर्यग्लोक के भेद हैं। ऊर्ध्वलोक के पन्द्रह भेद--१सुधर्म देवलोक से लेकर यावत् १२ वाँ अच्युत देवलोक, १३ वाँ नवग्रैवेयक, १४ वाँ पांच अनुत्तर विमान और १५वाँ ईषत्प्राग्भारा पृथिवी, ये पन्द्रह भेद हुए।

(काल.)

जिस के द्वारा वस्तुओं की नूतन वा पुरातन पर्याय उत्पन्न होती हो उसी का नाम काल है, इस के अनेक भेद हैं -- १ समय, २ आवलिका, ३ उच्छ्वासनिःश्वास, ४ प्राण (एकश्वासोच्छ्वास), ५ स्तोक (सात-प्राण), ६ लव (सात स्तोक), ७ मुहूर्त (७७ लव, अथवा ५३९ स्तोक, अथवा ३७७३ श्वासोच्छ्वास, अथवा १६७७७२१६ एक करोड़ सड़सठ लाख सतहत्तर हजार दो सौ सोलह आवलिका, अथवा दो घड़ी, अथवा ४८ मिनिट), ८ अहोरात्र (३१ मुहूर्त अथवा २४ घण्टे), ९ पक्ष (पन्द्रह अहोरात्र, १० मास (दो

पक्ष), ११ ऋतु (दो मास), १२ अयन (तीन ऋतु), १३ सँवत्सर (दो अयन), १४ युग (पांच सँवत्सर), १५ सौ वर्ष, १६ हजार वर्ष, १७ लाख वर्ष, १८ पूर्वाङ्ग (८४लाख वर्ष), १९ पूर्व (७०५६०००००००००० सत्तर लाख करोड़ वर्ष और छप्पन हजार करोड़ वर्ष), इस प्रकार प्रत्येक को चौरासी ८४ लाख से गुणा कर ने पर उत्तरोत्तर संख्या होती जाती है, जैसे – एक पूर्व को ८४ लाख से गुणा करने पर एक २० त्रुटिताङ्ग, और इस को ८४ लाख से गुणा करने से २१ त्रुटित होता है इसी तरह २२ अडडाङ्ग, २३ अडड, २४ अववाङ्ग, २५ अवव, २६ हूहूयांग, २७ हूहूय, २८ उत्पलाङ्ग, २९ उत्पल, ३० पद्माङ्ग, ३१ पद्म, ३२ नलिनाङ्ग, ३३ नलिन, ३४ अक्षनिपुराङ्ग, ३५ अक्षनिपुर, ३६ अयुताङ्ग, ३७ अयुत, ३८ नयुताङ्ग, ३९ नयुत, ४० प्रयुताङ्ग, ४१ प्रयुत, ४२ चूलिकाङ्ग, ४३ चूलिका, ४४ शीर्षप्रहेलिकाङ्ग, ४५ शीर्षप्रहेलिका (७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६ ९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ ००००००००००
०००००००००००००००००००००० ००००००००००
०००००००००००००००००००००० ००००००००००
०००००००००००००००००००००० ००००००००००

००००००००००००००००००००००००००००००००
०००) होती है। तथा ४६ पल्योपम, ४७ सागरोपम, ४८ उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, ४९ कालचक्र, ५० पुद्गलपरावर्त्तन, ५१ अतीतकाल, ५२ अनागत काल और ५३ सर्वकाल, इत्यादि अनेक भेद होते हैं।

(भाव.)

वस्तु के स्वभाव गुण और पर्याय को भाव कहते हैं, इसके छह भेद हैं– १ औदयिक, २ औपशमिक, ३ क्षायिक ४ क्षायोपशमिक, ५ पारिणामिक और ६ सान्निपातिक। इन का विस्तार अधिक है; इसलिए ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहां पर नहीं लिखते हैं, जिन विशेष जिज्ञासुओं को जानना हो, वे श्रीअनुयोगद्वार सूत्र छह नाम के अधिकार में से जान लेवें।

५ द्रव्य- भाव- द्वार.

(द्रव्य.)

जो प्राणी कार्य करता है परन्तु उसमें उस की चित्तवृत्ति लगी हुई न रहे अर्थात् शून्यउपयोग रहे, वस्तु के स्वरूप को जाने विना ही कार्य करता रहे

उस के लाभालाभ का ख़याल नहीं करे उसका वह कार्य द्रव्य कहलाता है।

(भाव.)

जिसने जो कार्य प्रारम्भ किया है, वह उस कार्य के द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को जाने, होना न होना विचारे, कार्य की साधकता और बाधकता को जाने, उपयोग को मुख्य रखकर चले, और कार्य के फल को जाने, उस के कार्य को भाव कहते हैं।

(भमर.)

अब इन द्रव्य और भाव पर भौंरे का दृष्टान्त कहते हैं, जैसे किसी भौंरे ने काष्ट को कोरा और उसकी कोरनी में "क" अक्षर कोरा गया किन्तु भौंरा नहीं जानता है कि मैने "क" अक्षर कोरा है, उस "क" अक्षर का कर्त्ता द्रव्य से वह भौंरा है इसलिए उसके वह द्रव्य "क" कहलायगा और कोई पण्डित आकर उस "क" अक्षर की पर्याय को पहचाने और उसे "क" ऐसा कहे उस पण्डित के वह भाव "क" कहलायगा।

६ कारण–कार्य द्वार.

(कारण .)

जिस के द्वारा कार्य नजदीक हो उसे कारण कहते हैं। अर्थात् कार्य के मूल को कारण कहते हैं।

(कार्य .)

जो कुछ करना प्रारम्भ किया उस के सम्पूर्ण होने से वह कार्य कहलाता है।

इन कारण कार्य पर दृष्टान्त कहते हैं, जैसे किसी पुरुप को रत्नाकर द्वीप जाना है और रास्ते में समुद्र आगया उस को तैरने के लिए जहाज में बैठना वह तो कारण है और रत्नाकर द्वीप पहुंचना वह कार्य है।

७ निश्चय–व्यवहार द्वार.

(निश्चय .)

वस्तु का निज स्वभाव – जो तीनों काल एक अवस्था में रहे – उस को निश्चय कहते हैं।

(व्यवहार .)

वस्तु की जो बाह्य प्रवृत्ति याने अवस्था का बदलना

तथा भेदाभेद द्वारा विवेचन करना, उस को व्यवहार कहते हैं।

इन दोनों पर दृष्टान्त कहते हैं, जैसे ढीला गुड़ व्यवहार से मीठा है, परन्तु निश्चय से उस में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श, ये बीस बोल पाये जाते हैं। इसी प्रकार कोयल व्यवहार से काली है और निश्चय से उस में पूर्वोक्त बीसों बोल पाये जाते हैं। ऐसेही तोता व्यवहार से हरा है, मजीठ लाल है, हलदी पीली है, शङ्ख सफेद है, कोष्ठ सुगन्ध मय है, मृतक शरीर दुर्गन्ध मय है, नीम तीखी है, सांठ कड़ुवा है, कबिट्ठ कसायला है, इमली खट्टी है, शक्कर मीठी है, वज्र कर्कश है, मक्खन मृदु (सुंहाला) है, लोहा भारी है, उल्लू की पाँख हलकी है, हिम शीत है, अग्नि उष्ण है, तेल स्निग्ध है, और भस्म रूक्ष है परन्तु निश्चय से इन सब में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श, ऐसे बीसों बोल पाये जाते हैं। निश्चय से जीव अमर है और व्यवहार से मरता है। निश्चय से पानी पड़ता है और व्यवहार से परनाल मोरी पड़ती है। निश्चय से गाँव के प्रति मनुष्य गया और व्यवहार से गाँव आया, इत्यादि।

८ उपादान-निमित्त कारण द्वार.

(उपादान कारण)

जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमे उस को उपादान कारण कहते हैं, जैसे घट की उत्पत्ति में मिट्टी। तथा अनादि काल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आरहा है उस में जो अनन्तर पूर्वक्षणवर्त्ती पर्याय है वह उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्त्ती जो पर्याय है वह कार्य है।

(निमित्त कारण)

जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप न परिणमे किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो उस को निमित्त कारण कहते हैं, जैसे घट की उत्पत्ति में कुम्भकार दण्ड चक्र आदि।

उपादान कारण शिष्य का और निमित्त कारण गुरु महाराज का जिस से ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस पर चौभङ्गी कहते हैं-

१ निमित्त अशुद्ध और उपादान भी अशुद्ध - जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य भी अज्ञानी। २ निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध- जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य

ज्ञानी। ३ निमित्त शुद्ध और उपादान अशुद्ध – जैसे गुरु ज्ञानी और शिष्य अज्ञानी। ४ उपादान शुद्ध और निमित्त भी शुद्ध – जैसे गुरु ज्ञानी और शिष्य भी ज्ञानी। इस चौभङ्गी में पहला भंग सर्वथा अशुद्ध और चरम (अन्तका) भंग सर्वथा शुद्ध है। बीच के दो भङ्ग सामान्य हैं।

अथवा जैसे उपादान घास का और निमित्त गाय का जिस से दूध की प्राप्ति हुई। उपादान दूध का और निमित्त जावन (छाछ मठा आदि) देने का जिस से दही की प्राप्ति हुई। उपादान दही का और निमित्त बिलोने का जिस से मक्खन की प्राप्ति हुई। उपादान मक्खन का और निमित्त अग्नि का जिस से घी की प्राप्ति हुई।

९ प्रमाण द्वार.

सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, इस के चार भेद हैं– १प्रत्यक्ष, २अनुमान, ३उपमा और आगम।

१ प्रमाण के दूसरी जगह दो भेद कहे हैं– प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष अर्थात् दूसरे की सहायता से पदार्थ को अस्पष्ट जानना। इस (परोक्ष) के तीन भेद हैं– १ अनुमान, २ उपमा और आगम। इस प्रकार चार भेद कहते हैं।

१ प्रत्यक्ष प्रमाण

जिस के द्वारा पदार्थ स्पष्ट जाना जावे उस को प्रत्यक्ष कहते हैं। इस के दो भेद हैं- इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पांच भेद हैं- १श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, २चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष, ३घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, ४रसनेन्द्रिय प्रत्यक्ष, और स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष। नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं- १अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, २मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष और ३केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

२ अनुमान प्रमाण

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। इस के तीन भेद हैं- १पूर्ववत, २शेषवत् और ३दृष्टसाधर्म्यवत्।

पूर्ववत्- पूर्वोपलब्ध विशिष्ट चिह्न द्वारा जो पदार्थ का ज्ञान किया जावे, उस को पूर्ववत् कहते हैं, जैसे किसी माता का पुत्र बाल्यावस्था में विदेश चला गया और वह जवान होकर पीछा अपने घर आया तो उस की माता पूर्वदृष्ट क्षत व्रण लाञ्छन मस और तिल आदि चिह्नों द्वारा अपने पुत्र को पहचाने।

(१) शेषवत्– जो पुरुषार्थ के उपयोगी और जानने की चाह वाले अर्थ (प्रयोजन) से अन्य, जो उस से सहित है उस को शेषवत् कहते हैं, इस के पांच भेद हैं– १कज्जेणं (कार्येण), २कारणेणं (कारणेन), ३गुणेणं (गुणेन), ४अवयवेणं (अवयवेन), ५आसएणं (आश्रयेण)।

(कज्जेणं)– जो कार्य द्वारा कारण का अनुमान किया जावे, जैसे शब्द से शङ्ख, केकारव (मोर की बोली) से मयूर, हेषित (हिनहिनाहट) शब्द से अश्व, गुलगुलाट शब्द से हाथी और घणघणाट शब्द से रथ इत्यादि का अनुमान किया जावे।

(कारणेणं)– जो कारण द्वारा कार्य का अनुमान किया जावे, जैसे तन्तुओं द्वारा कपड़े का अनुमान किया जावे क्योंकि तन्तु कपड़े के कारण हैं, किन्तु कपड़ा तन्तुओं का कारण नहीं। इसी प्रकार वीरण (सरकण्डा) कट (टोकरे) का कारण है, परन्तु कट वीरण का कारण नहीं तथा घड़े का कारण मृत्पिण्ड (मिट्टी का पिंड) है किन्तु मृत्पिण्ड का कारण घड़ा नहीं। रोटी का कारण आटा है, किन्तु आटे का कारण रोटी नहीं, इत्यादि।

(गुणेणं)–जो गुणों द्वारा गुणी (वस्तु का) अनुमान किया जावे, जैसे–५६१०६१९ वांनी सोना निकष (कसोटी) में आया हुआ वर्ण द्वारा, पुष्प गन्ध द्वारा, लवण (नमक) रस द्वारा, मदिरा आस्वाद द्वारा, वस्त्र स्पर्श द्वारा, इत्यादि।

(अवयवेणं)– जो अवयवों द्वारा अवयवी (वस्तु) का अनुमान किया जावे, जैसे भैंसा सींग द्वारा, कुक्कुट शिखा द्वारा, हस्ती दन्तमुशल द्वारा, सूअर दंष्ट्रा (डाढ़) द्वारा, मयूर पिच्छ (पँख) द्वारा, अश्व खुर द्वारा, वाघ नख द्वारा, चमरी गाय चामर द्वारा, वानरलाङ्गूल (पूँछ) द्वारा, मनुष्य द्विपद(दोपैर)द्वारा, गाय चौपद द्वारा, कान-खजूरा और गजाई बहुपद द्वारा, सिंह केशरों द्वारा, वृषभ ककुद (स्कन्ध) द्वारा, स्त्री वलय द्वारा, सुभट शस्त्र द्वारा, महिला साड़ी कञ्चुकी द्वारा, द्रोणपाक (चाँवल आदि का कड़ाह) एक सित्थ (एक दाना) द्वारा, कवि गाथा द्वारा, इत्यादि जाना जावे।

(आसएणं) जो आश्रय द्वारा अनुमान किया जावे, जैसे अग्नि धूम द्वारा, सरोवर बगुलों की पंक्ति

---

१ यह सोने की जाति का नाम है।

द्वारा, वृष्टि बादलों के विकार द्वारा, कुलीन पुत्र शील आचार द्वारा, इत्यादि जाना जावे।

(३) दृष्टसाधर्म्यवत्– पूर्वोपलब्ध अर्थ के साथ जो साधर्म्य (तुल्यपना) हो उस को दृष्टसाधर्म्य कहते हैं, और वह गमक (जनानेहार) पने से विद्यमान है जिस में, उस को दृष्टसाधर्म्यवत् कहते हैं, इस के दो भेद हैं– सामान्य दृष्ट और विशेष दृष्ट।

सामान्य पने देखे हुए अर्थ के योग से सामान्य दृष्ट कहा जाता है, जैसे सामान्य पने (आकृतिद्वारा) तो जैसा एक पुरुष है वैसे ही बहुत पुरुष हैं और जैसे बहुत पुरुष हैं वैसा ही एक पुरुष है; तथा जैसा एक सोनैया है वैसे ही बहुत सोनैये हैं, और जैसे बहुत सोनैये हैं वैसा ही एक सोनैया है।

विशेष पने देखे हुए अर्थ के योग से विशेषदृष्ट कहा जाता है, जैसे किसी पुरुष ने कहीं भी किसी एक पुरुष को पहले देखा था और उसी पुरुष को समयान्तर में बहुत पुरुषों की समाज के मध्य बैठा हुआ देखकर वह अनुमान करता है कि मैंने इस पुरुष को पहले कहीं देखा था वही यह पुरुष है। इसी प्रकार पूर्वदृष्ट एक सोनैये को बहुत से सोनैयों के बीच में

पड़ा हुआ देख अनुमान करे कि यह सोनैया वही है जिसे मैंने पहले देखा था।

इसी विशेष दृष्ट के संक्षेप से तीन भेद कहते हैं— अतीत काल ग्रहण, वर्त्तमान काल ग्रहण और अनागत काल ग्रहण।

अतीत काल विषय जो ग्राह्य वस्तु का परिच्छेद(ज्ञान) उसको अतीतकाल ग्रहण कहते हैं, जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रास्ते में तृण सहित भूमि धान्य के बहुत समूह (ढेर) निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी बावड़ी तालाब आदि भरे हुए, और बाग बगीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में सुवृष्टि हुई है।

जो वर्त्तमानकालविषयक ग्रहण हो उसको वर्त्तमान काल ग्रहण कहते हैं, जैसे गोचरी जाते हुए किसी मुनिराज ने अत्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देते हुए बहुत दातारों को देखकर अनुमान किया कि यहां अभी वर्त्तमान काल में सुभिक्ष है।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उस को अनागत काल ग्रहण कहते हैं। जैसे आकाश का निर्मल पना, पर्वतों की श्यामता, बिजली सहित

मेघ, बादलों की भरी हुई गम्भीर गर्जना, वृष्टि के अनुकूल प्रशस्त हवा, सन्ध्या का तेजसहित स्निग्ध लाल पना और वारुण मण्डल माहेन्द्र मण्डल आदि में होने वाले वृष्टि के उत्पादक प्रशस्त चिह्नों को देख कर किसी ने अनुमान किया कि इस स्थान पर अनागत (भविष्यत्) काल में अच्छी वृष्टि होगी।

इसी प्रकार पूर्वोक्त चिह्नों से विपरीत चिह्नों को देखने से भी तीनों काल का अनुमान किया जाता है, यथा—

अतीत काल ग्रहण— जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रास्ते में तृण रहित भूमि, धान्य के समूह नहीं निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी बावड़ी तालाब आदि सूखे हुए, और बाग बगीचे कुम्हलाये हुए देख कर अनुमान किया कि यहां अतीत काल में वृष्टि नहीं हुई है।

---

१ वारुण मण्डल के ७ नक्षत्र- १ आर्द्रा. २ आश्लेषा ३ उत्तराभाद्रपद. ४ रेवती. ५ शतभिषग्. ६ पूर्वाषाढ़ा ७ मूल।

२ माहेन्द्र मण्डल के ७ नक्षत्र— १ ज्येष्ठा २ अनुराधा ३ रोहिणी ४ धनिष्ठा ५ श्रवण ६ अभिजित् ७ उत्तराषाढ़ा।

वर्त्तमान काल ग्रहण– जैसे कहीं गोचरी गये हुए किसी मुनिराज ने वहां दातार थोड़े, भाव भक्ति नहीं, भात पानी का न मिलना, इत्यादि देख कर अनुमान किया कि यहां पर दुष्काल है।

अनागत काल ग्रहण– जैसे दिशा का धुँधलापन, तेजरहितरुक्ष सन्ध्या, वृष्टि के प्रतिकूल नैऋत कोण की अप्रशस्त हवा और अग्निमण्डल वायुमण्डल आदि में होने वाले कुचिह्न[१] इत्यादि देखकर किसी ने अनुमान किया कि यहां अनागत काल में वृष्टि यथायोग्य नहीं होगी।

३ उपमा प्रमाण–

जिस सदृशता से उपमेय (पदार्थ) का ज्ञान हो उस को उपमा प्रमाण कहते हैं। इस के दो भेद हैं– साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत।

साधर्म्योपनीत–साधर्म्य (समानधर्मता) से उपनय है जिस में उस को साधर्म्योपनीत कहते हैं।

१ अग्निमण्डल के ७ नक्षत्र– १ कृत्तिका, २ भरणी, ३ पुष्य, ४ विशाखा, ५ पूर्वाफाल्गुनी ६ पूर्वाभाद्रपद ७ मघा।

२ वायुमण्डल के ७ नक्षत्र– १ मृगशिर २पुनर्वसु, ३अश्विनी ४ हस्त ५ चित्रा ६स्वाती ७ उत्तराफाल्गुनी।

इस के तीन भेद हैं– किञ्चित्साधर्म्योपनीत, प्रायःसाधर्म्योपनीत और सर्वसाधर्म्योपनीत।

किञ्चित्साधर्म्योपनीत– जिस में थोड़े अंश का साधर्म्य हो, जैसे– जैसा मेरु है वैसा सरसों है और जैसा सरसों है वैसा ही मेरु है, अर्थात् इन दोनों में गोलपन का साधर्म्य है। तथा जैसा समुद्र है वैसा ही गोष्पद (पानीयुक्त गोखुरप्रमाण क्षेत्र) है और जैसा गोष्पद है वैसा ही समुद्र है, अर्थात् इन दोनों में जलपूर्णत्व का साधर्म्य है। तथा जैसा सूर्य है वैसा ही खद्योत (आगिया) है और जैसा खद्योत है वैसा ही सूर्य है, अर्थात् इन दोनों में प्रकाशपने का साधर्म्य है। तथा जैसा चन्द्र है वैसा ही कुमुद (चन्द्रविकाशी कमल) है और जैसा कुमुद है वैसा ही चन्द्र है, अर्थात् इन दोनों में आह्लादकत्व का साधर्म्य है।

प्रायःसाधर्म्योपनीत– जिस में प्रायः बहुत से अंशों का साधर्म्य हो, जैसे– जैसी गौ है वैसा ही गवय (रोझ) है और जैसा गवय है वैसी ही गौ है अर्थात् इन दोनों में खुर ककुद (स्कन्ध) आकृति और पूंछ आदि बहुत अंशों का साधर्म्य है, परन्तु विशेष यह है कि गौ के कम्बल होता है, जो गले में

लंबा सा चर्म लटकता रहता है और गवय का गला गोल होता है।

सर्वसाधर्म्योपनीत– जिस में सर्वथा साधर्म्य हो। ऐसी सर्वसाधर्म्योपनीत वस्तु जगत् में कोई भी नहीं है, तथापि भव्य जीवों को समझाने के लिए शास्त्रकार सर्वसाधर्म्य दिखाते हैं– जैसे तीर्थङ्कर तीर्थङ्कर जैसे अर्थात् सर्वोत्तम तीर्थ प्रवर्त्तनादि कार्य तीर्थङ्कर ही करते हैं। तथा चक्रवर्त्ती चक्रवर्त्ती जैसे, बलदेव बलदेव जैसे, वासुदेव वासुदेव जैसे और साधु साधु जैसे।

वैधर्म्योपनीत–

वैधर्म्य से उपनय है जिस में उसको वैधर्म्योपनीत कहते हैं। इस के भी तीन भेद हैं – किञ्चिद्वैधर्म्योपनीत, प्रायोवैधर्म्योपनीत और सर्ववैधर्म्योपनीत।

किञ्चिद्वैधर्म्योपनीत– जिस में किञ्चिन्मात्र

---

१ यहां साधर्म्य दृष्टान्त अच्छी वस्तु की अपेक्षा से कहा गया है। वास्तव में तो जहां साधन की सत्ता द्वारा साध्य की सत्ता बतायी जावे वही साधर्म्य गिना जाता है, जैसे पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होने से, जो धूम वाला होता है वह अग्निवाला होता है, जैसे रसोई घर। यहां रसोईघर का दृष्टान्त साधर्म्योपनीत है।

इस को अछती पल्योपम सागरोपम की उपमा देना।

३अछती वस्तु को छती उपमा-- जैसे वृक्ष के जीर्ण पत्र को गिरते हुए देख कर किशलय (कोंपल) का हँसना, यथा—

दोहे.

पान झड़न्ता देख कर, हँसी कोंपलियाँ।
मोय वीती तोय वीतसी, धीरी बापड़ियाँ ॥१॥
पान झड़न्तो इम कहे, सुन तरवर! वनराय!।
अब के बिछड़े कब मिलें? दूर पड़ेंगे जाय ॥२॥
तब तरवर उत्तर दिया, सुनो पत्र! इक बात।
इस घर याही रीत है, इक आवत इक जात ॥३॥
नहीं पत्र उठ बोलिया, नहीं तरु उत्तर दिराय।
वीर बखानी ओपमा, अनुयोग द्वार के माय ॥४॥

४अछती वस्तु को अछती उपमा– जैसे गधे के सींग ससा (शशले) के सींग जैसे हैं और ससा के सींग गधे के सींग जैसे हैं।

४ आगम प्रमाण–

जिस के द्वारा जीवादि पदार्थ समस्त प्रकार जाने जावें, उस को आगम प्रमाण कहते हैं। इस के दो भेद हैं– लौकिक आगम और लोकोत्तर आगम।

लौकिक आगम— जो ये प्रत्यक्ष अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों के स्वच्छन्द बुद्धि और मति से कल्पित (बनाये हुए) हैं, वे इस प्रकार हैं— १भारत, २रामायण, ३भीमासुरुक्ख, ४कौटिल्य (शास्त्र), ५शकट भद्रिका, ६खोड (घोटक) मुख, ७कार्पासिक, ८नागसूक्ष्म, ९कनकसप्तति, १०वैशेषिक, ११ बुद्धवचन, १२त्रैराशिक, १३ कापिलिक, १४लोकायत, १५षष्ठितन्त्र, १६ माठर, १७ पुराण, १८व्याकरण, १९ भागवत, २० पातञ्जल, २१ पुष्पदैवत, २२लेख, २३गणित, २४शकुनिरुत, २५नाटक अथवा बहत्तर कलाएं, और २६ चारों वेद अङ्ग उपाङ्ग सहित।

लोकोत्तर आगम— जो ये केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारण करने वाले, तीन काल के ज्ञाता, तीनों लोक द्वारा वन्दित महित और पूजित, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अरिहन्त भगवान द्वारा प्रणीत (रचे हुए) आचार्य की पेटी समान जो द्वादशाङ्ग (बारह अङ्ग)। वे इस प्रकार हैं— १आचाराङ्ग, २सूत्रकृताङ्ग, ३स्थानाङ्ग, ४समवायाङ्ग, ५भगवत्यङ्ग(विवाहपन्नत्ती), ६ज्ञाताधर्मकथाङ्ग,७उपासकदशाङ्ग, ८अन्तकृद्दशाङ्ग, ९अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, १०प्रश्नव्याकरणदशाङ्ग, ११विपाकश्रुताङ्ग और १२ दृष्टिवाद।

इस लोकोत्तर आगम के तीन भेद भी होते हैं, वे इस प्रकार हैं— १सूत्रागम, २अर्थागम और ३तदुभयागम। सूत्रागम— "सूत्रयति वेष्टयति अल्पाक्षराणि बह्वर्थानीति सूत्रम्।" अर्थ— जिस के द्वारा बहुत अर्थ थोड़े अक्षरों में वेढ़ा (वींटा) जावे उस को सूत्र कहते हैं। अथवा

> "सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च।
> सुत्तं केवलिरइयं,अभिन्नदसपुव्विरइयं च॥ १॥"

अर्थ— गणधर भगवान के रचे हुए, प्रत्येक बुद्ध मुनिराज के रचे हुए, केवली भगवान के रचे हुए और चौदहपूर्वी से लेकर यावत् संपूर्ण दशपूर्वी के रचे हुए को सूत्र कहते हैं। ऐसे सूत्र रूप आगम को सूत्रागम कहते हैं। २अर्थागम— पूर्वोक्त सूत्र के अर्थरूप आगम को अर्थागम कहते हैं। ३तदुभयागम— पूर्वोक्त सूत्र और उसका अर्थ, इन दोनों रूप आगम को तदुभयागम कहते हैं।

इसी लोकोत्तर आगम के दूसरी तरह से भी तीन भेद होते हैं, वे इसप्रकार हैं— १अत्तागम (आत्मागम) २अणंतरागम (अनन्तरागम) और ३परम्परागम। तीर्थङ्करों के अर्थरूप आगम आत्मागम है और

गणधरों के सूत्ररूप आगम तो आत्मागम हैं और अर्थरूप आगम अनन्तरागम हैं। तथा गणधरों के शिष्यों के सूत्ररूप आगम अनन्तरागम हैं और अर्थरूप आगम परम्परागम हैं। इस के बाद इन के शिष्य प्रशिष्यों के सूत्ररूप आगम और अर्थरूप आगम ये दोनों ही परम्परागम हैं किन्तु आत्मागम और अनन्तरागम नहीं हैं।

१० गुणगुणी द्वार.

ज्ञानादि को गुण कहते हैं, उन ज्ञानादि गुणों को धारण करने वाले को गुणी कहते हैं।

११ सामान्य विशेष द्वार.

जो संक्षेप से वस्तु का वर्णन किया जावे उस को सामान्य कहते हैं और जिस के द्वारा वस्तु का भिन्न भिन्न कर के विस्तार किया जावे उस को विशेष कहते हैं। इस सामान्य विशेष को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं, जैसे- (१) सामान्य से द्रव्य और विशेष से द्रव्य के दो भेद होते हैं- १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य।

(२) सामान्य से जीव द्रव्य और विशेष से दो भेद-१संसारी और २सिद्ध । (३) सामान्य से सिद्ध और विशेष से दो प्रकार- १अनन्तर सिद्ध और २परम्पर सिद्ध । (४) सामान्य से अनन्तर सिद्ध और विशेष से पन्द्रह भेद- १ तीर्थ सिद्ध, २ अतीर्थ सिद्ध, ३ तीर्थंकर सिद्ध, ४ अतीर्थंकर सिद्ध, ५ स्वयम्बुद्ध सिद्ध, ६ प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, ७बुद्धबोधित सिद्ध, ८ स्त्रीलिङ्ग सिद्ध, ९ पुरुषलिङ्ग सिद्ध, १० नपुंसकलिङ्ग सिद्ध, ११ स्वलिङ्ग सिद्ध, १२ अन्यलिङ्ग सिद्ध, १३ गृहिलिङ्ग सिद्ध, १४ एक सिद्ध और १५ अनेक सिद्ध । (५) सामान्य से परम्पर सिद्ध और विशेष से अनेक भेद-१ अप्रथम समय सिद्ध, २ द्विसमय सिद्ध, ३ त्रिसमय सिद्ध, ४।५।६।७।८।९।१० समय सिद्ध यावत् ११ संख्यात समय सिद्ध, १२असंख्यात समय सिद्ध और १३ अनन्त समय सिद्ध ।

(६) सामान्य से संसारी जीव और विशेष से चार प्रकार- १ नारक, २ तिर्यञ्च, ३ मनुष्य और ४देव। (७) सामान्य से नारक और विशेष से सात प्रकार- १ रत्नप्रभा नारक, २शर्कराप्रभा नारक, ३ वालुकाप्रभा नारक, ४ पङ्कप्रभा नारक, ५ धूमप्रभा नारक,

६ तमःप्रभा नारक और ७ तमस्तमाप्रभा नारक। (८) सामान्य से रत्नप्रभा नारक और विशेष से दो प्रकार– पर्याप्त नारक और अपर्याप्त नारक। इसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त' इन दो दो भेदों से शेष छहों (१४) पृथिवियों के नारकों के भेद जान लेना चाहिये।

(१५) सामान्य से तिर्यञ्च और विशेष से पांच प्रकार– १ एकेन्द्रि, २ द्वीन्द्रिय, ३ त्रीन्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय और ५ पञ्चेन्द्रिय। (१६) सामान्य से एकेंन्द्रिय और विशेष से पांच प्रकार– १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय और ५ वनस्पति काय। (१७) सामान्य से पृथिवीकाय और विशेष से दो प्रकार– १ सूक्ष्मपृ० और २ बादरपृ० (१८) सामान्य से सूक्ष्म पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार– १ पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय और २ अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय। (१९) सामान्य से बादर पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार– १ पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय और २ अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय। इसी प्रकार (२२) अप्काय, (२५) तेजस्काय, (२८) वायुकाय और (३१) वनस्पतिकाय के भेद जान लेवें।

३२ सामान्य से द्वीन्द्रिय और विशेष से दो

प्रकार हैं— १ पर्याप्त त्रीन्द्रिय और २ अपर्याप्त त्रीन्द्रिय। इसी प्रकार (३३) त्रीन्द्रिय, (३४) चतुरिन्द्रिय और (३५) पञ्चेन्द्रिय आदि के सामान्य विशेष भेद जान लेवें।

१२ ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञानी द्वार·

ज्ञेय— जानने योग्य पदार्थ (घटपटादि वस्तु) को ज्ञेय कहते हैं। ज्ञान— जो संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय, इन तीनों दोषों से रहित और १ कारण, २ स्वरूप तथा ३ भेदाभेद, इन तीनों से सहित पदार्थ की सम्यक् प्रतीति हो उसको ज्ञान कहते हैं। ज्ञानी – जो इसी ज्ञान द्वारा पदार्थ को जानने वाला चेतन है उस को ज्ञानी कहते हैं।

अब ध्येय ध्यान ध्यानी पर त्रिभङ्गी कहते हैं— ध्येय— ध्यान करने योग्य पदार्थ को ध्येय कहते हैं। ध्यान— चित्त की एकाग्रता- जो अन्तर्मुहूर्त मात्र किसी ध्येय पदार्थ पर लगी रहती है— उस को ध्यान कहते हैं। ध्यानी— किसी पदार्थ का ध्यान करने वाले चेतन को ध्यानी कहते हैं।

१३ उत्पाद- व्यय ध्रुव-द्वार.

वस्तु में नई पर्याय के उत्पन्न होने को उत्पाद, पूर्व पर्याय के नष्ट होने को व्यय और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वस्तु के निरन्तर रूप से रहने को ध्रुव कहते हैं।

१४ आधाराधेय द्वार.

जिस पर वस्तु ठहरे उसको आधार कहते हैं, जैसे आकाश। ठहरने योग्य वस्तु को आधेय कहते हैं, जैसे पांच द्रव्य-- १ धर्म २ अधर्म ३ जीव ४ पुद्गल और ५ काल। इन आधाराधेय पर आठ प्रकार की लोकस्थिति को दिखाते हैं--

जैसे सब द्रव्यों का आधार आकाश है और आकाश पर वायु१, वायु पर उदधि२, उदधि पर पृथिवी३, पृथिवी पर त्रसस्थावर प्राणी४, अजीव जीवों के आश्रित ५, जीव कर्मों के आश्रित ६, अजीव जीवों से संगृहीत ७ और जीव कर्मों से संगृहीत।

१५ आविर्भाव-तिरोभाव द्वार

कार्य का नजदीक में प्रकट होना उस को आविर्भाव और दूर में प्रकट होना उस को तिरोभाव कहते हैं। इस पर दृष्टान्त कहते हैं— जैसे भव्य जीव में मोक्ष का तिरोभाव (दूरपना) है और सम्यग्दृष्टि में मोक्ष का आविर्भाव (नजदीकपना) है। सम्यग्दृष्टि में मोक्ष का तिरोभाव और साधुपन में मोक्ष का आविर्भाव है। साधुपन में मोक्ष का तिरोभाव और क्षपकश्रेणि में मोक्ष का आविर्भाव है। क्षपकश्रेणि में मोक्ष का तिरोभाव और सयोगी केवली में मोक्ष का आविर्भाव है। सयोगी केवली में मोक्ष का तिरोभाव और अयोगी केवली में मोक्ष का आविर्भाव है। अथवा तृण में घृत का तिरोभाव और गाय के स्तनों में घृत का आविर्भाव है। गाय के स्तनों में घृत का तिरोभाव और दूध में घृत का आविर्भाव है। दूध में घृत का तिरोभाव और दही में घृत का आविर्भाव है। दही में घृत का तिरोभाव और मक्खन में घृत का आविर्भाव है॥

१६ मुख्यता— गोणता द्वार.

अग्रेसर (आगेवानी) पने को मुख्यता कहते हैं। और जो अग्रेसर के पेटे में हो उस को गोणता कहते हैं। इन पर दृष्टान्त कहते हैं— जैसे उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन में वीरप्रभु ने "समयं गोयमा! मा पमायए" ऐसा उपदेश जो श्री गौतमस्वामी को दिया उसमें मुख्यता श्रीगौतमस्वामी की है और गोणता सकल चतुर्विध संघ की है।

१७ उत्सर्गापवाद द्वार.

उत्कृष्ट क्रिया का करना उसको उत्सर्ग कहते हैं, जैसे तीन गुप्ति का गोपना अथवा जिनकल्पी का आचार। उत्कृष्ट क्रिया को अवष्टम्भन (सहायता) देना उस का नाम अपवाद है, जैसे पांच समितियों में प्रवर्त्तना अथवा स्थविरकल्पी का आचार।

अब उत्सर्ग और अपवाद की षड्भङ्गी दिखाते हैं— १ उत्सर्गोत्सर्ग, २ उत्सर्ग, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ अपवाद और ६ अपवादापवाद।

१ उत्सर्गोत्सर्ग– जो उत्कृष्ट से उत्कृष्ट क्रिया की जावे, जैसे गजसुकुमाल मुनि भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा को अङ्गीकार कर श्मशान भूमि में खड़े रहे और जो सोमिल ब्राह्मण ने आकर उपसर्ग किया उस को सम्यक् प्रकार से सहन किया। उस को उत्सर्गोत्सर्ग कहते हैं।

२ उत्सर्ग– जो तीन गुप्ति का धारण करना उस को उत्सर्ग कहते हैं।

३ उत्सर्गापवाद– उत्कृष्ट क्रिया को करते हुए उस के सहायक रूप अपवाद का सेवन करना उस को उत्सर्गापवाद कहते हैं, जैसे किसी मुनि ने चोविहार (चउव्विहाहार– चतुर्विधाऽऽहार) उपवास किया हो मगर परिट्ठावणिया (सब के आहार कर चुकने पर बचा हुआ) आहार करना पड़े।

४ अपवादोत्सर्ग– कारण वश अपवाद को सेवते हुए भी हेयोपादेय विचार कर जो उत्कृष्ट क्रिया को

१ यह आहार सिर्फ एक उपवास वाले को ही दिया जाता है, किन्तु एक उपवास से अधिक–बेला– तेलादिक तपस्या वाले को नहीं कल्पता।

सेवन करे उस को अपवादोत्सर्ग कहते हैं, जैसे धर्म-रुचि मुनि कड़वे तुम्बे के आहार को परठवने के लिए गये वहां पर उस का एक बिन्दु भी परठवने पर बहुतसी कीड़ियों की अजयणा (अयतना) देख कर उस आहार को स्वयं सेवन कर के वहीं संथारा (अनशन व्रत) कर लिया।

५ अपवाद– जो पांच समिति में प्रवृत्ति की जावे उस को अपवाद कहते हैं।

६ अपवादापवाद– जो अपवाद में भी कारण वश अपवाद का सेवन करना पड़े उस को अपवादापवाद कहते हैं, जैसे कोई मुनिराज गोचरी गये और कारण वश वहां गृहस्थ के घर में बैठना पड़े यह तो अपवाद और फिर विशेष कारण वश उसी स्थान पर बैठ कर आहार भी करना पड़े वह अपवादापवाद कहा जाता है।

१८ आत्म- द्वार.

जो चेतनालक्षणवाला हो उस को आत्मा कहते हैं। इस के तीन भेद होते हैं– १ बाह्यात्मा, २ अन्तरात्मा और ३ परमात्मा।

१ बाह्यात्मा– जो राज्य ऋद्धि भण्डार आज्ञा (हुक्म) दास दासी इज्जत (गौरव) आबरू (प्रतिष्ठा) भाई भतीजा बेटा बेटी हाथी घोड़ा रथ पालखी धन धान्य वस्त्र आभूषण मकान हाट हवेली, इत्यादि बाह्य सम्पदा में लीन रहे और इसी को अपनी करमाने उस को बाह्यात्मा कहते हैं। यथा–

पुद्गल से रातो रहे, जाणे यही निधान।
तस लाभे लोभ्यो रहे, बहिरातम अभिधान॥१॥

यह बाह्यात्मा पहले दूसरे और तीसरे गुणस्थान तक रहता है।

२ अन्तरात्मा– जो उपरोक्त बाह्य सम्पदा से उदासीन रहे और विरक्त भाव से सेवन करे तथा आत्मसत्ता को पहिचान कर स्वस्वभाव में लीन रहे और ज्ञानादि निजगुण से प्रीति करे उस को अन्तरात्मा कहते हैं। यथा–

पुद्गल खल संगी परे सेवे अवसर देख।
तनु असक्य जिम लाकड़ी ज्ञानदृष्टि कर देख॥१॥
पुद्गल भाव रुचे नहीं, ताते रहे उदास।
सो अन्तर आतम लहे, परमातम परकास॥२॥

यह अन्तरात्मा चौथे से बारहवें गुणस्थान तक रहता है।

३ परमात्मा– जो उत्कृष्ट आत्मा अर्थात् सकल उपाधि (क्लिष्टकर्म) से रहित और केवल-ज्ञान केवल-दर्शन आदि सम्पूर्ण आत्मगुणों से विभूषित हो उस को परमात्मा कहते हैं। इस के दो भेद हैं– १ द्रव्य परमात्मा और २ भाव परमात्मा। १ द्रव्य-परमात्मा तो समभिरूढ नय के अभिप्राय से तेरहवें चौदहवें गुणस्थान पर रहे हुए केवली भगवान को कहते हैं और २ भाव-परमात्मा एवंभूत नय के अभिप्राय से जो आठों ही कर्मों से रहित आठ गुणों से विभूषित लोक के अग्रभाग में विराजमान और साद्यनन्त सुखमय सिद्ध भगवान् को कहते हैं। यथा–

बहिरातम तज आतमा, अन्तर आतम रूप।
परमातम ने ध्यावतां, प्रगटे सिद्ध स्वरूप ॥१॥

दूसरी तरह से भी आत्मा के तीन भेद होते हैं– १ स्वात्मा, २ परात्मा और ३ परमात्मा। यथा—

स्वआतम को दमन कर, पर आतम को चीन
परमातम को भजन कर, सोही मत परवीन ॥१॥

१९ ध्यान (४) द्वार

ध्यान– जो अन्तर्मुहूर्त तक चित्तवृत्ति को एक वस्तु पर लगाना उस को ध्यान कहते हैं। इस के

निद्रा जिन की ऐसे बुद्ध (केवल ज्ञानी) भगवान् की जो जागरणा (प्रबोध) है उस को बुद्ध जागरणा कहते हैं। २ अबुद्ध जागरणा— अनगार भगवान ईर्या समिति वाले यावत् गुप्त ब्रह्मचारी जो ये अबुद्ध अर्थात् केवल ज्ञान के अभाव से तथा यथासम्भव छद्मस्थ के शेष चार ज्ञान के होने से बुद्धसदृश है, इन छद्मस्थ ज्ञान वाले अबुद्धों (बुद्धसदृशों) की जो जागरणा है उस को अबुद्ध जागरणा कहते हैं। ३ सुदक्ष जागरणा— जो ये श्रमणोपासक अभिगत जीवाजीव यावत् श्रावकपन को पालते हुए विचरते हैं, इन सुदक्षों की जो जागरणा है उस को सुदक्ष जागरणा कहते हैं। इस का फल कर्मों की निर्जरा होना है।

२ अधर्म जागरणा— अधर्म चिन्तन के लिए की हुई जागरणा को अधर्म जागरणा कहते हैं। इस का फल महान् संसार की वृद्धि है।

३ कुटुम्ब जागरणा— कुटुम्ब चिन्तन के लिए की हुई जागरणा को कुटुम्ब जागरणा कहते हैं। इस का भी फल संसार की वृद्धि है।

॥ इति इक्कीस द्वार संपूर्ण ॥

१ यह नञ् सदृशता का वाचक है इसलिए 'अबुद्ध' शब्द का अर्थ 'बुद्धसदृश' ऐसा होगा।

सम्यग्दृष्टि के लक्षण—

नय-भंग-पमाणेहिं, जो अप्पा सायवायभावेण।
जाणइ मोक्खसरूवं, सम्मद्दिट्ठी उ सो नेओ॥१॥

अर्थ— जो जीव नयों से भंगों से प्रमाणों से और स्याद्वादपद्धति से मोक्ष के स्वरूप को जाने, वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है ॥१॥

ग्रन्थ प्रशस्तिः—

दोहा.

नय निक्षेप प्रमाण को संग्रह अति सुख कार।
कीना बीकानेर में आनन्द हिरदे धार॥ १॥
जिन आगम को देखकर, और ग्रन्थ आधार।
यथामति संग्रह कियो, स्वपर को हितकार॥२॥
दृष्टिदोष परमाद से, भूलचूक रहि होय।
अरिहंत सिद्ध की साखसे, मिथ्या दुष्कृत मोय॥३॥
न्यूनाधिक विपरीतता, यत् किञ्चित् दरसाय।
सो सज्जन सुध भावला, जलदी देहु बताय॥४॥
अभिनिवेश म्हारे नहीं, नहीं है खेंचाताण।
कृतज्ञ हूँ मैं तेहनो, ततखिण करूँ प्रमाण॥ ५॥

पंच परमेष्ठी को नमूं, रहुं जिन आज्ञा लाल।
श्रीजिनधर्म प्रसाद से, वरते मंगल माल ॥६॥

आन्तिम मङ्गलम् –

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता च भद्रा सती
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥१॥

॥इति नय-प्रमाण का थोकड़ा संपूर्ण॥

श्रीरस्तु

Printed at the Sethia Jain Printing press.
BIKANER 20—1—28, 8000

स्व० पं० दौलतरामजी-कृत

छहढाला ।

सम्पादक--

श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद ।

B. V. PRESS.

स्वर्गीय कविवर पं० दौलतरामजी-कृत

छहढाला

अर्थात्

संक्षिप्तमें जैनसिद्धान्तका रहस्य ।

भाषाकार–

जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ।

प्रकाशक–

जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव–बम्बई ।

तृतीय संस्करण ।

क्रम संख्या ७००० ।

चैत सुदी १९७६ ।

मूल्य तीन आने ।

प्रकाशक—
बिहारीलाल जैन,
मालिक—जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव-बम्बई।

मुद्रक,
ठाकुर चिंतामण सखाराम देव
मुंबई-वैभव प्रेस, सर्वन्ट्स् आफ इंडि
सोसायटीज् होम, सँढर्स्ट रोड,
गिरगाँव-बम्बई।

भाषाकारकी ओरसे ।

छहढाला है तो छोटासा ग्रंथ, पर उपयोगी बहुत है। इसमें जैनधर्मका रहस्य बड़े पाण्डित्यके साथ लिखा गया है । इस लिये इसका जितना प्रसार होगा उतना ही जैनधर्मके तत्त्वोंका सर्व-साधारणको बड़ी सुगमतासे ज्ञान प्राप्त होगा। स्वर्गीय पं० दौलतरामजीने इसकी रचना कर जैन-समाजका जो उपकार किया है, उसके लिये वह चिर समय तक आपका कृतज्ञ रहेगा।

मूल ग्रंथ कुछ कठिन है। इस लिये सर्व-साधारणको इसके द्वारा जितना लाभ पहुँचना चाहिये उतना मूल परसे न पहुँचनेके कारण हमने इसकी सरल हिन्दी-भाषा लिख दी है। हम समझते हैं इसके द्वारा विद्वानोंके सिवा विद्यार्थियोंको बहुत लाभ पहुँचेगा।

विद्यार्थियोंके विशेष लाभकी दृष्टिसे ही इसका शब्दार्थ लिखते समय हमने संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-विशेषण, सम्बन्ध-वाचक अव्यय, संयोगिक अव्यय और भाव-वाचक अव्यय आदि व्याकरणसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें भी कोष्टकमें चिह्न लगा कर समझा दी हैं। इनके लक्षण और उदाहरण दूसरे पृष्ठमें देखिए। अध्यापकोंको उचित है कि वे अपने विद्यार्थियोंको अच्छी तरह इन सब बातोंका ज्ञान करा दें।

संभव है ज्ञानकी मंदताके कारण अर्थ लिखते समय हमसे असावधानी रह गई हो, तो विशेषज्ञ उसे सुधार कर हम पर क्षमा करें और साथ ही सूचना देनेकी कृपा करें जिससे हम उसे आगे सुधार सकें।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद।

परिभाषा।

१–संज्ञा—जो किसी वस्तु अथवा पुरुषका नाम हो, जैसे—घोड़ा, रामचंद्र, टोपी। इसका चिह्न 'सं०' है।

२–विशेषण—जो संज्ञाका गुण-दोष बतलावे, जैसे—भला आदमी। यहाँ 'भला' विशेषण है। इसका चिह्न (वि०) है।

३–सर्वनाम—जो संज्ञाके स्थानमें आवे, जैसे—राम यहाँ आया और उसने भोजन किया। यहाँ 'उसने' सर्वनाम है। इसका चिह्न (स०) है।

४–क्रिया—जो कार्यको बतलावे और जिसके बिना वाक्यका अर्थ नहीं निकले, जैसे—रामने अमरूद खाया। यहाँ 'खाया' क्रिया है। इसका चिह्न (क्रि०) है।

५–क्रिया-विशेषण—जो मुख्यता करके क्रियाकी प्रशंसा करे, जैसे—राम शीघ्र जाता है। यहाँ 'शीघ्र' क्रिया-विशेषण है। इसका चिह्न (क्रि० वि०) है।

६–संबंध-वाचक अव्यय—जो एक वस्तुका संबन्ध दूसरेसे मिलावे तथा विभक्तिकी पूर्ति करे, जैसे—राम मंदिरमें है। यहाँ 'में' संबंध-वाचक अव्यय है। इसका चिह्न (सं० अ०) है।

७–संयोगिक अव्यय—जो दो शब्दों अथवा दो वाक्योंको जोड़े, जैसे—राम और गोविंद घर गये। यहाँ 'और' संयोगिक अव्यय है। इसका चिह्न (संयो० अ०) है।

८–भाव-वाचक अव्यय—जिस शब्दसे एका-एक कोई भाव प्रगट हो, जैसे—हाय! मैं मर गया। यहाँ 'हाय' भाव-वाचक अव्यय है। इसका चिह्न (भा० अ०) है।

श्रीवीतरागाय नमः।

कविवर पं० दौलतरामजी-कृत

छहढाला।

पहली ढाल।

सोरठा।

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं॥

भुवन=(सं०) लोक। शिव=(सं०) आनन्द।
विज्ञानता=(सं०) केवल-ज्ञान-रूप विद्या। त्रियोग=(सं०) मन, वचन, काय।

मैं (पंडित दौलतराम) अपने मन, वचन, कायको सँभाल कर तीन लोकमें उत्तम आनन्द-रूप और सुख करनेवाली वीतराग-(१८ दोष-रहित) स्वरूप केवलज्ञान-रूपी विद्याको नमस्कार करता हूँ।

चौपई छन्द- १५ मात्रा।

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त, सुख चाहें दुखतें भयवन्त।
तातें दुखहारी सुखकार, कहें सीख गुरु करुणाधार॥ १॥

भयवन्त=(वि०) डरते हुए। करुणा=(सं०) दया, कृपा।

तीन लोकमें जितने अनन्त (जिनका अन्त नहीं) जीव हैं, सब सुख चाहते हैं और दुःखसे डरते हैं। इस लिये श्रीगुरु दुःखको दूर करनेवाली और सुखको पैदा करनेवाली शिक्षाको दया करके कहते हैं।

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह महामद पियौ अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥ ३॥

अनादि=(वि०) ऐसा काल जिसका शुरू नहीं है।
महामद=(सं०) तेज शराब। वादि=(अ०) बे-मतलब।

हे भव्यजीव ! जो अपना भला चाहते हो तो उस शिक्षाको मन स्थिर करके सुनो। यह जीव अनादि कालसे मोह (संसारसे तन, धन, पुत्र आदिसे दृढ़ नेह) रूपी तेज मदिराको पीकर और अपने आत्माके स्वरूपको भूल कर बे-मतलब भ्रमण करता है।

तास भ्रमणकी है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यौ एकेन्द्री तन धार ॥ ३॥

भ्रमण=(सं०) संसारमें फिरने। मँझार=(सं० अ०) भीतर।
यथा=(क्रि० वि०) जैसा। एकेन्द्री=जिसके एक इन्द्रिय अर्थात् केवल शरीर मात्र हो, जिससे पदार्थको छूकर ठंढा, गरम, हलका, नरम, आदि मालूम करे। इस इन्द्रियका नाम स्पर्शन-इन्द्रिय है।

जिस जीवके संसारमें फिरनेकी बहुत बड़ी कहानी है; परन्तु मैं जैसा कि मुनियोंने कहा है कुछ कहता हूँ। एकेन्द्रिय शरीरको धारण किये हुए इस जीवने अनन्त काल तो निगोदके भीतर विताया।

एक स्वासमें अठ दश बार, जन्म्यौ मरयौ मरयौ दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयौ, पवन प्रत्येक वनस्पति थयौ ॥ ४॥

मरयो=(क्रि०) सहता हुआ। पावक=(सं०) अग्नि, आग।
भार=(सं०) बोझ। पवन=वायु, हवा।
भूमि=(सं०) जमीन। प्रत्येक वनस्पति=(सं०) ऐसी

वृक्ष (झाड़)—जाति जिसमें एक जीव एकके सहारे रहे। साधारण वनस्पति वे हैं जिनमें एकके आश्रय अनेक जीव रहें।

उस निगोदके भीतर यह जीव एकश्वास मात्र (मुहूर्त जो कि दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनिटका होता है, जिसके ३७७३ श्वासें होते हैं) में १८ अठारह बार जन्म-मरण करता, दुःखके बोझको सहता वहाँसे (बड़ी कठिनतासे) निकल कर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति—ऐसे पाँच तरहके एकेन्द्रिय स्थावर जीव हुआ।

दुर्लभ लहिये चिन्तामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धरधर मर्यो सही बहु पीर ॥५॥

दुर्लभ=(क्रि० वि०) कठिनतासे।
लहिये=(क्रि०) पाइये।
पर्याय=(सं०) अवस्था, शरीर।
त्रस=(सं०) दो इन्द्रियसे लेकर पाँच इन्द्रिय तकके जीवोंको 'त्रस' कहते हैं।
लट=(सं०) यह दो इन्द्रिय जीव है। इसके एक रसना (स्वाद लेनेवाली) इन्द्रिय अधिक होती है।
स्पर्शन, जो कि पहली इन्द्रिय है, सब जीवोंके होती है।
पिपील=(सं) चींटी-कीड़ी, इसके तीन इन्द्रियाँ होती हैं। एक घ्राण (सूँघनेकी) इन्द्रिय अधिक होती है।
अलि=(सं०) भौंरा, इसके चार इन्द्रिय होती है। एक चक्षु (देखनेकी) इन्द्रिय अधिक होती है। पीर=(सं०) दुःख।

जैसे चिन्तामणी रत्न बड़ी कठिनतासे मिलता है वैसे त्रस जीवोंका शरीर पाना मुश्किल है। इस जीवने लट, कीड़ी, भौंरा वगैरह शरीरोंको बार बार धारण कर मरण किया और बहुत दुःख सहा है।

कबहूँ पंचेंद्रिय पशु भयौ, मन विन निपट अज्ञानी थयौ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥ ६ ॥

पँचेन्द्रिय पशु=(सं) ऐसे जानवर जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—कान (सुननेवाली इन्द्रिय) ऐसे पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

निपट=(क्रि० वि०) बिलकुल। क्रूर=(वि०) दुष्ट।
सेनी=(वि०) मन-सहित। हति=(क्रि०) मार कर।
भूर=(वि०) बहुत।

कभी यह जीव मन बिना बिलकुल अज्ञानी पंचेन्द्रिय पशु हुआ। कभी मन-सहित दुष्ट सिंह वगैरह पंचेन्द्रिय पशु हुआ। जब इसने बहुतसे निर्बल पशुओंको मार कर खाये।

कबहूँ आप भयौ बलहीन, सबलनिकरि खायौ अति दीन।
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास ॥ ७ ॥

वहन=(क्रि०) ढोना। आतप=(सं०) गरमी।
हिम=(सं०) ठंडी। त्रास=(सं०) दुःख।

कभी यह जीव आप निर्बल पशु हुआ, तब महा दुखी होकर अपनेसे जो बलवान पशु थे उनसे खाया गया। छेदा जाना, भेदा जाना, भूख, प्यास, बोझा, ठंड, गरमीके दुःख तथा—

बध बंधन आदिक दुख घनें, कोटि जीभतें जात न भनें।
अति संक्लेशभावतें मर्यौ, घोर श्वभ्रसागरमें पर्यौ ॥ ८ ॥

भनें=(क्रि०) कहना। घोर=(वि०) भयानक।
संक्लेशभाव=(सं०) खोटे परिणाम। श्वभ्रसागर=(सं०) नर्करूपी समुद्र

मारा जाना, बाँधा जाना वगैरह बहुत दुःख, जो करोड़ों जबानों करभी नहीं कहे जा सकते, इस जीवने पशु पर्यायमें सहे हैं। जब यह जीव बहुत ही खोटे भावोंसे मरा तो भयानक नरक-रूपी समुद्रमें गिरा।

तहाँ भूमि परसत दुख इसो-बीछू सहँस डसें नहिं तिसो।
तहाँ राधश्रोणित-वाहिनी, कृमिकुलकलित देहदाहिनी ॥ ९ ॥

राधश्रोणित=(वि०) रक्तकी भरी हुई। कृमिकुल=(सं०) कीड़ोंका ढेर।
वाहिनी=(सं०) नदी। कलित=भरी हुई।

उस नरककी जमीनको छूनेसे इतना दुःख होता है, जितना कि हजार विच्छुओंके काटनेसे भी नहीं होता। उस नरकमें लोहू और कीड़ोंसे भरी हुई तथा देहको जलानेवाली नदी बहती है।

सेमरतरु जुत दल असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरुसमान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय॥ १०॥

सेमरतरु=(सं०) एक तरहका काँटेदार झाड़।
असिपत्र=(सं०) तलवारकी धार। विदारैं=(क्रि०) चीरते हैं।
दल=(सं०) पत्ता। तत्र=वहाँ।

उस नरकमें तलवारकी धार समान पत्तेवाले सेमरके वृक्ष हैं, जो तलवारके समान शरीरको चीरते हैं। वहाँ ठंड और गरमी इतनी है कि मेरु पर्वतके बराबर (जो एक लाख योजन ऊँचा है) लोहेका गोला भी गल जाता है।

तिल तिल करैं देहके खंड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचंड।
सिंधुनीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूंद लहाय॥ ११॥

असुर=(सं०) असुरकुमार जातिके देव जो तीसरे नरक तक जाकर नारकियोंको आपसमें लड़ाते हैं और आप उनका दुःख देख खुश होते हैं।

उस नरकमें नारकी एक दूसरेकी देहके टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं; (उनकी देह पारेके समान फिर मिल जाती है) तथा प्रबल दुष्ट असुरकुमार देव नारकियोंको लड़ाते हैं। नरकमें प्यास इतनी है कि समुद्र भर पानी पिये तब भी प्यास न बुझे; परन्तु एक बूँद भर जल नहीं मिलता।

तीन लोकको नाज जो खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागरलौं सहै, करमजोगतैं नरगति लहै॥ १२॥

सागर=(सं०) वर्षोंका प्रमाण, अपनी समझकी अपेक्षा जिसके वर्ष अगणित हैं।

नरकमें भूख इतनी अधिक मालूम होती है कि जो तीन लोकका सब अनाज खा लें तब भी भूख न मिटे; परन्तु एक दाना भी नहीं मिलता। ऐसे ऐसे दुःख यह जीव बहुतसे सागरों तक सहा करता है। कोई शुभ कर्मका निमित्त मिलने पर फिर मनुष्य-गति प्राप्त करता है।

जननी-उदर वस्यौ नव मास, अंग सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनकों कहत न आवै ओर ॥ ११ ॥

जननी=(सं०) माता। उदर=(सं०) पेट। ओर=(सं०) अन्त।

मनुष्य-गतिमें यह माताके पेटमें नव महीने रहा। वहाँ शरीर सुकड़ा हुआ रहनेसे इसने दुःख उठाया; और पेटसे निकलते हुए जो भयानक दुःख भोगे, उनका कहनेसे अन्त नहीं आ सकता।

बालपनेमें ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत रह्यौ।
अर्द्ध मृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥ १४ ॥

तरुन=(सं०) जवानी। तरुणी=(सं०) जवान स्त्री।
रत रह्यो=(क्रि०) मन लगाया। अर्द्ध मृतक=(सं०) अधमरा।

लड़कपनमें तो इसने ज्ञान प्राप्त नहीं किया, जवानीमें स्त्रीमें मन लगाया और तीसरी अवस्था जो बूढ़ापन है वह अधमरे आदमीके समान बेकाम होती है। ऐसी दशामें यह जीव अपने रूपको कैसे पहचाने! (मनुष्य-गतिका कोई समय ही बाकी न रहा।)

कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिकमें सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यौ, मरत विलाप करत दुख सह्यौ ॥ १५ ॥

अकाम निर्जरा=(सं०) समतासे कर्मोंका फल भोगना, फिर कर्मोंका झड़जाना।
भवनत्रिक=(सं०) तीन जातिके देव—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी।
सुर=(सं०) देव। दावानल=अग्नि, (बड़वाग्नि।)

कभी इस जीवने अकाम निर्जरा की तो मर कर भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी–इन तीन तरहके देवोंमें कहीं देवका शरीर धारण किया। परन्तु वहाँ भी हर समय पाँचों इंद्रियोंके विषयोंकी चाह-रूपी आगमें जलता रहा और जब मरा तब रो रो कर दुःख सहन किया।

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन विन दुख पाय।
तहँते चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै॥ १६॥

विमानवासी=(सं०) चौथी जातिके स्वर्गवासी देव।
सम्यग्दर्शन=(सं०) आत्माका और परका ठीक ठीक निश्चय; देव, गुरु, धर्मकी ठीक श्रद्धा।
चय=(क्रि०) आकर। थावर-तन=एकेन्द्रियका शरीर।
परिवर्तन=(सं०) संसारमें घूमना, या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव।

जो कहीं यह जीव स्वर्गमें भी पैदा हुआ तो वहाँ सम्यग्दर्शन बिना सदा क्लेश उठाया करता है। ऐसी दशामें देव-गतिसे आकर स्थावरके दुःख-रूप शरीरको धरता है। इस तरह यह जीव संसारमें चक्करोंको किया करता है।

पहली ढालका भावार्थ।

इस संसारमें चार गति हैं—पशु, नरक, मनुष्य और देव। इन गतियोंमें यह जीव अनन्त बार घूम आया तथा अपने भावोंके अनुसार कर्म बाँध कर घूमा करता है। हर एक गतिमें बहुत दुःख सहने पड़ते हैं। पशु और मनुष्य गतिके दुःख तो हमें सामने ही दीखते हैं। इन चारों गतिसे छूटनेका उपाय जो सम्यग्दर्शन है वह इसको नहीं मिला। सम्यग्दर्शन होनेसे ही जीवको सुख होता है।

दूसरी ढाल।

पद्धरी छंद, १५ मात्रा।

ऐसे मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण,-वश भ्रमत भरत दुख जन्ममर्ण।
तातें इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥ १॥

मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण=(सं०) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र—सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र जो सुखके कारण हैं इनके उलटे ये तीनों दुःखके कारण हैं। खाली श्रद्धासे कोई काम नहीं होता। श्रद्धाके साथमें ज्ञान और चारित्र होना ही चाहिये।

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रके कारणसे यह जीव ऊपर कहे अनुसार घूमता है और जन्म-मरणके दुःख सहता है। इस लिये इन तीनोंको भले प्रकार जान कर छोड़ना चाहिये। मैं आगे इनका खुलासा कहता हूं।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतनको है उपयोग रूप, विन मूरति चिन्मूरति अनूप॥ २॥

जीवादि=(सं०) जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष।
प्रयोजनभूत=(वि०) (संसारसे छुड़ानेमें) मतलबके।
चेतन=(सं०) आत्मा, जीव। विपर्ययत्व=(सं०) उलटा।
उपयोग=(सं०) जानना, देखना।
विन मूरति=(वि०) जड़ रूप मूर्ति जिसकी नहीं है।
अनूप (वि०) तीन लोकमें जिसकी उपमा नहीं मिलती।
चिन्मूरति=(वि०) चैतन्य-रूप जिसकी मूर्ति है।

मोक्षमार्गमें जीवादि सात तत्त्वोंका श्रद्धान अपने मतलबका है, उनका स्वरूप औरका और उलटा श्रद्धान कर लेना सो मिथ्यादर्शन है। सदा अपने आत्माका स्वरूप जानना देखना है। यह आत्मा कोई जड़मूर्ति नहीं है; किन्तु चैतन्य मूर्ति है। इसकी उपमा (मिसाल) नहीं दी जा सकती।

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतें न्यारी है जीवचाल।
ताकों न जान विपरीत मान-करि करै देहमें, निज पिछान॥ ३॥

न्यारी=(वि०) जुदी, अलग। चाल=(सं०) स्वभाव।
विपरीत=(सं०) उलटा।

इस आत्माका स्वभाव पुद्गल, आकाश, धर्म, अधर्म और काल इन पाँचों द्रव्योंसे (जिनका स्वरूप आगे कहेंगे) जुदा है। जीव ऐसा आत्माका स्वरूप न जान कर इससे उलटा मान कर अपनी देहको ही आत्मा समझता है यह मिथ्यादर्शनकी महिमा है।

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥ ४॥

रंक=(सं०) गरीब। राव=(सं०) राजा। गोधन=(सं०) गाय, भैंसादि।
प्रभाव=(सं०) बड़प्पन। तिय=(सं०) स्त्री। सुभग=(वि०) सुन्दर।

मिथ्यादर्शनके कारणसे यह जीव ऐसा माना करता है कि मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं राजा हूँ, यह मेरा रुपया-पैसा है, यह मेरा घर है, यह मेरी गाय-भैंसें हैं, यह मेरा बड़प्पन है, ये मेरे लड़के हैं, यह मेरी स्त्री है, मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ, मैं कुरूप हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं चतुर हूँ।

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुखदैन, तिनहीकों सेवत गिनत चैन॥ ५॥

मिथ्यादर्शनके कारणसे यह जीव शरीरके जन्मको अपना जन्म और शरीरके नाशको अपना मरण मान लेता है और जो राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अपने देखते जीवोंको दुःख देते हैं उन्हींका सेवन करता हुआ सुख गिन लेता है।

शुभ-अशुभ बंधके फल मँझार, रति अरति करै निजपद बिसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपकूँ कष्टदान॥ ६॥

रति=(सं०) रुचि। बिसार=(क्रि०) भूल कर। हेतु=(सं०) कारण।

मिथ्यादृष्टी जीव पूर्वमें बाँधे हुए शुभ कर्मके फल भोगनेमें तो रुचि और अशुभ कर्मके फल भोगनेमें अरुचि करता है; क्योंकि वह अपने आत्माके रूपको भूला हुआ है तथा अपने आत्माकी भलाईके कारण जो वैराग्य और ज्ञान हैं उन्हींको अपने लिये दुखदाई समझता है।

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतियुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान॥ ७॥

निराकुलता=(सं०) चिन्ता-रहित मोक्ष-सुख। प्रतीति=(सं०) श्रद्धा।

मिथ्यादृष्टी जीव अपने आत्माकी शक्ति (ताकत) को खोकर अपनी इच्छाओंको नहीं रोकता है और न चिन्ता-रहित आनन्द-रूप मोक्ष-सुखको ढूँढ़ता है। ऐसी उलटी श्रद्धा-सहित जो कुछ ज्ञान होता है उसीको कष्ट-दाता *अज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान* जानना चाहिये।

इनजुत विषयनिमें जो प्रवृत्त, ताकूँ जानो मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सुतेह॥८॥

जुत=(अ०) सहित। प्रवृत्त=(क्रि०) प्रवृत्ति करना।
निसर्ग=(वि०) जो स्वभावसे हो। गृहीत=(वि०) जो इस भवमें ग्रहण किये हों।

मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञानके साथ पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति करना सो मिथ्याचारित्र है। इस तरह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र जो स्वभावसे ही अनादिकालसे जीवोंके बने रहते हैं, उनका वर्णन किया। अब आगे इन तीनोंको इस भवमें ही जीव जैसा देखता है *ग्रहण कर लेता है, उनका वर्णन करते हैं।*

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोखैं चिर दर्शनमोह एव।
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अंबरतें सनेह॥ ९॥
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव।

पोखैं=(क्रि०) मजबूत करते हैं। चिर=(क्रि० वि०) सदा।
अंबर=(सं०) कपड़ा। कुलिंग=(सं०) खोटे भेष।
महत=(वि०) बड़ेपनेके। उपल=(सं०) पत्थर।

खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्मकी जो सेवा करना सो मिथ्या-दर्शन है। इनकी सेवा दर्शनमोहनी नाम कर्मको सदा मजबूत करती है। जो मनके भीतर तो राग-द्वेष धारण करें, और बाहर धन, कपड़ा आदिसे स्नेह करें और अपनेको बड़ा मान कर खोटे भेष धारण करें वे कुगुरु संसार-समुद्रसे तिरनेके लिये पत्थरकी नावके समान हैं।

जे रागद्वेषमलकरि मलीन, वनिता-गदादिजुत चिह्न चीह्न ॥ १० ॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव।

वनिता=(सं०) स्त्री। चीह्न=(क्रि०) पहचानना। शठ=(सं०) मूर्ख।
भव=(सं०) संसार। छेव=(क्रि०) कटना।

जो देव राग और द्वेष-रूपी मैल कर मैले हैं तथा स्त्री, गदा वगैरह हथियारोंको लिये हुए हैं वे सब खोटे देव हैं। ऐसे देवों (भवानी, देवी, काली, महादेव, कृष्ण आदि) की सेवा मूर्ख लोग करते हैं, उनसे संसारका तिरना नहीं हो सकता।

रागादि भावहिंसासमेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥ ११ ॥
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीतमिथ्यात जान, अब सुन गृहीत जो है अजान ॥ १२ ॥

भावहिंसा=(सं०) भावोंका दुखना दुखाना।
दर्वित=(वि०) प्रगटरूपसे जिसमें प्राणोंका नाश हो।
खेत=(सं०) ठिकाना। अशर्म=(सं०) दुःख।

जिन कार्योंमें राग-द्वेष पैदा हो, अपने और दूसरेके भावोंको दुःख हो तथा प्रगट-रूप त्रस और थावर जीवोंके मरनेका ठिकाना हो उनको

आत्माका भला सुख पाना है और सुख उसे कहते हैं जिसमें आकुलता अर्थात् कोई तरहकी चिन्ता न हो। यह आकुलता मोक्षमें नहीं है; संसारमें सब ही जगह है । इस लिये सुखके चाहनेवालोंको मोक्षके मार्ग पर चलना चाहिये। मोक्षका रास्ता सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। इन तीनोंके स्वरूपको दो तरहसे विचार करना चाहिये। एक तो निश्चय जो कि ठीक सच्चा सच्चा स्वरूप है, दूसरा व्यवहार जो निश्चयके पानेका कारण है।

परद्रव्यनतें भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भला है।
आपरूपको जानपनो सो, सम्यकज्ञान कला है।
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यकचारित सोई।
अब विवहार मोख-मग सुनिये, हेतु नियतको होई॥ २॥

रुचि=(सं०) श्रद्धा, यकीन, गाढ़ निश्चय। नियत=(सं०) निश्चय।

पर अर्थात् दूसरे द्रव्योंसे आत्माको जुदा जान कर आत्मामें रुचि करना सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। अपने आत्माके स्वरूपका विशेष ज्ञान होना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है। अपने आत्माके स्वरूपमें एक चित्त हो, लीन अथवा तन्मय हो जाना सो निश्चय सम्यक्चारित्र है। अब आगे निश्चय मोक्ष-मार्गके प्राप्त करनेके कारण व्यवहार मोक्ष-मार्गको कहते हैं।

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंधरु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्योंको त्यों सरधानो॥
है सोई समकित विवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य विशेषै, दिढ़ प्रतीति उर आनो॥ ३॥

सामान्य=(वि०) वस्तुका साधारण स्वरूप।
विशेष=(वि०) वस्तुका विशेष स्वरूप गुण, कार्य आदि।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सातों तत्त्वोंका स्वरूप जैसा जिनेन्द्र भगवानने कहा है वैसा ही श्रद्धान करना

सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सातों तत्त्वोंका सामान्य और विशेष स्वरूप आगे कहते हैं उसे समझ कर मनमें लाओ।

> बहिरातम अन्तरआतम परमातम जीव त्रिधा है।
> देह जीवको एक गिनै बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
> उत्तम मध्यम जघन त्रिविधके, अन्तरआतम ज्ञानी।
> द्विविधि संग विन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ४

त्रिधा=(वि०) तीन तरहके।

सुधा=(वि०) मूर्ख। द्विविधि संग=(सं०) दो प्रकारका परिग्रह। (१४ तरहका अंतरंग, १० तरहका बहिरंग।) १ मिथ्यात्व, २ वेद (स्त्री, पुरुष, नपुंसक), ३ राग, ४ द्वेष, ५ हास्य (हँसी), ६ रति (मन लगना), ७ अरति (मन न लगना), ८ शोक, ९ भय, १० जुगुप्सा (ग्लानि), ११ क्रोध (गुस्सा), १२ मान (घमंड), १३ माया (दगाबाजी), १४ लोभ ये चौदह अंतरंग हैं। १ क्षेत्र (खेत), २ वास्तु (मकान), ३ हिरण्य (चाँदी), ४ सुवर्ण (सोना), ५ धन (गाय-भैंसादि), ६ धान्य (अन्नादि), ७ दासी, ८ दास, ९ कुप्य (कपड़ा), १० भाण्ड (वर्तन), ये १० बहिरंग परिग्रह हैं।

जीव तीन तरहके होते हैं:—१ बहिरातम, २ अंतरातम, ३ परमातम। जो शरीर और आत्माको एक गिनते हैं वे तत्त्वोंसे अजान बहिरात्मा (मिथ्यादृष्टी) जीव हैं; जो आत्माको जानते हैं वे अंतरात्मा (सम्यक्दृष्टी) जीव हैं। वे तीन तरहके होते हैं:—उत्तम, मध्यम, जघन्य। जो २४ तरहके परिग्रह-रहित शुद्ध परिणामी आत्म-ध्यानी मुनि हैं वे उत्तम हैं।

> मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
> जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी॥
> सकल निकल परमातम द्वैविधि, तिनमें घाति निवारी।
> श्रीअरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥ ५॥

देशव्रती=(वि०) १२ व्रत पालनेवाले श्रावक, जिनका वर्णन चौथी ढालमें है।
अनगारी=(सं०) गृह-रहित छठे गुणस्थानी साधु।
अविरत=(वि०) १२ व्रत नियमसे नहीं पालनेवाले। सकल=(वि०) शरीर-सहित। निकल=(वि०) देह-रहित। घाति-निवारी=(वि०) ज्ञानावरणी (जो ज्ञानको रोके), दर्शनावरणी (जो दर्शनको रोके), अंतराय (जो [illegible] करे), मोहनी (जो मोह पैदा करे) ये ४ घातिया कर्म आत्माके स्वभावको घात करनेवाले हैं उनके नाश करनेवाले। निहारी=(वि०) देखनेवाले।

मध्यम अंतरात्मा देशव्रती गृहस्थ हैं, जघन्य व्रत-रहित सम्यग्दृष्टी हैं, ये तीनों ही अंतरात्मा मोक्ष-मार्गमें चलनेवाले हैं। परमात्मा दो तरहके हैं—एक सकल-परमात्मा दूसरे निकल-परमात्मा। जिन्होंने ४ घातिया कर्म नास किये, जो लोक और अलोक देखनेवाले हैं ऐसे श्रीअरहंत भगवान् शरीर-साहित सकल-परमात्मा हैं।

> ज्ञानशरीरी त्रिविधिकर्ममल, वर्जित सिद्ध महंता।
> ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता।
> बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
> परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनँद पूजै॥ ६॥

त्रिविधिकर्म=(सं०) तीन प्रकार कर्म। १ द्रव्यकर्म जो ८ हैं–४ तो घातिया जो ऊपर कह आये; ४ अघातिया–जैसे १ आयु (जिससे उस भवके भीतर रहना होता है), २ नाम (जो शरीरके अंगोपांग बनाता है), ३ गोत्र (जिससे ऊँच नीच कुलमें जन्म हो), ४ वेदनी (जो दुःख-सुख देता है)। २ भावकर्म जैसे–राग द्वेष-क्रोधादि। ३ नोकर्म ३ तरहके हैं, १ औदारिक जैसे मनुष्य और पशुओंकी देह, २ वैक्रियक जैसे देव-नारकियोंकी देह, ३ आहारक–यह ऋद्धिधारी मुनिके मस्तकसे निकलता है और केवलीको स्पर्श कर मुनिकी शंकाको दूर करता है।
वर्जित=(वि०) रहित। हेय=(वि०) छोड़ने लायक।

ज्ञान ही जिनका शरीर है, जो तीन प्रकार कर्ममलसे रहित हैं, ऐसे महान सिद्ध भगवान जड़ शरीर-रहित निर्मल निकल-परमात्मा हैं, जो अन्तकाल-

न्तक सुख भोगते रहते हैं। हे भाई! बहिरातमपनेको त्यागने योग्य जान कर छोड़ दे और अंतरात्मा होकर सदा दोनों प्रकारके परमात्माकी सेवा कर जिससे तुझे निरन्तर आनन्दकी प्राप्ति हो।

चेतनता विन सो अजीव है, पँच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरण रस गंध दो, फरस वसू जाके हैं।
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विन मूर्ति निरूपी ॥ ७ ॥

पुद्गल=(सं०) जो पूरे गले अर्थात् जिसके परमाणु मिल जायँ और विछुड़ जायँ। इसमें २० गुण होते हैं।
पंच वरण=(सं०) पाँच रंग (हरा, लाल, काला, पीला, सफेद)।
पंच रस=(सं०) पाँच रस (खट्टा, मीठा, चरपरा, कड़वा, कषायला)।
दो गंध=(सं०) दो तरहकी गंध (सुगन्ध, दुर्गन्ध)।
वसु फरस=(सं०) आठ तरहका स्पर्श (गर्म, ठंडा, हलका, भारी, कोमल, कठोर, रूखा, चिकना)।
तिष्ठत=(क्रि०) ठहरते हुए। निरूपी=(क्रि०) कही है।

अजीव तत्त्व वह है जिसमें चेतनता अर्थात् जानने-देखनेकी शक्ति नहीं हो। यह पाँच प्रकारका है। पहला भेद पुद्गल द्रव्य है, जिसके पाँच रंग, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श ऐसे २० गुण होते हैं। दूसरा भेद धर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलको—जब ये दोनों अपनी शक्तिसे चलते हैं तब—चलनेमें सहाय करता है तथा मूर्ति-रहित है। तीसरा भेद अधर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलको—जब वे अपने आप ठहरते हैं तब—ठहरनेमें सहाय करता है। इसे भी जिनेन्द्र भगवानने अमूर्तिक कहा है।

सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशिदिन सो व्यवहार काल परिमानो।
यों अजीव अव आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय पर- माद सहित उपयोगा ॥ ८ ॥

देशव्रती=(वि०) १२ व्रत पालनेवाले श्रावक, जिनका वर्णन चौथी ढालमें है।
अनगारी=(सं०) गृह-रहित छठे गुणस्थानी साधु।
अविरत=(वि०) १२ व्रत नियमसे नहीं पालनेवाले। सकल=(वि०) शरीर-सहित। निकल=(वि०) देह-रहित। घाति-निवारी=(वि०) ज्ञानावरणी (जो ज्ञान-को रोके), दर्शनावरणी (जो दर्शनको रोके), अंतराय (जो [illegible] करे), मोहनी (जो मोह पैदा करे) ये ४ घातिया कर्म आत्माके स्वभावको घात करने-वाले हैं उनके नाश करनेवाले। निहारी=(वि०) देखनेवाले।

मध्यम अंतरात्मा देशव्रती गृहस्थ हैं, जघन्य व्रत-रहित सम्यग्दृष्टी हैं, ये तीनों ही अंतरात्मा मोक्ष-मार्गमें चलनेवाले हैं। परमात्मा दो तरहके हैं-एक सकल-परमात्मा दूसरे निकल-परमात्मा। जिन्होंने ४ घातिया कर्म नाश किये, जो लोक और अलोक देखनेवाले हैं ऐसे श्रीअरहंत भगवान् शरीर-सहित सकल-परमात्मा हैं।

> ज्ञानशरीरी त्रिविधिकर्ममल, वर्जित सिद्ध महंता।
> ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता।
> बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
> परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनँद पूजै ॥ ६ ॥

त्रिविधिकर्म=(सं०) तीन प्रकार कर्म। १ द्रव्यकर्म जो ८ हैं–४ तो घातिया जो ऊपर कह आये; ४ अघातिया–जैसे १ आयु (जिससे उस भवके भीतर रहना होता है), २ नाम (जो शरीरके अंगोपांग बनाता है), ३ गोत्र (जिससे ऊँच नीच कुलमें जन्म हो), ४ वेदनी (जो दुःख-सुख देता है)। २ भावकर्म जैसे–राग-द्वेष-क्रोधादि। ३ नोकर्म ३ तरहके हैं, १ औदारिक जैसे मनुष्य और पशुओंकी देह, २ वैक्रियक जैसे देव-नारकियोंकी देह, ३ आहारक–यह ऋद्धिधारी मुनिके मस्तकसे निकलता है और केवलीको स्पर्श कर मुनिकी शंकाको दूर करता है।
वर्जित=(वि०) रहित। हेय=(वि०) छोड़ने लायक।

ज्ञान ही जिनका शरीर है, जो तीन प्रकार कर्ममलसे रहित हैं, ऐसे महान सिद्ध भगवान् जड़ शरीर-रहित निर्मल निकल-परमात्मा हैं, जो अन्तकाल-

तक सुख भोगते रहते हैं। हे भाई! बहिरातमपनेको त्यागने योग्य जान कर छोड़ दे और अंतरात्मा होकर सदा दोनों प्रकारके परमात्माकी सेवा कर जिससे तुझे निरन्तर आनन्दकी प्राप्ति हो।

चेतनता बिन सो अजीव है, पँच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरण रस गंध दो, फरस वसू जाके हैं।
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी॥ ७॥

पुद्गल=(सं०) जो पूरे गले अर्थात् जिसके परमाणु मिल जायँ और बिछुड़ जायँ। इसमें २० गुण होते हैं।
पंच वरण=(सं०) पाँच रंग (हरा, लाल, काला, पीला, सफेद)।
पंच रस=(सं०) पाँच रस (खट्टा, मीठा, चरपरा, कड़वा, कषायला)।
दो गंध=(सं०) दो तरहकी गंध (सुगन्ध, दुर्गन्ध)।
वसु फरस=(सं०) आठ तरहका स्पर्श (गर्म, ठंडा, हल्का, भारी, कोमल, कठोर, रूखा, चिकना)।
तिष्ठत=(क्रि०) ठहरते हुए। निरूपी=(क्रि०) कही है।

अजीव तत्त्व वह है जिसमें चेतनता अर्थात् जानने-देखनेकी शक्ति नहीं हो। यह पाँच प्रकारका है। पहला भेद पुद्गल द्रव्य है, जिसके पाँच रंग, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श ऐसे २० गुण होते हैं। दूसरा भेद धर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलको—जब ये दोनों अपनी शक्तिसे चलते हैं तब—चलनेमें सहाय करता है तथा मूर्ति-रहित है। तीसरा भेद अधर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलको—जब वे अपने आप ठहरते हैं तब—ठहरनेमें सहाय करता है। इसे भी जिनेन्द्र भगवान्ने अमूर्तिक कहा है।

सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशिदिन सो व्यवहार काल परिमानो।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय पर- माद सहित उपयोगा॥ ८॥

चौथा भेद आकाश द्रव्य है, जिसके भीतर सब द्रव्य रहते हैं (तीनों लोक आकाशके भीतर हैं)। पाँचवाँ भेद काल द्रव्य है, यह दो प्रकारका है। एक नियत अर्थात् निश्चय, जिसका स्वरूप सब द्रव्योंको परिवर्तन होनेमें सहाय करनेका है। दूसरा व्यवहार काल जो रात, दिन, घड़ी, पहर, मिनटके नामसे माना जाता है। ये पाँच तरहके अजीव हैं। (इनमें जीव द्रव्य मिलानेसे छह द्रव्य कहलाते हैं)। तीसरा तत्त्व आस्रव है, इसका स्वरूप सुनिये। कर्मोंका आत्माके पास आना और जिस कारणसे आना सो आस्रव है। मन, वचन, काय इन तीनोंका हलना सो योग है, इसीसे कर्मका आस्रव होता है। मिथ्यादर्शन, अविरत (व्रत न पालना), कषाय (क्रोधादि), प्रमाद (आलस्य) इन सहित जो उपयोग अर्थात् आत्माके भाव हैं—

ये ही आतमको दुखकारण, तातें इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे विधिसों सो, बंधन कबहुँ न सजिये।
शम-दमतें जो कर्म न आवें, सो संवर आदरिये।
तपबलतें विधि झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये॥ ९॥

विधि=(सं०) आठों कर्म। न सजिये=(क्रि०) नहीं कीजिये।
शम=(सं०) शांति, कषायोंको कम करना। दम=(सं०) इन्द्रिय और मनको वशमें रखना।
तप=(सं०) इच्छाओंको रोक कर ध्यान करना।

ये भाव आत्माको दुःखके देनेवाले हैं, इस लिये इनको छोड़ना चाहिये। इन्हीं भावोंके कारण जीवके प्रदेश (स्थान) कर्मोंसे बँध जाते हैं (यही चौथे बंध तत्त्वका स्वरूप है); सो हे भाई! ऐसा बंधन कभी नहीं करना चाहिए। शम और दमसे आते हुए कर्म रुकते हैं, यह पाँचवें संवर तत्त्वका स्वरूप है, इसका आदर करना चाहिए। तपके जोरसे कर्मोंका झरना अर्थात् आत्मासे अलग होना सो छठे निर्जरा तत्त्वका स्वरूप है, इस तत्त्वको सदा काममें लाना चाहिए।

सकलकर्मतें रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इहिविधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र गुरू परिग्रह बिन, धर्म दयायुत सारौ।
यहू मान समकितको कारण, अष्ट अंग जुत धारौ॥ १०॥

सकल=(वि०) सर्व। शिव=(सं०) मोक्ष।
अवस्था=(सं०) दशा हालत।

सब (आठों) कर्मोके छूटने पर जो आत्माकी दशा हो जाती है, सो मोक्ष है। वह सदा थिर अर्थात् एक-रूप और सुखदाई हैं। यह सातवें मोक्ष तत्त्वका स्वरूप है। इस तरह जो सातों तत्त्वोंकी श्रद्धा करना सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। श्रीजिनेन्द्र अरहंत भगवान तो देव, २४ प्रकार परिग्रह रहित गुरु, और दयामई धर्म ये तीनों भी सम्यग्दर्शनके कारण हैं। इस सम्यक्तको आठ अंग-सहित धारण करो।

बसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट अनायतन त्यागौ।
शंकादिक बसु दोष विना संवेगादिक चित पागौ॥
अष्टअंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपै कहिये।
बिन जानेतें दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये॥ ११॥

बसु मद=(सं०) आठ घमंड। निवारि=(क्रि०) दूर कर।
त्रिशठता=(सं०) तीन मूढ़ता। षट् अनायतन=छह अधर्मके स्थान।
संवेगादि=(सं०) पाँच इन्द्रिय और मनको वश करना आदि।

आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन और शंका आदि आठ दोष ऐसे २५ दोषोंको दूर कर संवेगादि गुणोंको चित्तमें धारण करो। ८ अंग २५ दोषका स्वरूप संक्षेपसे कहते हैं; क्योंकि दोष और गुण दोनोंको जाने विना कोई दोषोंको कैसे छोड़े और गुणोंको ग्रहण करे।

जिन वचमें शंका न धार वृष, भवसुख वांछा भानै।
मुनितन मलिन देख न घिनावै, तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै॥

और खोटे धर्मको सम्यक्त्वी नमस्कार नहीं करता। जो नमन करे तो यही तीन दोष हैं।

ये २५ दोष पूर्ण हुए।

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यकदरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥
गेही, पै गृहमें न रचें ज्यों, जलमें भिन्न कमल है।
नगरनारिको प्यार यथा का- देमें हेम अमल है॥ १५॥

सुधी=(वि०) बुद्धिमान्।	सुरनाथ=(सं०) इन्द्र।
लेश=(वि०) थोड़ा भी।	जजै हैं=(सं०) पूजन करते हैं।
संजम=(सं०) व्रत उपवास।	गेही=(सं०) गृहस्थी।
नगरनारि=(सं०) वेश्या।	कादे=(सं०) कीचड़।
हेम=(सं०) सोना।	सजै हैं=(क्रि०) शोभायमान हैं।

जो बुद्धिमान् २५ दोष दूर कर और आठ गुण धारण कर सम्यग्दर्शनसे शोभायमान हैं वे चाहे चारित्रमोहनी कर्मके अधीन होनेसे व्रत उपवास थोड़े भी न कर सकें, तो भी उन सम्यग्दृष्टियोंकी इन्द्र पूजा करते हैं। यद्यपि वे गृहस्थी हैं; परन्तु घरमें रचते अर्थात् लीन नहीं होते। जैसे जलके भीतर रहनेवाला कमल जलसे अलग रहता है, उसी तरह वे रहते हैं। घरसे उनकी प्रीति वेश्याकी प्रीतिके समान होती है, जो कभी थिर नहीं होती। जैसे कीचड़में पड़ा हुआ सोना निर्मल ही रहता है, वैसे ये गृहस्थी निर्मल ही रहते हैं।

प्रथम नरक विन षट भू ज्योतिष, वान, भवन, सब नारी।
थावर विकलत्रय पशुमें नाहिं, उपजत सम्यकधारी॥
तीनलोक तिहुँकालमाहिं नाहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरमको मूल यही इस, विन करणी दुखकारी॥ १६॥

पट भू=(सं०) छह पृथ्वी (नरक)। वान=(सं०) व्यंतर।
करणी=(सं०) सब धर्म-कर्म।

सम्यग्दर्शनका धारी जीव इतनी जगह मर कर नहीं जाता—पहले नरक बिना छह नरकोंमें, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवोंमें, सब तरहकी स्त्रियोंमें, स्थावर एकेन्द्रियोंमें; द्वीन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय इन विकलत्रयमें और पशुओंमें। तीन लोक और तीनों कालमें सम्यग्दर्शनके समान कोई भी सुखकारी नहीं है। सर्व धर्मकी जड़ यही है। इसके बिना जितनी क्रियायें हैं वे सब दुखकारी हैं।

मोखमहलकी परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा-
सम्यकता न लहै, सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन हैं, जो सम्यक नहिं होवै॥१७॥

सम्यकता=(सं०) सत्यपना। पवित्रा=(वि०) निर्मल।
सयाने=(सं०) चतुर।

यह सम्यग्दर्शन मोक्ष-रूपी महलमें चढ़नेकी पहली सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने अर्थात् सत्यपनेको प्राप्त नहीं होते। हे भव्यजनो! ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनको धारण करो। हे दौलतराम! समझ, सुन, चेत, यदि तू सयाना है तो बे-मतलब समय न खो! जो इस जन्ममें सम्यग्दर्शन नहीं मिला तो फिरसे ऐसे उत्तम मनुष्य जन्मका मिलना बहुत दुर्लभ है!

तीसरी ढालका भावार्थ।

सुखका लक्षण निराकुलता है। उसका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। ये तीनों दो भेद-रूप हैं—निश्चय और व्यवहार। व्यवहार निश्चयका कारण है। आत्माका निश्चय ज्ञान

सम्यग्ज्ञानके दो भेद हैं—एक परोक्ष, दूसरा प्रत्यक्ष। इनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो परोक्ष हैं; क्योंकि ये पाँच इन्द्रिय और मनकी सहायतासे पैदा होते हैं। और अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान देश-प्रत्यक्ष हैं; क्योंकि निर्मल आत्मा इनके द्वारा रूपी द्रव्य और थोड़े क्षेत्रकी बातको जानता है।

सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता।
जानै एकै काल, प्रकट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारण।
इह परमामृत जन्मजरामृत रोग-निवारण॥ ३॥

आन=(वि०) दूसरा।　　परमामृत=(सं०) उत्तम अमृत।
जन्मजरामृत=(सं०) जन्मना, बुढ़ापा और मरना।

पाँचवाँ सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान है। वह सकल-प्रत्यक्ष है। उसके द्वारा केवली भगवान् एक ही समयमें सब द्रव्योंके अनंत गुणोंको और उनकी अनंत अवस्थाओंको प्रगट रूपसे—हथेलीमें रक्खे हुए आँवलेकी तरह—जानते हैं। इस जगतमें जीवोंको सुख देनेवाला ज्ञानके बराबर दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। यह ज्ञान ही उत्तम अमृतके समान है। इस ज्ञानामृतके पीनेसे ही जन्म, जरा और मरण—जो ये तीन भयानक रोग हैं—दूर हो जाते हैं।

कोटिजन्म तप तपै, ज्ञान विन कर्म झरैं जे।
ज्ञानीके छिनमें त्रिगुप्तितैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतमज्ञान विना, सुखलेश न पायौ॥ ४॥

कोटि=(वि०) करोड़ों।　　त्रिगुप्ति=(सं०) मन-वचन-कायका रोकना
ग्रीवक=(सं०) १६ स्वर्गके ऊपर ९ ग्रीवक विमान हैं, यहाँ तक मिथ्यादृष्टि जा सकता है।

ज्ञानके बिना अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मोंमें तप करके जितने कर्मोंको दूर करता है उतने कर्मोंको ज्ञानी जीव एक क्षण भरमें अपने मन, वचन, कायको रोकनेसे सहजमें नाश कर देता है। इस जीवने अनंत बार मुनिव्रत धारण किया और ग्रीवक विमानोंमें भी यह गया; परन्तु आत्म-ज्ञान बिना इसे जरा भी सुख प्राप्त नहीं हुआ।

तातें जिनकर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजै॥
यह मानुषपर्याय, सुकुल, सुनिवो जिनबानी।
इह विधि गये न मिलैं, सुमनि ज्यौं उदधिसमानी॥ ५॥

कथित=(क्रि०) कहा हुआ। अभ्यास करीजै=(क्रि०) पढ़िये।
संशय=(सं०) शंका करना, जैसे कि यह चाँदी है कि सीप है। विभ्रम=(सं०) उलटा मान लेना, जैसे सीपको चाँदी समझना। मोह=(सं०) कुछ जाननेकी परवाह न करना, जैसे मार्गमें जाते हुए पगमें तिनका लगे तो कुछ जाननेका उद्यम न करके यह विचार लेना कि कुछ होगा।
सुमनि=(सं०) सुन्दर रतन। उदधि=(सं०) समुद्र।
समानी=(क्रि०) समा जाय, गिर जाय।

इस लिये जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए तत्त्वों और शास्त्रोंका अभ्यास करना चाहिये और संशय, विभ्रम और विमोह इन तीनों दोषोंको छोड़ कर आत्माको पहचानना चाहिये। यह नरभव, उत्तम कुल तथा जिनवाणीका सुनना जो इस समय मिला है (यदि आत्म-ज्ञान हुए बिना) इसी तरह यह बीत गया तो फिर इनका मिलना वैसा ही कठिन है जैसे समुद्रके भीतर गिरे हुए रतनका मिलना मुश्किल है।

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञानको कारण, स्वपर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनौ॥ ६॥

धन, समाज, हाथी, घोड़ा, राज्य आदि कोई अपने आत्माके काम नहीं आता है। ज्ञान जो आत्माका स्वरूप है, उसीके होनेसे आत्मा निश्चल रहता है। अर्थात् केवलज्ञान अवस्था पाकर एक-रूप रहता है। उस आत्म-ज्ञानका कारण अपने और परायेका विवेक अर्थात् भेद-ज्ञान होना कहा गया है। सो हे भव्य! करोड़ों उपायों द्वारा जिस तरह बने उस विवेकको अपने चित्तमें लाओ।

> जे पूरब शिव गये, जाहिं, अब आगे जै हैं।
> सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं॥
> विषयचाह-दव-दाह, जगतजन अरनि दझावै।
> तास उपाय न आन, ज्ञान-घनघान बुझावै॥ ७॥

दवदाह=(सं०) अग्निका जलना। अरनि=(सं०) वन।
दझावै=(क्रि०) जलता है। घनघान=(सं०) मेघ-समूह।

मुनियोंके नाथ जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि जितने पहले मोक्ष गये, अब जाते हैं और आगे जायँगे उन सबके लिये ज्ञानका प्रभाव ही कारण जानना चाहिये। पंचेन्द्रियोंके विषयोंकी चाह एक जलती हुई आग है, जगतके लोग वनके समान हैं। उन्हें यह आग जला रही है। ऐसी आगके ठण्डा करनेका उपाय सिवा ज्ञान-रूपी मेघोंकी वर्षाके दूसरा नहीं है। अर्थात् ज्ञानके द्वारा विचार करनेसे ही विषयोंकी चाह दूर होती है।

> पुण्य-पाप-फलमाँहि, हरख विलखौ मत भाई।
> यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई॥
> लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ।
> तोरि सकल जग-दंदफंद, नित आतम ध्याओ॥ ८॥

विलखौ=(क्रि०) शोक करना। थाई=(वि०) पैदा होनेवाली।

हे भाई! धनादिक पुण्यके फल हैं उन्हें देख कर खुश मत हो तथा रोग, वियोग आदिको पापका फल जान कर शोक मत कर। क्योंकि ये पाप-पुण्य, पुद्गल-रूप कर्मकी अवस्थायें हैं, जो पैदा होकर नाश हो जाती हैं और फिर पैदा होती हैं। संक्षेपमें लाख बातकी बात यह है; और तुम अपने मनमें उस पर निश्चय लाओ कि जगतके सब धंद-फंद तोड़ कर नित्य आत्माका ध्यान करना चाहिए। (मतलब यह है कि जितना बने संसारसे राग कम करके आत्मासे प्रीति करो। यह प्रयोजन नहीं है कि गृहस्थ रह कर ही सब काम कम करके आलसी हो जाओ; किन्तु न्याय-पूर्वक उद्यम करो। जितना समय आत्म-विचारके लिये बचा सको उतना अच्छा है।)

सम्यकज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै।
त्रसहिंसाको त्याग, वृथा थावर न सँघारै।
परवधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै॥ ९॥

बहुरि=(सं० अ०) फिर। सँघारै=(क्रि०) नाश करे।
परवधकार=(वि०) दूसरेके प्राण लेनेवाले।

सम्यग्ज्ञानी होकर फिर दृढ़तासे सम्यक्चारित्रको पालना चाहिये। इस चारित्रके दो भेद हैं—एक सकल-देश, दूसरा एक-देश। (सकल-चारित्र मुनि पालते हैं जिसका वर्णन पाँचवी ढालमें है। यहाँ देश-चारित्रका वर्णन करते हैं, जिसे श्रावक पालते हैं। श्रावकोंके १२ व्रत होते हैं, उन्हें क्रमसे कहते हैं।)

त्रस जीवोंकी हिंसा त्याग[1] कर बे-मतलब स्थावर जीवोंको भी नाश नहीं करना सो पहला अहिंसाणुव्रत है। दूसरेके प्राण-नाशक, कठोर,

[1] जब तक गृहस्थी आरम्भका त्याग न करे तब तक उसके व्यापारादिके आरम्भमें त्रस-हिंसाका सर्वथा त्याग नहीं है। पर वह सब काम यत्न-पूर्वक करता है।

निन्दा-योग्य जो झूठे और खोटे वचन हैं उन्हें न कहना सो दूसरा सत्याणुव्रत है।

जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निजवनिता बिन सकलनारिसों रहै विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दस दिश गमनप्रमान ठान, तसु सीम न नाखै॥ १०॥

मृत्तिका=(सं०) मिट्टी। अदत्ता=(वि०) बिना दिये हुए।
वनिता=(सं०) स्त्री। विरत्ता=(वि०) उदास।
सीम=(सं०) मर्यादा, हद। नाखै=(वि०) तोड़े।
प्रमाण=(सं०) गिनती।

जल और मिट्टीके बिना दूसरी कोई चीज दूसरेकी बिना दी हुई न लेना सो तीसरा अचौर्य्य अणुव्रत है। अपनी विवाहिता स्त्रीके सिवा और स्त्रियोंसे उदास रहना सो चौथा स्वस्त्री-सन्तोष अणुव्रत है। अपनी शक्तिका खयाल कर जन्म भरके लिये धन, धरती, मकान आदि परिग्रहका थोड़ा प्रमाण करना कि इससे अधिक न रक्खेंगे सो पाँचवाँ **परिग्रहप्रमाण** अणुव्रत है। (ये पाँच अणुव्रत हुए)। जन्म भरके लिये दश दिशाओंमें जानेकी मर्यादाका प्रमाण करके फिर उस मर्यादाको नहीं तोड़ना सो दिग्व्रत नाम पहला गुणव्रत है।

ताहूमें फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण, ठान अन सकल निवारा॥
काहूकी धनहानि, किसी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषीतैं॥ ११॥

ग्राम=(सं०) गाँव। गमनागमन=(वि०) जाने-आनेका।
अघ=(सं०) पाप। कृषी=(सं०) खेती।

उस जन्म-पर्यंतकी दश दिशाओंकी मर्यादामें भी एक दिन, पाँच दिन,

दस दिन ऐसे थोड़े समयके लिये कोई गाँव, कोई गली, कोई घर, कोई बाग, और कोई बाजार तक जाने-आनेकी मर्यादा बाँधना और उसके आगे न जाना सो दूसरा **देशव्रत** नामा गुणव्रत है । (अब तीसरा गुणव्रत जो अनर्थदंड है उसके पाँच भेद कहते हैं।) किसीके धनका नाश हो, किसीकी जीत हो, किसीकी हार हो ऐसा विचार न करना पहला **अपध्यान** नामा अनर्थदंड है, उसे न करना। व्यापार या खेती करनेका दूसरेको उपदेश देना जिससे पापका प्रचार हो, उसे **पापोपदेश** नामा दूसरा अनर्थदंड है, उसे न करना।

> कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ।
> असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधै ॥
> राग द्वेष करतार, कथा कबहू न सुनीजे ।
> औरहु अनरथदंड, हेतु अघ तिन्हें न कीजे ॥ १९ ॥

पावक=(सं०) अग्नि । विराधै=(क्रि०) नाश करे ।
हिंसोपकरण=(सं०) ऐसे हथियार या वस्तु जिससे हिंसा हो; जैसे—घूसदान; बरछा, तलवार आदि ।
लाधै=(क्रि०) लूटे ।

आलस्य करके वे-मतलब, पानी ढोलना, जमीन खोदना, झाड़ काटना, आग जलाना या बुझाना यह **प्रमादचर्या** नाम तीसरा अनर्थदंड है, उसे न करना। खड्ग, धनुष, हल या दूसरी हिंसा करनेवाली वस्तुएँ दूसरोंको देकर यश लूटना सो चौथा **हिंसादान** नामा अनर्थदंड है, उसे न करना। जिन कथा-कहानी किस्सोंसे मनमें राग-द्वेष हो ऐसी स्त्री, भोजन, राज, चोर कथा कहना या सुनना सो **दुःश्रुति** नामा पाँचवाँ अनर्थदंड है, उसे न करना। और भी अनर्थ काम जिनसे पाप बँध हो, उन्हें नहीं करना चाहिये।

(तीन गुणव्रतका स्वरूप समाप्त हुआ ।)

पाँचवीं ढाल।

चाल छन्द १४ मात्रा।

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भवभोगनतें वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतौ अनुप्रेक्षा भाई॥ १॥

सकलव्रती=(वि०) पूर्ण पंच महाव्रतधारी। उपावन=(क्रि०) पैदा करनेको।
बड़भागी=(वि०) पुण्यवान्। अनुप्रेक्षा=(सं०) बारह भावना।

हे भाई! जो पुण्यवान् अहिंसा आदि पाँच महाव्रत धारण कर संसार और भोगोंसे उदास होकर मुनि होते हैं वे वैराग्यको पैदा करनेके लिये माताके समान बारह भावनाओंका बार-बार विचार करते हैं।

इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै॥ २॥

जागै=(क्रि०) प्रकाशित होता है। जिमि=(अव्यय) जैसे।
ज्वलन=(सं०) अग्नि। ठानै=(क्रि०) प्राप्त करता है।

इन बारह भावनाओंके चिन्तन करनेसे समता-रूपी सुख प्रकाशमान होता है; जैसे वायुके लगनेसे अग्नि प्रकाशित होती है। जब यह जीव आत्माको जानता है तब मोक्ष सुखको प्राप्त करता है।

जोवन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रीय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥ ३॥

हय=(सं०) घोड़ा। गय=(सं०) हाथी।
सुरधनु=(सं०) इंद्रधनुष जो बरसातमें निकलता है। चपला=(सं०) बिजली।
चपलाई=(वि०) चंचलता।

यौवन, घर, गौ, धन, स्त्री, घोड़ा, हाथी, अपनी आज्ञा माननेवाले नौकर, तथा इन्द्रियोंके भोग ये सब क्षणिक हैं; कोई सदा अपने पास

रहनेवाले नहीं हैं। जैसे इंद्र-धनुष देखते देखते नष्ट हो जाता है और बिजली झटसे चमक कर नष्ट हो जाती है, वैसे ही धन आदिका संयोग है; पुण्य क्षीण होनेसे सब चला जाता है। यह पहली अनित्य-भावना है।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ॥
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥

खगाधिप=(सं०) विद्याधरोंके ईश चक्रवर्ती। हरि=(सं०) सिंह। दले=(क्रि०) नष्ट कर देता है।

जैसे सिंह हिरणको मार डालता है उसी तरह काल देवता, असुर, चक्रवर्ती अथवा चाहे कोई भी क्यों न हो, सबको नाश कर डालता है। मणि, मंत्र-तंत्र आदि कितने ही उपाय क्यों न किये जायँ, परन्तु कोई भी मरणसे बचा नहीं सकता। यह दूसरी अशरण-भावना है।

चहुँगति दुख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, तामें सुख नाहिं लगारा ॥ ५ ॥

भरै हैं=(क्रि०) सहते हैं। लगारा=(वि०) थोड़ासा भी। असार=जिसमें कुछ सार नहीं है।

जीव (कर्मोंके उदयसे) चारों गतियोंमें दुःख सहन करते हैं और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ऐसे पाँच परिवर्तन किया करते हैं। संसार सब तरहसे असार है, इसमें थोड़ासा भी सुख नहीं है। यह तीसरी संसार-भावना है।

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते ॥
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ६ ॥

एकहि=(वि०) अकेला। दारा=(सं०) स्त्री। सीरी=(वि०) साझी, साथी। भीरी=भीड़ करनेवाले, सगे।

अपने पुण्य और पाप-कर्मोंके जो अच्छे बुरे फल हैं उन्हें यह जीव अकेला ही भोगता है। पुत्र, स्त्री आदि कोई भी दुःख सुखके साझी नहीं होते हैं। अर्थात् पुत्र, स्त्री आदि सब अपने अपने मतलबके सगे हैं। यह चौथी एकत्व-भावना है।

जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं मेला।
तौ प्रगट जुदे धन धामा, क्यों है इक मिलि सुत रामा॥ ७॥

पय=(सं०) दूध। मेला=(वि०) मिला हुआ।
मेला=(वि०) मिलाप। धामा=(सं०) जगह, स्थान।
रामा=(सं०) स्त्री।

जल और दूधकी तरह शरीर और जीवका मेल हो रहा है; परन्तु हैं दोनों अलग अलग; एक नहीं हैं। जब ये अनादि कालसे मिले हुए होकर भी अलग अलग हैं तब धन, मकान, पुत्र-स्त्री आदि जो सर्वथा ही अपनेसे पृथक् हैं, अपने कैसे होंगे? यह पाँचवीं अन्यत्व-भावना है।

पल रुधिरराधमलथैली, कीकस वसादितें मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी॥ ८॥

पल=(सं०) मांस। कीकस=(सं०) हाड़।
रुधिर=(सं०) खून। वसा=(सं०) चरबी।
राध= (सं) पीप। नव द्वार=शरीरसे मैल बाहर आनेके नौ रास्ते हैं। दो आँख, दो कान, दो नाकके छिद्र, एक मुख, दो नीचेके गुह्य स्थान। यारी=(सं०) प्रीति।

यह देह मांस, खून, पीब और विष्टाकी थैली अर्थात् कोथली है; हाड़, चरबी आदि अपवित्र वस्तुओंके कारण मलीन है। जिस देहके नव रास्तोंसे चित्तको घृणा उत्पन्न करनेवाला मैल बहा करता है उस अपावन देहसे कैसे प्रीति करनी चाहिये? अर्थात् नहीं करनी चाहिये। यह छठी अशुचि-भावना है।

जो जोगनकी चपलाई, तातें है आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हें निरवेरे ॥ ९ ॥

बुधिवंत=(सं०) बुद्धिमान्, विचारवान्। निरवेरे=(क्रि०) दूर करे।

हे भाई! मन-वचन-कायके चंचलपनेसे कर्मोंका आना होता है, यह कर्मोंका आस्रव बहुत ही दुखदाई है। विचारवान पुरुष इन आस्रवोंको दूर करनेकी कोशिश करते हैं। यह सातवीं आस्रव-भावना है।

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना॥
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥ १० ॥

जिन जीवोंने अपने भावोंको पुण्य और पाप-रूप न होने देकर आत्म-विचारमें अपने मनको लगाया, उन्होंने ही आते हुए कर्मोंको रोका और संवरकी प्राप्ति कर सुख प्राप्त किया। यह आठवीं संवर-भावना है।

निज काल पाय विधि झरना, तासों निजकाज न सरना॥
तपकरि जो कर्म खपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥ ११ ॥

सरना=(क्रि०) होना। खपावै=(क्रि०,) दूर करता है।

अपना काल पाकर जो कर्म झड़ जाते हैं उससे अपना काम नहीं होनेका है। किन्तु तप करके जो कर्मोंको उनकी स्थिति पूरी होनेके पहले ही नष्ट करता है, वही मोक्ष-सुख अपनेमें दिखलाता है—यह नवमी निर्जरा-भावना है।

किनहूँ न करौ न धरै को, षटद्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहिं विन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥

धरै=(क्रि०) उठाना। हरै= (क्रि०) नाश करना।

इस संसारको किसीने न बनाया है और न कोई इसको उठाये हुए है। किन्तु यह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ऐसे छह

द्रव्योंसे भरा हुआ है। कोई इसका कभी नाश नहीं कर सकता (इस लोकके चारों तरफ तीन तरहकी वायु है, जो इसे थामे हुए है)। ऐसे लोकके भीतर यह जीव बिना समता अर्थात् वीतरागताके नित्य घूमा करता है और दुःख सहा करता है। यह दसवीं लोक-भावना है।

अंतिम ग्रीवकलोंकी हद, पायो अनंत विरियाँ पद॥
पर सम्यकज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निजमें मुनि साधौ॥ १३॥

विरियाँ=(क्रि० वि०) वार, दफे। लाधौ=(क्रि०) प्राप्त किया। दुर्लभ=(वि०) कठिन।

इस जीवने नौ ग्रीवक तक जा-जा कर अनंत बार वहाँका अहमिंद्र-पद पाया; परन्तु सम्यग्ज्ञान इसे प्राप्त न हुआ। ऐसे कठिन सम्यग्ज्ञानको मुनियोंने आत्मामें साधन किया है। यह ग्यारहवीं बोधदुर्लभ-भावना है।

जे भाव मोहतैं न्यारे, दृगज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तबही सुख अचल निहारै॥ १४॥

दृग=(सं०) सम्यग्दर्शन। अचल=(वि०) जो चंचल न हो, थिर।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आदिक जितने भाव हैं वे सब मोहभावसे जुदा हैं और ये ही भाव धर्म-रूप हैं। इस धर्मको जब जीव धारण करता है तब ही वह स्थिर सुखको प्राप्त करता है। यह बारहवीं धर्म-भावना है।

सो धर्म मुनिनकरि धरियें, तिनकी करतूति उचरियें।
ताकों सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी॥ १५॥

करतूति=(सं०) क्रियायें। उचरियें=(क्रि०) कहते हैं। अनुभूति=(सं०) अनुभव, हृदयका विचार।

ऐसा जो धर्म है उसको (सम्पूर्णपने) मुनि पालते हैं। मुनियोंकी क्रिया आगे कही जाती है। सो हे भव्य ! उन्हें सुन कर अपने अनुभवकी पहचान करो।

पाँचवीं ढालका भावार्थ।

इसमें बारह भावनाओंका स्वरूप थोड़ेमें कहा गया है। इनका विशेष स्वरूप स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा या ज्ञानार्णवमें देख कर समझना चाहिये। मुनि तो रोज इनका विचार करते ही हैं; परन्तु श्रावकोंको भी इनके चिंतन द्वारा अपने मनको कोमल करना चाहिये। इन भावनाओंके विचारसे धर्ममें विशेष प्रीति होती है।

छठी ढाल।

हरिगीता छंद २८ मात्रा।

षटकाय जीवन हननतें सब, विध दरवहिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतें, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल तृण, हू बिना दीयौ गहैं।
अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं॥ १॥

षटकाय=(सं०) छह कायके जीव (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस)।

हनन=(क्रि०) मारना। अवतरी=(क्रि०) आई।
मृषा=(सं०) झूठ। तृण=(सं०) घास।
सहस=(सं०) हजार। चिद्ब्रह्म=(सं०) चैतन्य-रूप आतमा।

द्रव्योंसे भरा हुआ है। कोई इसका कभी नाश नहीं कर सकता (इस लोकके चारों तरफ तीन तरहकी वायु है, जो इसे थामे हुए है)। ऐसे लोकके भीतर यह जीव विना समता अर्थात् वीतरागताके नित्य घूमा करता है और दुःख सहा करता है। यह दसवीं लोक-भावना है।

अंतिम ग्रीवकलोंकी हद, पायौ अनंत बिरियाँ पद ॥
पर सम्यकज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निजमें मुनि साधौ ॥ १३ ॥

बिरियाँ=(क्रि० वि०) बार, दफे। लाधौ=(क्रि०) प्राप्त किया।
दुर्लभ=(वि०) कठिन।

इस जीवने नौ ग्रीवक तक जा-जा कर अनंत बार वहाँका अहमिंद्र-पद पाया; परन्तु सम्यग्ज्ञान इसे प्राप्त न हुआ। ऐसे कठिन सम्यग्ज्ञानको मुनियोंने आत्मामें साधन किया है। यह ग्यारहवीं बोधदुर्लभ-भावना है।

जे भाव मोहतैं न्यारे, दृगज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तबही सुख अचल निहारै ॥ १४ ॥

दृग=(सं०) सम्यग्दर्शन। अचल=(वि०) जो चंचल न हो, थिर।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आदिक जितने भाव हैं वे सब मोहभावसे जुदा हैं और ये ही भाव धर्म-रूप हैं। इस धर्मको जब जीव धारण करता है तब ही वह स्थिर सुखको प्राप्त करता है। यह बारहवीं धर्म-भावना है।

सो धर्म मुनिनकरि धरियें, तिनकी करतूति उचरियें।
ताकों सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १५ ॥

करतूति=(सं०) क्रियायें। उचरियें=(क्रि०) कहते हैं।
अनुभूति=(सं०) अनुभव, हृदयका विचार।

ऐसा जो धर्म है उसको (सम्पूर्णपने) मुनि पालते हैं। मुनियोंकी क्रिया आगे कही जाती है। सो हे भव्य ! उन्हें सुन कर अपने अनुभवकी पहचान करो।

पाँचवीं ढालका भावार्थ।

इसमें बारह भावनाओंका स्वरूप थोड़ेमें कहा गया है। इनका विशेष स्वरूप स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा या ज्ञानार्णवमें देख कर समझना चाहिये। मुनि तो रोज इनका विचार करते ही हैं; परन्तु श्रावकोंको भी इनके चिंतन द्वारा अपने मनको कोमल करना चाहिये। इन भावनाओंके विचारसे धर्ममें विशेष प्रीति होती है।

छठी ढाल।

हरिगीता छंद २८ मात्रा।

षटकाय जीवन हननतें सब, विध दरवहिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतें, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल तृण, हू विना दीयौ गहैं।
अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं॥ १॥

षटकाय=(सं०) छह कायके जीव (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस)।
हनन=(क्रि०) मारना।
अवतरी=(क्रि०) आई।
मृषा=(सं०) झूठ।
तृण=(सं०) घास।
सहस=(सं०) हजार।
चिद्ब्रह्म=(सं०) चैतन्य-रूप आत्मा।

मुनिराज छह कायके जीवोंको नहीं मारते; किन्तु उनकी रक्षा करते हैं; इस लिये वे द्रव्यहिंसा नहीं करते। और राग, द्वेष, मोह आदि भावोंको उन्होंने नष्ट कर दिया है, इस लिये भावहिंसा भी वे नहीं करते, यह अहिंसा-महाव्रत है। वे कभी थोड़ासा भी झूठ नहीं बोलते, यह सत्य-महाव्रत है। वे विना दिया जल तथा तृणं तक भी नहीं छूते, यह अचौर्य-महाव्रत है। वे अठारह हजार शीलके भेदोंका पालन कर स्त्री मात्रके त्यागी होते हैं और निरन्तर अपने आत्माका अनुभव किया करते हैं, यह ब्रह्मचर्य-महाव्रत है।

अंतर चतुर्दश भेद वाहर, संग दशधातें टलें।
परमाद तजि चौ कर मही लखि, समिति ईर्यातें चलें॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुतिसुखद सब संशय हरें।
भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुख-चंद्रतें अमृत झरें॥ २॥

धा=(वि०) तरह।
चौ=(वि०) चार।
कर=(सं०) हाथ।
भ्रमरोगहर=(वि०) मिथ्यात्व-रूपी रोगके हरनेवाले।
मही=(सं०) जमीन, पृथ्वी।
श्रुति=(सं०) कान।
सुखद=(वि०) सुखदाई।
संशय=(सं०) शंका, शक।

वे चौदह प्रकार अंतरंग और दस प्रकार वहिरंग परिग्रह रहित हैं, यह पाचवाँ परिग्रहत्याग-महाव्रत है। जो मुनि आलस्य छोड़ कर और चार हाथ जमीन देख कर चलते हैं, यह पहली ईर्या-समिति है। जिनके मुख-रूपी चन्द्रमासे संसारका उपकार करनेवाले, सब तरहकी बुराइयोंको नष्ट करनेवाले, कानोंको सुखकारी, सब प्रकारका सन्देह दूर करनेवाले और मिथ्यात्व-रूपी रोगके नाशक अमृतके जैसे वचन निकलते हैं, यह दूसरी भाषा-समिति है।

छ्यालीस दोष विना सुकुल-श्रावकतनैं घर अशनको।
लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसनको॥
शुचि ज्ञान संजम उपकरण लखिकैं, गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जंतु थान विलोक तन-मल, मूत्र श्लेपम परिहरैं॥ ३॥

अशन=(सं०) भोजन।
शुचि=(वि०) पवित्र।
रस=(सं०) छह रस–दूधै, दही,
घीं, तेलै, मीठौं, नमकै।
परिहरैं=(क्रि०) छोड़ते हैं।
ज्ञान-उपकरण=(सं०) ज्ञानका पात्र, शास्त्र।
संयम उपकरण=(सं०) संयमका पात्र, पींछी कमंडलु।
निर्जंतु=(वि०) जीव-रहित।
श्लेपम=(सं०) नाक, थूक।

जो मुनि छ्यालीस दोषोंको टाल कर कुलीन श्रावकके घर केवल तप-वृद्धिके अभिप्रायसे आहार करते हैं, शरीरके पुष्ट करनेका जिनका मतलब नहीं है; यह तीसरी एषणा-समिति है। जो पवित्र शास्त्र और पींछी-कमंडलु आदि उपकरणोंको देख कर उठाते और देख कर धरते हैं, यह चौथी आदाननिक्षेपण-समिति है। जो जीव-रहित जगह देख कर मल, मूत्र आदि छोड़ते हैं, यह पाँचवीं व्युत्सर्ग-समिति है।

सम्यकप्रकार निरोध मन-वच काय, आतम ध्यावते।
तिन सुथिरमुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते॥
रस, रूप, गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रियजयन पद पावने॥ ४॥

संम्यक=(क्रि० वि०) भला।
निरोध=(क्रि०) रोक कर।
सुथिर=(वि०) एकाग्र, ध्यानमें लीन।
मुद्रा=(सं०) रूप, मूर्ति।
मृगगण=(सं०) हिरणके समूह।
उपल=(सं०) पत्थर।
विरोध=(सं०) द्वेष।

जब मुनिराज भले प्रकार मन, वचन और कायको रोक कर अपने आत्माका ध्यान करते हैं, उस समय हिरण उन्हें ध्यानमें लीन देख कर

और यह समझ कर कि यह पत्थरकी मूर्ति है, उनकी देहसे अपने शरीरकी खाज खुजाया करते हैं। ये मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ऐसी तीन गुप्तियाँ कहलाती हैं। जो पाँच इन्द्रियोंके विषयोंमें—रस अर्थात् स्वाद लेने, रूप अर्थात् देखने, गंध अर्थात् सूंघने, फरस अर्थात् छूने, और शब्द अर्थात् सुननेमें—ये फिर सुहावने हों अथवा असुहावने, राग-द्वेष नहीं करते वे पंचेंद्रिय-जयी अर्थात् जितेन्द्रिय पदको पाते हैं।

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेवकी।
नित करैं श्रुतिरति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेयको॥
जिनके न न्हौन न दंतधोवन, लेश अंबरआवरन।
भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु, शयन एकासन करन॥ ५॥

समता=(सं०) सामायिक।
सम्हारैं=(क्रि०) सँभालके करें।
थुति=(सं०) स्तुति, गुणगान।
तनअहमेव=(सं०) शरीर ही को आत्मा मानना अर्थात् ऐसा न करके कायोत्सर्ग करना।
शयन=(सं०) नींद लेना।
श्रुतिरति=(सं०) स्वाध्याय।
प्रतिक्रम=(सं०) पिछले किये दोषों पर पछताना और दंड लेना।
अंबर-आवरन=(क्रि०) कपड़ा पहनना।
रयनि=(सं०) रात।
एकासन=(सं०) एक करवट।

जो मुनि सामायिक करते हैं, भगवानकी स्तुति करते हैं, जिनदेवकी वन्दना करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग करते हैं; जो स्नान नहीं करते, दाँत नहीं धोते, जरासा भी कपड़ा नहीं पहिनते, जमीन पर पिछली रातको एक ही करवट थोड़ी नींद लेते हैं; तथा:—

इक बार दिनमें लैं अहार, खड़े अलप निज पानमें।
कचलोंच करत न डरत परिषह-सों लगे निज ध्यानमें॥

अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निन्दन थुतिकरन।
अर्घावतारन असि प्रहारन-में सदा ममता धरन ॥ ६ ॥

पान=(सं०) हाथ।
कच=(सं०) बाल।
लोंच=(सं०) नोचना।
असि प्रहारन=(सं०) तलवार मारना।
परिषह=(सं०) दुःख।
अरि=(सं०) शत्रु।
अर्घावतारन=(सं०) अर्घ उतारना।

जो दिनमें एक-बार थोड़ासा आहार लेते हैं, वह भी खड़े होकर और अपने हाथ हीका पात्र बना कर; जो अपने हाथोंसे बालोंका लोंच करते हैं और जो परिषह आदिसे न डर कर अपने आत्म-ध्यानमें लीन रहते हैं—ये साधुओंके २८ मूलगुण हैं; साधुओंमें होने ही चाहिये। जैसे ५ महाव्रत +, ५ समिति +, ५ इन्द्रिय-जय +, ६ आवश्यक +, १ न न्हाना +, १ न दाँत धोना +, १ नग्न रहना +, १ जमीन पर सोना +, १ एक-बार भोजन करना +, १ हाथोंसे खड़े हुए लेना +, १ अपने बालोंका लोंच करना=२८। और जिनके लिये शत्रु और मित्र, महल और मसान, सोना और काच, निन्दा और स्तुति तथा पूजन करना या तलवार चलाना ये सब समान हैं। हर एक अवस्थामें जो सदा शान्त-चित्त रहा करते हैं।

तप तपैं द्वादस धरैं वृष दस, रतन त्रय सेवैं सदा।
मुनि साथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा॥
यों सकल संयमचरित, सुनिये, स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै परकी प्रवृति सब ॥ ७ ॥

द्वादस तप=(सं०) बारह तप, जैसे १—अनशन (उपवास करना), २—ऊनोदर (भूखसे कम खाना), ३—व्रतपरिसंख्यान (भोजनके लिये जाते समय घर आदिका नियम करना), ४—रसपरित्याग (छह या एक दो रस छोड़ना), ५—विविक्तशय्यासन (अलग स्थानमें सोना, बैठना), ६—कायक्लेश (शरीरको कष्ट देकर नदी किनारे आदि स्थानमें तप करना)—ये छह बाह्य-तप हैं। प्राय-

श्चित्त (दोषोंका दंड लेना), २–विनय (रत्नत्रय या उसके धारकोंका विनय करना), ३–वैयावृत्य (रोगी या, वृद्ध मुनिकी सेवा करना), ४–स्वाध्याय (शास्त्र पढ़ना), ५–कायोत्सर्ग (खड़े होकर योग साधना), ६–ध्यान (धर्म या शुक्लध्यानका चिन्तन करना—ये छह अंतरंग-तप हैं। ऐसे १२ तप हुए। दस-वृष=(सं०) दस धर्म, जैसे, १–उत्तम क्षमा (क्रोध न करना), २–उत्तम मार्दव (मान न करना), ३–उत्तम आर्जव (कपट न करना), ४–उत्तम सत्य (सत्य बोलना), ५–उत्तम शौच (लोभ न करना), ६–उत्तम संयम (नियम-आखड़ी लेना), ७–उत्तम तप (तपश्चर्या करना), ८–उत्तम त्याग (दान करना), ९–उत्तम आकिंचन (संसारमें अपना कुछ न समझ परिग्रहका त्याग करना), १०–उत्तम ब्रह्मचर्य (स्त्री मात्रका त्याग करना)। रत्नत्रय=(सं०) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।

विचरें=(क्रि०) विहार करें।

स्वरूपाचरन=(सं०) निश्चय आत्म-लीन चारित्र (ज्ञानादि)।

निधि=(सं०) दौलत।

प्रवृत्ति=चलना।

जो मुनिराज बारह प्रकार तप और दस-लक्षण धर्म धारण करते हैं, सदा रत्नत्रयका पालन करते हैं। जो कभी दूसरे मुनिके साथमें या कभी अकेले विहार करते हैं और संसारके सुखको कभी नहीं चाहते हैं। इस प्रकार मुनिका सकल-चारित्र वर्णन किया। अब निश्चय चारित्र—आत्म-चारित्र—को कहते हैं, जिससे अपने आत्माकी ज्ञानादि सम्पत्ति प्रगट होती है और पर वस्तुमें सब प्रकारकी प्रवृत्ति मिटती है।

जिन परम पैनी सुबुधि-छैनी, डारि अंतर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भावको न्यारा किया॥
निजमाहिं निजके हेत निजकर, आपको आपै गह्यौ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मझार कछु भेद न रह्यौ॥ ८॥

छैनी=(सं०) छेद काटनेवाली। वरणादि=(सं०) पुद्गलके वर्ण आदि बीस गुण।

सुबुधि=(वि०) भेद ज्ञान, दो मिली हुई चीजोंको अलग अलग करनेका ज्ञान।
न्यारा=(वि०) जुदा, अलग। गुणी=(सं०) जिसके भीतर गुण हों।
छैनी=(सं०) छीनी। ज्ञाता=(सं०) जाननेवाला आत्मा।
भेदिया=(क्रि०) तोड़ कर। ज्ञान=(सं०) जिससे जाने।
मझार=(सं० अ०) भीतर। ज्ञेय=(सं०) जिसको जाने-पदार्थ।

जब मुनि स्वरूपाचरणके समय भेदज्ञान-रूपी बहुत तेज छेनीसे अपने अंतरंगका परदा तोड़ कर और शरीरके वर्ण आदि बीस गुणों और राग, द्वेप, क्रोध, मान आदि भावोंसे अपने आत्मिक भावको जुदा कर अपने आत्मामें, अपने आत्म-हितके लिये, अपने आत्माके द्वारा, अपने आत्माको आप ही ग्रहण करते हैं तब गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयके भीतर कुछ भेद नहीं रह जाता है। अर्थात् ध्यानमय अवस्थामें सब एक हो जाते हैं; विकल्प मिट जाते हैं।

जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न, विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोगकी निश्चल दशा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा एकै लसा॥ ९॥

विकल्प=(सं०) भेद। चिद्भाव=(सं०) आत्मिक भाव।
चिदेश=(सं०) आत्मा। अभिन्न=(वि०) एक, दूसरेसे जुदा नहीं।
अखिन्न=(वि०) एक दूसरेसे न टूटनेवाले। उपयोग=(सं०) भाव।
ध्याता=(सं०) ध्यान करनेवाला।
ध्येय=(सं०) जिसका ध्यान किया जाय।

जिस आत्म-ध्यान अवस्थामें न ध्यान, न ध्याता और न ध्येयका कोई भेद है और न वचनसे कहने लायक ही इनमें भेद है; उसमें तो आत्मा ही कर्म, आत्मा ही कर्ता और आत्माका भाव ही क्रिया है। यह कर्ता-कर्म-क्रियाभाव बिलकुल जुदा नहीं है और न एक दूसरेसे

टूटने लायक ही है। यहाँ तो शुद्ध-भावकी स्थिर अवस्था है, जिसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी एक-रूप होकर प्रकाशमान हो रहे हैं।

परमाण नय निक्षेपको न, उद्योत अनुभवमें दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नाहिं आन भाव जु मोविखै॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चितपिंड चंड अखंड सुगुण-करंड च्युत पुनि कलनितैं॥१०॥

परमाण=(सं०) प्रत्यक्ष, परोक्षप्रमाण। नय=(सं०) नैगमादि नय।
निक्षेप=(सं०) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। उद्योत=(सं०) प्रकाश।
साध्य=(सं०) जिसकी सिद्धि की जाय। अबाधक=(सं०) बाधा-रहित।
साधक=(सं०) सिद्धि करनेवाला। चंड=(वि०) तेजस्वी।
कलनि=(सं०) पाप। करंड=(सं०) पिटारा।

जिस ध्यान-अवस्थामें प्रमाण, नय, निक्षेपका प्रकाश अनुभवमें नहीं आता; किन्तु उस समय आत्मा विचारता है कि मैं दर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य-रूप हूँ, मुझमें दूसरा कोई भाव नहीं है। मैं ही साध्य हूँ और मैं ही साधक हूँ, तथा कर्म और उनके फलसे रहित भी मैं ही हूँ। मैं चैतन्यका पिंड अर्थात् समूह हूँ और मैं ही प्रचंड, खंड-रहित, उत्तम गुणोंका पिटारा तथा सर्व पापसे अलग हूँ।

यों चिन्त्य निजमें थिर भये तिन, अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्रके नाहीं कह्यौ॥
तबही शुकलध्यानाग्नि करि चउ-घातविधि-कानन दह्यौ।
सब लख्यौ केवलज्ञानकरि, भविलोकको शिवमग कह्यौ॥११॥

कानन=(सं०) वन। अकथ=(वि०) जिसका वर्णन नहीं नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार विचार कर मुनिराज जब आत्म-ध्यानमें लीन हो जाते हैं तब उन्हें जो आनन्द, जो सुख प्राप्त होता है वह आनन्द, वह सुख न इन्द्रको मिलता है, न नागेन्द्रको मिलता है, न चक्रवर्तीको मिलता है

और न अहमिन्द्रको मिलता है । उस समय वे शुक्लध्यान-रूपी अग्निके द्वारा चार घातिया कर्म-रूपी वनको भस्म कर केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं और उसके द्वारा तीनों कालकी बातोंको (हाथमें रखे हुए आँवलेकी तरह) जान कर भव्य पुरुषोंको मोक्ष-मार्गका उपदेश करते हैं। वह उनकी अरहन्त अवस्था कहलाती है ।

पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसैं।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुध, चिद्रूप अविनाशी भये ॥ १२ ॥

शेष=(वि०) बाकी । अष्टम भू=(सं०) मोक्ष ।
पारावार=(सं०) समुद्र । अविकार=(वि०) दोष-रहित ।
लसैं=(क्रि०) शोभते हुए ।

इसके बाद वे आयु, नाम, गोत्र, और वेदनी इन चार अघातिया कर्मोंका भी क्षण भरमें नाश कर मोक्ष चले जाते हैं । आठ-कर्मोंका नाश होनेसे उनमें सम्यक्त आदि आठ गुण प्रकट हो जाते हैं । जैसे मोहके नाशसे सम्यक्त, ज्ञानावरणीके नाशसे ज्ञान, दर्शनावरणीके नाशसे दर्शन, अन्तरायके नाशसे वीर्य, आयुके नाशसे अवगाहना, नामके नाशसे सूक्ष्मत्व, गोत्रके नाशसे अगुरुलघु और वेदनीके नाशसे अव्याबाध । वे संसार-रूपी समुद्रको तिर कर और उसके पार पहुँच कर विकार, शरीर और रूप-रहित हो शुद्ध चैतन्य-मय अविनाशी सिद्ध हो जाते हैं ।

निजमाहिं लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादी भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥ १३ ॥

प्रतिबिम्बित गये=(क्रि०) झलकते हैं । परणवेंगे=(क्रि०) रहेंगे ।
वर=(वि०) उत्तम ।

सिद्ध भगवान्की आत्मामें तीन लोक और अलोक अपने गुण-पर्याय सहित ऐसे झलकते हैं जैसे दर्पणमें पदार्थ झलकते हैं । मोक्षमें जैसे और सिद्ध हैं वैसे ये भी अनन्तानन्त काल तक रहेंगे । वे जीव धन्य हैं जिन्होंने मनुष्य-भव पाकर ऐसा काम किया । ऐसे ही जीवोंने अनादि-कालसे चले आये पंच परावर्तन-रूप संसारका त्यागकर उत्तम सुखकी प्राप्ति की है ।

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयसजल-जगमल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरौ ।
जबलौं न रोग जरा गहै तबलौं, झटिति निजहित करौ ॥ १४ ॥

मुख्योपचार=(सं०) निश्चय, व्यवहार । बड़भागि=पुण्यवान् ।

जो पुण्यवान् जीव निश्चय और व्यवहार ऐसे दो भेद-रूप रत्नत्रयको धारण करते हैं और धारण करेंगे वे मोक्षको प्राप्त करेंगे तथा उनका सुयश-रूपी जल संसारके मैलको हरेगा । यह जान कर आलस्य-रहित हो और साहस-पूर्वक यह उपदेश गृहण करो कि जब तक रोग और बुढ़ापा नहीं आवे तब तक जल्दीसे अपना भला कर डालें ।

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये ॥
कहा रच्यो पर पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै ।
अब दौल होउ सुखी स्वपद-रचि दाव मत चूकौ यहै ॥ १५ ॥

समामृत=(सं०) समता-रूपी अमृत । चिर=(क्रि० वि०) सदासे ।

संसारमें राग-रूपी आग सदासे जल रही है (जिससे जीव दुखी हो रहे हैं), इस लिये समता-रूपी अमृत पीना चाहिये। सदासे विषय-कषायोंको सेवन किया, अब इन्हें छोड़ कर अपना (सिद्ध) पद प्राप्त करना चाहिये। तू पर वस्तुमें क्यों लुभा रहा है, यह तेरा पद नहीं है; क्यों तू दुःख सहता है। हे दौलतराम ! अब अपने आत्म-पदमें मन लगा कर इस अवसरको मत खोओ।

छठी ढालका भावार्थ।

इसमें मुनिका तेरह प्रकार चारित्र (५ महाव्रत + ५ समिति + ३ गुप्ति) तथा अट्ठाईस मूलगुण कहे गये हैं। पश्चात् निश्चय-चारित्रका वर्णन करते हुए शुद्धोपयोग अवस्था दिखलाई है, जहाँ ध्याता, ध्यान, ध्येयका भेद नहीं रहता। ऐसे निश्चल ध्यानके बलसे आत्मा आठवें गुणस्थानमें चढ़ कर शुक्लध्यानको ध्याता है। फिर बारहवें गुणस्थानमें पहुँच कर दूसरे शुक्लध्यानसे चार घातिया कर्मोंका नाश कर डालता है और केवलज्ञान प्राप्त कर भव्य-जीवोंको मोक्ष-मार्गका उपदेश करता है। फिर शेष चार अघातिया कर्मोंको भी नाश कर, सर्व कर्म और शरीरसे छूट कर और तीन लोकके ऊपर सिद्धलोकमें पहुँच कर सिद्ध कहलाता है। सिद्ध-जीव फिर वहाँ अनन्त काल तक सुख भोगते रहते हैं; संसारके आवागमनसे छूट जाते हैं। इस आनन्द-मय सिद्ध अवस्थाके पानेका कारण निश्चय और व्यवहार ऐसे दो दो भेद-रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं। भव्य-जीवोंको आलस्य छोड़ कर इन्हें ग्रहण करना चाहिये। जिन विषय-कषायोंका हमेशासे सेवन किया उनसे मन हटा कर मोक्ष-सुख पानेका उद्यम मनुष्य-भवके सिवा दूसरे भवमें नहीं हो सकता और मनुष्य-भवका पाना बड़ा ही कठिन है; एक वक्त वृथा खोनेसे फिर इसका मिलना बहुत ही दुर्लभ है। इस लिये अभी जो मौका मिला है उसे कभी नहीं चूकना चाहिये।

नेमिपुराण—यह ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत नेमिपुराणका हिन्दी अनुवाद है। इसमें बावीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवानका पवित्र चरित है। मूल्य २) रु० कपड़ेकी जिल्द २।≈) रु०

सम्यक्त्वकौमुदी—यह भी कथाका एक सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें सम्यक्त्वके प्राप्त करनेवाले, राजा उदितोदय, सुयोधन, अर्हद्दास, चन्दनश्री, विष्णुश्री, नागश्री, पद्मलता, कनकलता और विद्युल्लताकी आठ कथायें हैं। मूल्य १।) कपड़ेकी जि० १।≈)

सुदर्शनचरित—यह सकलकीर्तिकृत संस्कृत सुदर्शन चरितका हिन्दी अनुवाद है। सुदर्शन बड़ा दृढ़-निश्चयी था, कामी स्त्रियोंने उसके साथ अनेक प्रकारकी बुरी चेष्टायें कीं, उसे शीलधर्मसे गिरानेका खूब ही प्रबल किया; परंतु सुदर्शन अपने शीलधर्म पर सुमेरुसा अचल-अडिग बना रहा। मूल्य नौ आने।

नागकुमारचरित—पद्मभाषा कवि चक्रवर्ती मल्लिषेण सूरिके संस्कृत ग्रंथका अनुवाद। मूल्य छः आने।

यशोधरचरित—महाकवि वादिराज सूरिके एक सुन्दर संस्कृत काव्यका हिन्दी अनुवाद। इसमें यशोधरका सुन्दर चरित वर्णन किया गया है। मू० ।)

पवनदूत (काव्य)—कालिदासके मेघदूतके समान रचा गया है, हिन्दी भाषामें है। मू० ।)

अकलंकचरित—इसमें अकलंक-स्तोत्र और उसका भावार्थ तथा हिन्दी पद्यानुवाद भी शामिल कर दिया है। मूल्य ≡)

पंचास्तिकाय-समयसार—मूल ग्रन्थके बनानेवाले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हैं। उस पर स्व० पं० हीरानन्दजीने दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि छन्दोबद्ध टीका लिखी है। मू० १) रु.

श्रेणिकचरितसार ≡)	चौबीसठाणा चर्चा ।)
सुकुमालचरितसार -)॥	हिन्दी भक्तामर -)॥
हिन्दी कल्याणमंदिर -)	नियम पोथी)॥
कर्मदहन-विधान ।-)	छहढाला ≡)

इनके सिवाय और सब जगहके जैनग्रंथ भी हमारे यहां मिलते हैं।

प्रकाशक—
मंत्री—
आत्म जागृति कार्यालय
दि० जैन गुरुकुल
ब्यावर [राजपूताना]

मुद्रक—
पद्मसिंह जैन
श्रीमज्जैन शास्त्रोद्धार प्रिंटिंग प्रेस
आगरा (संयुक्तप्रान्त)

विद्यार्थी

व युवकों से

—सहायदाता—

—०—

सोजत निवासी स्थानकवासी
जैन संघ

प्रकाशक—
आत्म जागृति कार्यालय
बगड़ी (मारवाड़)

प्रथमबार २००० } सर्वाधिकार सुरक्षित { सं० १९८५

चेतो भारतवासी !
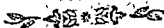
आज तक ज्ञात हुई संसार की जन संख्या एक अरब सत्तर करोड़ है। भारत की जनसंख्या लगभग बत्तीस करोड़ है इसलिये भारत के अङ्क मानव जाति के पांचवें हिस्से की हालत के अङ्क हैं।

आयुष्य—	औसत	
इङ्गलैण्ड में		५१ वर्ष
अमेरिका में	,,	५५ ,,
न्यूजीलैण्ड में	,,	६० ,,
फ्रान्स मे	,,	४८ ,,
जापान में	,,	४४ ,,
भारतवर्ष में	,,	२३ ,,

बालमरण—	प्रति सहस्र	
इङ्गलैण्ड में		७५
फ्रान्स में	,,	८१
बेल्जियम में	,,	१०७
जर्मनी में	,,	१०८
न्यूजीलैण्ड में	,,	४४
भारतवर्ष में	,,	१६[illegible]

शिक्षा, आयु और बालमरण में यह भारतवर्ष दुनियां में सब से नीचे के स्थान का अनुभव कर रहा है। इसको देख ब्रह्मचर्य दीर्घ काल तक पाल कर विद्या वृद्धि करके पवि[illegible] सेवामय जीवन व्यतीत करना चाहिये।

विषयानुक्रमणिका ।

धन्यवाद

इस पुस्तक के प्रकाशित करने में जिन सोजत के बन्धुओं ने सहायता दी है उनके शुभ नाम धन्यवाद सहित हम यहां पर उल्लेख करना इसलिये उचित समझते हैं कि जिससे हमारे दूसरे बन्धु भी उनका अनुकरण करें।

८०) श्रीयुत पनराजजी सम्पतमलजी मुहता
८०) ,, बिसनराजजी मिश्रीमलजी सिंघवी
८०) ,, घीसालालजी मुहता
८०) ,, हरकमलजी लालचन्दजी मुहता
४०) ,, मोतीलालजी भण्डारी, सरकल इन्सपेक्टर
४०) ,, रिखबदासजी रातड़िया
४०) ,, गम्भीरमलजी सुराणा
२०) ,, धनराजजी बलाई
२०) ,, लालचन्दजी बलाई
२०) ,, केसरीमलजी बांठिया
२०) ,, खेममलजी हिमावत
२०) ,, बख्तावरमलजी केशरीमलजी
२०) ,, केशरीमलजी नाहटा

५६०)

यह छोटीसी पुस्तक आपके सामने रखी जा रही है। इसके लिखने का तात्पर्य यह है कि आजकल हमारे देश के जो बालक व युवक अज्ञानवश अपने अमूल्य वीर्य को नष्ट करके तेजहीन, शक्तिहीन, व मनमलीन हो रहे हैं उन्हें सच्चा रास्ता दिखाया जाय, जिन कुप्रथाओं व क्रियाओंके बुरे नतीजों को न जानकर वे उनमें झूठे सुखका अनुभव करते हैं उनका यथोचित ज्ञान कराकर यह समझाया जाय कि इन तुच्छ झूठे और थोड़े समय के लिये मालूम होने वाले सुखों का नतीजा शरीर दिमाग और आत्मा की शक्ति का नष्ट करना है, तथा अपने सुखमय जीवन को दुखमय बनाना है। समाज के बालकों, विद्यार्थियों व युवकों के तेजहीन चेहरों को देखकर व उनके दुबले और कमज़ोर शरीर को निहार कर और अज्ञान के कारण उनके इस हीन दशा में पहुंचने का अनुभव करके इस पुस्तक के पूज्य लेखक का हृदय दुखित हुआ और उन्होंने दया करके इस उपयोगी पुस्तक का लिखना शुरू किया। अंगरेजी भाषामें इस तरह की पुस्तकें एक नहीं बल्कि सैकड़ों हैं, यहां नहीं यूरप के दूसरे स्वतन्त्र देशों में भी ऐसी पुस्तकों

की कमी नहीं है परन्तु हमारे देश में ऐसे साहित्य की बड़ी कमी है। वहाँ स्त्री पुरुष-धर्म सम्बन्धी ऐसे विषयों पर अपने बालकों को शिक्षा देते हुए लोग नहीं हिचकिचाते और न ऐसी फिजूल शर्म रखकर और अपनी सन्तानको अज्ञानमें रहने देकर नष्ट होने देते हैं परन्तु यह दुःख की बात है कि हमारे यहाँ में इन विषयों की उपयोगी चर्चा करना पाप और बेशर्मी समझी जाती है। जिन विषयों को जानने और समझने से मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का विकाश कर सकता है तथा उन शक्तियों की रक्षा करके अपने जीवन को सफल और पवित्र बना सकता है उन्हीं की जानकारी अनावश्यक, लज्जास्पद और पाप समझी जाती है। यह कैसे दुर्भाग्य की बात है।

परन्तु बन्धुओ! जैसी कि शरीर के दूसरे अङ्गों की रक्षा करना और इस विषय में उचित शिक्षा देना और प्रबन्ध करना बालक के लिये परम आवश्यक है उतना ही, बल्कि उससे भी ज्यादा, उसके शरीर के स्त्री पुरुष चिन्ह के हिस्सों गुप्तेन्द्रियों (Sexual parts) की रक्षा का ज्ञान बालकों को देना परमावश्यक, हितकारी और महान उपयोगी है। इन बातों के अज्ञान से बालक ऐसी २ बुरी आदतों में पड़ जाता है जो उसे नष्ट किये बिना नहीं छोड़तीं जैसे हस्तमैथुन (Masturbation) गुदामैथुन, पशुमैथुन आदि।

इस पुस्तक में इन बातों को स्पष्टरूपसे समझाया गया है और वीर्यक्षय के मुख्य कारण, वीर्यका दुरुपयोग, उसकी रक्षा

के साधन, बुरी आदतों के परिणाम व उनसे बचने के उपाय आदि भली भांति सरल भाषा में बालकों व नवयुवकों के हित के लिए बतलाये गये हैं। इनको पढ़कर एवं समझकर हमारे बालक व युवक दुर्बल व क्षीण न बनकर हृष्ट पुष्ट, पुरुषार्थी व तेजस्वी और पराक्रमी बन सकते हैं।

यह पुस्तक खासकर बालकों व युवकों के लिये ही बनाई गई है। इसका कारण आपको बताया जावेगा। परन्तु यदि वयोवृद्ध सज्जन भी इसे पढ़ेंगे तो, आशा है, उनके लिये भी यह उपयोगी ही सिद्ध होगी और यदि उनके आचरण और व्यवहार पर इसका असर न भी पड़े तो भी उनकी संतान पर तो इसका असर पड़े बिना नहीं रहेगा। यह कम लाभ नहीं है।

इस पुस्तक के बालकों और युवकों ही के लिये खासकर लिखे जाने का कारण यह है कि बालकों ही के सुधार से जाति और देश का सुधार हो सकता है। अङ्गरेजी भाषा में कहावत है—Child is the father of man—भावार्थ यह है कि बच्चे ही से बुड्ढा और लड़का ही बाप बनता है। यदि हमारी मौजूदा संतानें सुधरी हुई रहें, यदि वे सदाचारी रहें, उनके कच्चे वीर्य की क्षति न हो, वे दुर्बल और कान्तिहीन न बनें, वे हृष्ट पुष्ट, बलिष्ट और कर्मवीर बनें तो वे आजसे दस वर्षमें हमारे जवान देश और जाति के गौरव को रखने वाले और कीर्ति को बढ़ाने वाले हो सकते हैं।

वृद्ध लोग कहेंगे—हमारी उम्र तो अब बीत गई, हम क्या सुधार करेंगे। प्रौढ़ अवस्था वाले अपने गृहस्थ के झंझटों में उलझे रहते हैं, वे बेचारे क्या कर सकते हैं? उनको तो भली बुरी जो भी बुरी आदतें पड़ने की थीं वे पड़ गईं। इसलिये उन दोनों को छोड़कर बालकों और नवयुवकों ही से इस पुस्तकमें कुछ निवेदन किया गया है। छोटे पौधे को जहां चाहें ले जा सकते हैं और उन्हीं की रक्षा की ज्यादह जरूरत रहती है, न कि पूरे बढ़े हुए वृक्षकी फिर भी आशा है कि छोटे बड़े जो भी इस पुस्तक को पढ़ेंगे उनके लिये यह किसी न किसी तरह उपयोगी अवश्य सिद्ध होगी।

डा० अमृतलाल बाफना, एम० बी० बी० एस०
(चीफ मेडिकल आफिसर—बांसवाड़ा स्टेट)

॥ ॐ वीराय नमः ॥

विद्यार्थी व युवकों से

(१) विषय प्रवेश ।

"शरीर आत्मा का स्थान है, इसलिये तीर्थक्षेत्र है। उसकी रक्षा करनी चाहिये"।

—महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी

विद्यार्थी जीवन का दूसरा नाम ब्रह्मचर्याश्रम है। विद्यार्थी को शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य करना चाहिये। जिस भूमि के ऊपर अग्नि जलती हो वहां बोए हुए बीज वृक्ष का रूप धारण नहीं कर सकते। वे जलकर खाक हो जाते हैं। ठीक इसी प्रकार जिस शरीर में विषय वासना रूपी अग्नि विद्यमान हो उसमें बल, बुद्धि, विनय, विद्या, सत्य, और सदाचार रूपी उत्तम गुणों के बीज नहीं उग सकते। विषय वासना से ये सब उत्तम गुण नष्ट हो जाते हैं।

कई लोग कहते हैं कि बच्चों को इन्द्रिय विकार से बचने की शिक्षा भी नहीं देनी चाहिये। ऐसे लोगों का विचार है कि यदि वे इस विषय को समझेंगे तो बिगड़ जावेंगे। इन महानुभावों से नम्र प्रार्थना है कि वे थोड़े गम्भीर बनकर विचार करें। सच तो यह है कि जब तक किसी चीज़ का ज्ञान ही न हो तभी तक एक व्यक्ति को उसका दोष लग सकता है। यदि सत्यज्ञान हो जाय तो नुकसान हो ही नहीं सकता। हज़ारों अज्ञानी बालक अफीम खाकर मर गये। परन्तु जिनको ऐसी शिक्षा दे दी गई है कि यह ज़हर है वे न अफीम खावेंगे और न मरेंगे। इसी प्रकार जो इन्द्रियविकार की हानियाँ समझ चुके हैं वे अवश्य इससे बचे रहेंगे; परन्तु इस विषय में जो बिलकुल अनजान हैं वे उसमें फंसकर दुखी हुए बिना नहीं रहेंगे।

सांप ज़हरीला जन्तु है, सिंह शिकारी है, क्या ऐसी शिक्षा देने के बाद कोई बालक अनुभव के लिये सांप या सिंह के पास जावेगा? कभी नहीं! वह तो हमेशा उनसे डरता और बचता रहेगा। इसी तरह दुश्चरित्र से बचने की शिक्षा का दिया जाना भी हितकारी है।

आज बालकोंमें बुरी आदतरूपी भयंकर विशाल प्रवेश कर चुका है। स्कूलों, छात्रालयों, विद्यालयोंमें गुप्त व्यभिचार देखा जाता है। इससे बचने की शिक्षा न मिलने से हज़ारों विद्यार्थी अपने जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं। और जिन बालकों को वीर्य नष्ट करने के नुकसान बता दिये जाते हैं वे उससे बच कर सुखी होते हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्त प्रत्यक्ष मिलते हैं।

———

(२) आज की उगती प्रजा

फूल तो दो दिन बहारे जाँ खिज़ाँ दिखला गए।
हसरत उन गुञ्चों पे है जो बिन खिले मुरझा गए॥

विद्यार्थियों व नवयुवकों में बुरी आदतें कितनी बढ़ गई हैं इसका निर्णय करना हो तो डाक्टरों, वैद्यों, हकीमों और दवाइयां बेचने वालों से पूछें। चुपचाप कभी यह भी मालूम कर लिया करें कि ये आपस में कैसी कैसी बातें किया करते हैं। यह भी देखने की कोशिश करें कि परस्पर में लड़ते समय वे एक दूसरे पर किन २ कुकर्मों का अपराध लगाते हैं और अपमान करते हैं। स्कूलोंके पेशाब घर.टट्टी तथा घरकी दीवालों पर, रेलगाड़ियों के कांच और दूसरे स्थानों में ये कैसे २ अश्लील और दुराचार सूचक शब्द लिखते हैं, उन्हें भी पढ़ें। इनसे आपको विद्यार्थियों की विचारधारा का पता लग सकेगा परन्तु अधिक दोष ढूंढ़ने हों तो कुछ समझदार लड़कों को शिक्षा देकर उनको विद्यार्थियों और नवयुवकों के गुप्त चरित्र (चाल चलन) देखने के लिये डिटैक्टिव (खुफिया) पुलिस बनावें।

इस प्रकार जांच करने से आपको ऐसी भयंकर बातें मालूम होंगी कि सुनकर हृदय फट जाय। ऐसी अवस्था में अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर ट्रॉल के शब्दोंमें यह कहना पड़ता

है कि "अब समय आगया है जब लज्जा छोड़कर बालकों को नष्ट करने वाली इन महामारियों के नतीजों से सावधान कर दिया जाय।"

आज अपने चारों ओर वातावरण खराब हो रहा है। आस पास के संयोग ऐसे हैं कि जिनसे विकार जागता तथा बढ़ता है। अगर ऐसी हालत में अच्छा रास्ता नहीं सुझाया गया तो बुरा रास्ता तो सामने है-ही। 'खुजली चलने पर नख से खुजलाने से रोग बढ़ता है' यह शिक्षा देने से कई लोग रोग से बच सकते हैं। बालकों को बचाने के लिये उनके हाथ ही थैलियों में बन्द कर दिये जाते हैं। विषय वासना भी एक प्रकार की खुजली है। उससे बचने की शिक्षा देना ज़रूरी है। जो बिलकुल नासमझ हों उनपर कड़ी नज़र रखकर उनकी इस भयंकर शत्रु से रक्षा करनी चाहिये। ऐसा न किया गया और उन्होंने बुरा रास्ता पकड़ लिया तो उनका स्वर्गीय जीवन नरक तुल्य बन जावेगा। वे लोग बुरी आदतों में जो पड़ते हैं इसका कारण यही है कि वे उनके भले बुरे फलों को नहीं समझते।

एक बार एक महात्मा ने एक संस्था में विद्यार्थियों को उपदेश दिया। उन्होंने बुरी आदतों से बचने की खूब शिक्षा दी और कहा—"जिन विद्यार्थियों को इनमें से कोई भी दोष अब तक न लगा हो वे खड़े होजायें। उनके सब अपराध माफ हैं। परन्तु कोई भी झूठमूट खड़ा न हो।" बस! सबने नीची

नज़र करली। एक भी खड़ा न हुआ। एक संस्था के सेक्रेटरी को कई लड़कों के फीके चेहरे देखकर वहम हुआ। उन्होंने गुप्त रूप से जांच की। उन्हें यह मालूम हुआ कि सवा सौ लड़कोंमें ४०जने अज्ञानवश अपना वीर्य नष्ट करके शरीर और सुखों का नाश कर रहे हैं। इनमें अनेकों का व्याह भी होचुका है। इससे यह मालूम होता है कि स्त्रियों के रहते हुए भी कई लोग दूसरे बुरे रास्ते पकड़ लेते हैं। इसका कारण है अज्ञान!

प्रसन्नता की बात है कि अब अनेक स्थानों में सदाचार की शिक्षा और संरक्षण के दृढ़ नियमों का पालन शुरू कर दिया गया है परन्तु जब तक प्राइमरी, मिडिल और हाईस्कूलों में बुरे व्यसनों का प्रवेश रहेगा तब तक सुधार नहीं हो सकता इनके कारण विद्यार्थीवर्ग जीवनरूपी आम्रवृक्ष की कली मसल कर या कच्चे और खट्टे रस को चख के मीठे अमृतरस का त्याग कर देते हैं। इसलिये माता पिताओं और शिक्षण संस्थाओं को बिना संकोच के इस सम्बन्ध की शिक्षा का प्रबन्ध शुरूआत ही से कर देना चाहिये।

अनेक विद्यार्थी-हितचिन्तकों का अनुमान है, नहीं २ उनके पास प्रमाण भी हैं कि, ८ से १८ वर्ष के विद्यार्थियों में सौ पीछे पाँच ऐसे विद्यार्थी मुश्किल से मिलेंगे जो इन कुकर्मों को बिल्कुल ही न जानते हों। शुद्ध चरित्र वाले तो २५ फी सैकड़ा भी नहीं होंगे। जहां ७५ फी सैकड़ा विद्यार्थी अपने जीवनरूपी -

वृक्ष को कुकर्म रूपी कुल्हाड़े से काटना शुरू कर देते हैं। प्रजा, यह जाति, यह समाज और यह देश विद्या, विन नम्रता, आज्ञापालन, न्याय, नीति, सत्य, पुरुषार्थ, कला, उद्योग, आविष्कार, ज्ञान, दर्शन, तप संयम, और मोक्ष का पात्र कैसे हो सकता है?

माता पिता को ऐसी प्रजा भार रूप हो जावेगी, राजाओं को भी इनपर शासन करना दुःखरूप मालूम होगा, विद्या का गुरु बनना असफल होगा और देश नेताओं के आन्दोलन व्यर्थ जावेंगे। इसलिये यह ज़रूरी है कि विद्यार्थी जीवन में शुद्ध और पवित्र रूप से ब्रह्मचर्याश्रम को पूरा पालन कराने में सब समान रूप से सहायक बनें।

---

(३) अष्ट मैथुन*।

"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च॥
"एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्य्यं एतत् एवाष्ट लक्षणम्॥ १॥

शास्त्र में ब्रह्मचर्य-नाश के आठ मैथुन बतलाये हैं:—

[१] किसी जगह पढ़े हुए, सुने हुए, या चित्रादि या प्रत्यक्ष देखे हुए स्त्री का ध्यान, चिन्तन या स्मरण करना।

* "ब्रह्मचर्य ही जीवन" में से साभार उद्धृत।

[२] स्त्रियों के रूप,गुण और अंग प्रत्यंग का वर्णन करना—शृंगारिक गायन व कजली गाना अथवा भद्दी बातें बकना। [३] स्त्रियों के साथ गेंद, ताश, शतरंज होली, इत्यादि खेल खेलना। [४] किसी स्त्री की ओर गीध या ऊंट की तरह गर्दन उठाकर या घुमाकर पाप-दृष्टिसे अथवा चोर-दृष्टि से देखना। [५] स्त्रियों में बारबार आना जाना और उनके साथ एकान्तमें बातचीत करना [६] शृंगार-रस-पूर्ण वाहियात उपन्यास पढ़कर किंवा स्त्रियोंके भद्दे फोटो देखकर,अथवा नाटक या सिनेमा के रद्दी कामचेष्टापूर्ण दृश्य देखकर उन्हींकी कल्पनाओं में निमग्न रहना। [७] किसी स्त्री की प्राप्ति के लिये पापपूर्ण प्रयत्न करना। और [८] प्रत्यक्ष संभोग। ये ही अष्ट मैथुन हैं। इन लक्षणों के बिल्कुल विरुद्ध लक्षण अखण्ड ब्रह्मचर्यके होते हैं। आदर्श ब्रह्मचर्य में इनमें का एक भी लक्षण या मैथुन नहीं आना चाहिये। क्योंकि इनमें का कोई भी मैथुन किंवा लक्षण मनुष्य को नष्ट भ्रष्ट करने में पूर्ण समर्थ है।

(श्री शिवानन्दजी)

आंख और जीभपर काबू करने वाला ही विषय वासना से बच सकता है। रूप देखने वाला परिचय करता है, प्रथम पवित्र प्रेम करता है पश्चात् विकारी बन भ्रष्ट हो जाता है। श्री लक्ष्मणजी ने सीता जी के साथ बारह वर्ष एक झोंपड़ी में रहने परभी ऊँची आंख उठाकर न देखा और अखंड ब्रह्मचारी रहे। महापुरुषों को भी इतने कड़े नियम पालना आवश्यक है तो विषय के रोगियों को तो इससे भी कितने ज्यादा नियम ज़रूरी हैं।

---

[४] बुरी आदतें।

गिरि ते गिरिपरिबो भलो, भलो पकरिबो नाग।
आगिन मांहिं जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग॥

सब सुख चाहते हैं, परन्तु सुख किसमें है? प्रत्येक मनुष्य अपनी मान्यता के अनुसार सुखका अनुभव करता है। बालक खिलौनेमें, विद्यार्थी व युवक पुस्तक में, नौकर इनाम में, तरुण अवस्था वाला सुन्दर स्त्री, धन और अधिकार में, वृद्ध पुरुष बड़े परिवार, यश और कीर्ति में सुख मानता है। परोपकारीको औरोंका भला करनेमें सुख है और त्यागीको त्याग की सिद्धिमें। सारांश यह है कि सुखकी कल्पना ज्ञान से होती है।

धन, इज्जत, सुख और शांति का विनाशक जुआ सट्टा है तथापि इसे धन वृद्धि का व्यापार मानकर कई लोग इससे भी सुखी होना चाहते हैं। शराब, अफीम, गांजा आदि के व्यसनी इन व्यसनों में भी सुख मानते हैं। परन्तु इनका नतीजा क्या होता है? घोर दुःख। इसलिए सुख वही है जिसके नतीजे में भी दुःख न हो। जिन विद्यार्थियों व युवकों में बुरी आदतें पड़ गई हैं वे उनमें सुख का अनुभव करते हैं परन्तु जब उनके बुरे नतीजे भोगते हैं तब मालूम होता है कि वे सुख नहीं जीवन को नष्ट करने वाले दुःखों के भोग हैं। जैसे:

आदतों और नतीजोंको समझा कर भावी संतानकी रक्षा करनी चाहिए। वे ये हैं:—

१—हस्तदोष—इसको हस्तक्रिया (Masturbation) कहते हैं। यह कितना भयंकर अज्ञान है कि जो वीर्य अमूल्य है उसको गुप्त अंग को हाथ से या दूसरी चीज से मसल कर नाश कर दिया जाय। इससे इन्द्रियको हानि होती है तथा धातु क्षय, प्रमेह आदि कई रोग भी पैदा होते हैं। यह कुटेव पुरुषों में ज्यादह है, फिरभी स्त्रियां भी किसी पदार्थ से गुप्त अंगको रगड़ कर न केवल शरीर का नाश करती हैं बल्कि अनेक रोग ग्रहण करके जीवन को दुखी बना लेती हैं। इस कुटेव से रोग और कमजोरी आती है, बुद्धि मन्द हो जाती है और नपुंसकता फैलती है यह कुकर्म करने वाला जिन्दगी भर दुखी रहता है और मरने पर नीच गति में जाता है। इस कुटेवको एकदम छोड़ देना चाहिये। विषयवर्द्धक रूप देखने या बातें सुनने या पढ़ने से यदि विषय जगे तो गुप्त अंग के हाथ नहीं लगाना चाहिये, परन्तु चित्त को विकारी प्रसंगों से हटा कर उत्तम विषयमें लगा देना चाहिए। साथ ही मन में ऐसे प्रसंग के आजाने के लिये पछताना चाहिये। जो लोग गुप्त अंग पर हाथ लगाते हैं वे इस कुटेव में फँसकर नष्ट हो जाते हैं।

२—सृष्टि-विरुद्ध कर्म—लड़के का लड़के ही के साथ जो कुकर्म होता है वह भी इस समय बहुत बढ़ गया है। जो मल (दस्त) निकालने का स्थान है वह गंदा है और बदबू देने

वाला है। यहां की नसों का स्वभाव ही सिकुड़ने का है। यहां इन्द्रिय से चेष्टा करना सृष्टि विरुद्ध कर्म है। इससे इन्द्रियको भारी हानि तथा धातुक्षय, नपुंसकता आदि भयंकर रोग होते हैं। जिसके साथ यह पाप-कर्म किया जाता है उसके मलद्वार में भी कई रोग हो जाते हैं। एक वैद्य ने अपने निजी अनुभव से लिखा है कि उसके पास एक लड़का आया। उसका मलद्वार सड़ गया था। उसे मस्से की तकलीफ थी, भगन्दर भी हो गया था और मलद्वार से पीप भी निकलती थी। उसके पास खड़ा रहने से उसकी दुर्गंध से दिमाग बिगड़ जाता था। जांच करनेपर यह मालूम हुआ कि उसके साथ कई लड़कों व पुरुषों ने कुकर्म किया था। उफ़! कितना बुरा नतीजा? इस अपराध के लिये सरकार ने भी काला पानी या दस वर्ष की सख्त कैद की सज़ा रखी है। इससे यह समझना सहज है कि यह कितना बुरा काम है?

कई लड़के खुद नहीं बिगड़ते, बड़ी हुई उम्र के लोग ज़ोर जुल्म से उनपर अत्याचार करते हैं। इसके लिये एक भरी पुलिस में दे देनी चाहिये जिससे वह दुष्ट अपना तथा औरों का नाश न कर सके। इसमें लज्जा की कोई बात नहीं। चोर को पकड़वाना जरूरी है, नहीं तो न जाने वह कितनी चोरियां करेगा। ऐसेही दुर्व्यसनियों को शिक्षा दिलानी चाहिये। ये कई बालकों को बिगाड़ते हैं और ये बालक भी इनकी देखा देखी दूसरे छोटे बालकों का नाश करते हैं। इस प्रकार विषय बढ़ता

है और शरीर, बल, बुद्धि और शक्ति सबकी कमी होती है। समाज दीन हीन और दुखी होता है।

अज्ञानवश स्त्रियाँ भी दो दो एक साथ सोकर अपने गुप्त अंग घिसती हैं। यह भी ऊपर जैसा ही गुनाह है। इससे उन्हें अनेक रोग होते हैं और उनका गर्भाशय खराब हो जाता है। प्रदर (सफेद पानी बहना), क्षय, पेट-दर्द और पेट के अन्य रोग होकर उनका जीवन नष्ट हो जाता है।

३–पशु मैथुन—कई अज्ञानी पुरुष बछड़ी, बकरी, घोड़ी गदही आदि पशुओं से कुचेष्टा करते हैं। इससे भी भयंकर रोग पैदा होते हैं और जो पकड़े जावें तो दोषियों को देश निकाला या दस वर्ष की सख्त कैद की सज़ा मिलती है।

४–अनियत स्थान मैथुन—मुँह या अन्य कोमल स्थान में इन्द्रियको रखकर कई दुष्ट पुरुष कामतृप्ति करते हैं। इससे दोनों जनों को भयंकर नुकसान होता है। यह विषयांधता है। इससे सदा बचना चाहिये।

५–बालक बालिका मैथुन—बालक बालिकाएँ एक साथ खेलते हैं। वे कई बार 'बींद' 'बींदणी' 'वर-वधू' बनते हैं और एकान्त में विषय सेवन करना सीख जाते हैं। इससे कच्चा वीर्य पेशाब में जाना शुरू होकर प्रमेह, प्रदर, धातु-क्षय आदि रोग हो जाते हैं और बड़े होने पर वे बालक वेश्यागामी और परस्त्री लम्पट बनते हैं। इसलिये बालकों और कन्याओं

को एक साथ नहीं खेलने देना चाहिये। ग़ालिब और पास २ तो कभी नहीं सुलाना चाहिये।

६—वेश्यागमन—वेश्या दुनियाँ का नाश करने वाली राक्षसी शक्ति है। १०० में ९० वेश्यायें गर्मी, सुज़ाक आदि महा भयंकर रोगों से पीड़ित रहती हैं। कई स्थानों में डाक्टरों के सार्टीफिकेट भी वेश्याओं के निरोग होने के बारे में दिये जाते हैं परन्तु ये रोग इतने सूक्ष्म होते हैं कि खूब बढ़े बिना मालूम भी नहीं पड़ते। जब तक इन रोगों के विषैले जन्तु सूदन होते हैं तब तक रोग की ख़बर ही नहीं पड़ती। इसी लिये अनेक वेश्यागामी पुरुष अपनी ज़िन्दगी को रोगके कारण दुखी बना रहे हैं, मिथ्या सुख की लालसा में दुख के गहरे दलदल में अपने आपको फंसा देते हैं, गर्मी से इन्द्री सड़ जाती है, सुज़ाक से उसमें रेसा पैदा हो जाता है और शरीर का क्षय हो जाता है। ये रोग क्या हैं? ज़िन्दगी में इसी लोक में नरक तुल्य वेदनायें भुगतना है। वेश्या रोग पैदा करती है, धन हरती है, शरीर और बुद्धि का नाश करती है, कीर्ति को कलंकित करती है तथा उन्नति को रोकती है। इसलिये उनके बाजार में यहां तक कि जहाँ उनके नाच और गाने होते हैं वहां नहीं जाना चाहिये। कीचड़ में जाने से पांव फंसते ही हैं काजल की कोठरी में जाने से कालिमा लगे बिना नहीं रहती।

काजर की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय।
काजर की रेख एक लागि है पै लागि है।

७-परस्त्री गमन—पराई स्त्रीकी ओर बुरी नज़र रखना भी महापाप है। पर-स्त्री गमन से अनेकों बार सर फूटते, नाक कटतीं, और प्राण तक चले जाते देखे गये हैं। दिल में सदा खटका बना रहता है और इससे वीर्य स्खलित होने में बाधा पहुंचने के कारण सुज़ाक की बीमारी अक्सर हो जाती है। यदि तुम पराई स्त्री पर बुरी नज़र रखोगे तो तुम्हारा चित्त सदा भ्रमित रहेगा। संयोग न मिलने से बिना पानी की मछली की तरह तड़फोगे और मिलने पर तुम्हारी दशा भट्टी में पड़ी हुई मछली जैसी होगी। रावण आदिके पर-नारी की इच्छा मात्र के कारण राज्य, वैभव और सुख नष्ट हो गये तो उनसे भोग करने वालों की क्या दशा होगी।

पर नारी पैनी छुरी, तीन ठौर तें खाय।
धन छीजे जोवन हरे, मुए नरक लेजाय॥

सरकार भी इस कुकर्म के लिये कड़ी सज़ा देती है। यदि उस स्त्री की इच्छा से कुकर्म किया जाय तो १ वर्ष की सख़्त क़ैद की सज़ा होती है, यदि बलात्कार किया जाय तो दस वर्ष की (देखो ताज़ीरात हिन्द दफ़ा ३५४-३७६)।

८-अति विषय सेवन—अपनी ही स्त्री से अति विषय करना शरीर का क्षय करना है। इससे वीर्य पतला पड़ जाता है और प्रमेह हो जाता है। ऐसा करने वाले की संतान दुर्बल और अल्पायु होती है। वह कभी अच्छे कार्य नहीं कर सकता

ऐसे पुरुष स्त्री जब अलग २ रहेंगे तो अति विषयी होने के कारण बिगड़ जाते हैं, इसलिये संयमी रहना चाहिए। वीर्य एक दिव्य तत्व है। इसकी एक बूंद से बराबर की प्रजा पैदा होती है। इसका नाश करना मूर्खता है।

६-विलासिता—बहनों को चाहिये कि घर के बाहर निकलें तब श्रृङ्गार न सजें। गहने और सुन्दर वस्त्र नहीं पहनें अन्यथा शील रूपी रत्न को जोखिम रहतों है। बहनें तो बढ़िया गहने और कपड़े अपनी शोभा के लिये पहनती हैं। उनको देख २ कर अनेक पुरुष विषयी बनते हैं और विकार जगकर व्यभिचार बढ़ता है, इसलिये सादगी ही सुशील स्त्रियों की शोभा है। वे नीची दृष्टि रखें, घर का काम हाथ से करें, और जवान नौकर घर में रखें ही नहीं। ऐसा करने से भी चरित्र जोखम में रहता है। "क्या स्त्री क्या पुरुष सबके लिये विलासिता बुरी है। इसलिये विलासिता को छोड़कर परिश्रमी, सादा और संयम शील जीवन व्यतीत करना चाहिये।

बुरी आदतें पड़ने के कारण ।

मन के मते न चालिये, मन का मता अनेक।
जो मन पर असवार हैं, ते साधू कोई एक ॥

[१] हँसी, कौतूहल में अथवा अन्य अवसर पर गुप्त अंगों पर परस्पर हाथ फेरने से बालक विषयी होते हैं।

[२] एक बिछौने पर दो बालकों को सुलाने से बुरी आदत पड़ जाती है।

[३] एकान्त में या अन्धेरे में खेलने से बच्चे अनेक बार बिगड़ जाते हैं।

[४] ख़राब लड़के पहिले छोटे बालकों को बिगाड़ते हैं; यह देख वे छोटे बालक भी वैसे ही कुकर्म सीख जाते हैं। अनमेल मैत्री अर्थात् छोटे लड़कों के साथ बड़े लड़कों की मित्रता, निवास या अति परिचय भी दुराचार का कारण हो जाता है।

[५] ख़राब लड़कों को हस्तमैथुन करते देखकर या आपसमें अथवा कन्याके साथ सोने, खेलने या शरीर के चिपटाने से अनेक लड़के बिगड़ जाते हैं।

[६] नाचने वाली, गाने वाली वेश्याओं या अन्य स्त्रियों के तथा होली के विषयी गीत, नाच रूप, श्रृङ्गार, फैशनेबिल कपड़े, नखरे और अश्लील मूर्तियों एवं श्रृंगार रस के चित्र देख, व सुनकर लड़कों में विषय जगता है। इनसे आयु और धन में समर्थ लड़के वेश्यागामी होकर गर्मी आदि प्राणघातक रोगों के शिकार बन जाते हैं। जो असमर्थ हैं, वे हस्तमैथुन करके जीवन को नष्ट कर देते हैं।

[८] माता पिता के भोग करते समय बालक की एकदम नींद उड़ जाने से भी बालकों में काम प्रवृत्ति की जागृति होती है और वे बिगड़ते हैं।

[९] आस पास के मकानों में स्त्री पुरुष, भाई भोजाई, पड़ौसी आदिको भोग करते देखकर या इससे सम्बन्ध रखने-वाले कोई शब्द सुनकर बालक को भोगेच्छा पैदा होती है तथा उस इच्छा पूर्ति के लिये हस्तदोषादि बुरा मार्ग बिना सोचे ही ढूंढ़ लेते हैं।

[१०] नाटक, सिनेमा, लग्न, प्रसंग, तीर्थ, यात्रा या अन्य अवसरों पर स्त्रियों के हाव भाव, शृंगार, नखरे आदि देखने से विषय जगता है और वे किसी भी उपायसे इस विषयेच्छा को तृप्त कर लेते हैं।

[११] विकारी उपन्यास, विकारी बातें, खेल तमाशे, सुनने, पढ़ने और देखने से युवकों में, विकार जागकर, वे कुमार्ग में पड़ जाते हैं। निरर्थक वार्ता, दिल्लगी व लड़ाई में बहुधा पुरुष और स्त्रियों के गुप्त चिन्हों की बातें सुनने से भी, अनेक युवकों के बिगड़ने की सम्भावना रहती है।

[१२] ज्यादा मिठाई, ज्यादा चरपरे पदार्थ, ज्यादा खार, ज्यादा खटाई, 'अफीम' आदि खानेसे भी विषयेच्छा जागती है।

[१३] शराब आदि उत्तेजक पदार्थ भी विषयी बनाकर कुमार्ग में डालते हैं।

[१४] मांस का उपयोग करने से स्वभाव और बुद्धि नष्ट होकर विषय वासना बढ़ती है।

[१५] चाय और कहवा भी उत्तेजना करके विषयेच्छा पैदा करते हैं।

[१६] विषयभोगी, विलासी जनसमुदाय में रहने, वेश्याओं के बाजार में जाने, वेश्या या रूप लावण्य वाली स्त्रियों को देखने या उनके सम्बन्ध में बातें या विचार करने से विषयेच्छा पैदा होती है।

[१७] तंग वस्त्र पहिनने या ऐसे स्थानों में बैठने से जहां इन्द्रियों का हिलना व घिसना हो बुरी इच्छायें पैदा होकर बिगाड़ पैदा होता है।

[१८] कोमल बिछौने, तकिये, मखमल के गद्दे तकिये, बढ़िया रेशम और रुई के बिछौने और पर के तकिये विकार बढ़ाने के कारण हैं।

[१९] जिस प्रकार खराब भोजन आमाशय को बिगाड़ता है—कारण, भोजन प्रथम आमाशय में पाचन होने को जाता है। उसी प्रकार ख़राब पुस्तकें, नाटक, नाच, कथा, वार्ता आदि मन को विकारी बना कर हृदय को बिगाड़ते हैं—कारण, मनका स्थान हृदय है।

[२०] इन्द्रियजन्य दोष (Sexual abuses) से होने वाली हानियों की शिक्षा न मिलने से अज्ञानी बालक विषय वासना बुरी आदतों को खेल या आनन्द का ख़जाना

समझकर, उनमें पड़ जाते हैं और शरीर, बल,बुद्धि,सुख, श्रेय, पुण्य, धर्म और वैभव का सत्यानाश कर बैठते हैं।

[२१] धार्मिक ज्ञान का अभाव—जो क्रियाकाण्ड, भेष या उपलक्ष धर्म हैं वे धर्म नहीं हैं। ये तो धर्म के साधन, उपसाधन हैं। इनके आग्रह से ही धर्म कलह होते हैं, परन्तु आत्मा का ज्ञान न होने से अज्ञानी मनुष्य शरीर, इन्द्रियों और उनके भोगों को सर्वस्व मानकर तथा उन्हीं के वशीभूत होकर जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। शरीर आत्मा के रहने का विश्राम स्थान है। स्वकर्तव्य (धर्म) की शिक्षा नहीं मिलने से मनुष्य पांचों इन्द्रियों का दुरुपयोग करके विषयी बनकर शारीरिक, मानसिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और आत्मिक अनन्त दुःख भोगता है। इन अनन्त दुःखों से छूटने का एक ही उपाय, विषय वासना का त्याग-है। जहां पवित्र धर्म का सत्य ज्ञान है वहां विषयादि सब दोष नियम से दूर होते हैं।

यदि सच्चे हित के चाहने वाले माता, पिता या रक्षक उपर्युक्त विकारों से अपनी सन्तान को बचावेंगे तो वे ही सदाचारी होकर आरोग्य, विद्या, बल, बुद्धि, शक्ति, सुख, संपत्ति और अनन्त आनन्द को प्राप्त करेंगे।
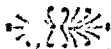
(५) हस्तमैथुन के दुष्परिणाम

हस्त मैथुन से सम्पूर्ण शरीर पीला, ढीला, फीका, दुर्बल, व रोगी बनजाता है। मुख-कान्ति हीन व पीला पड़ जाता है। ऐसा पुरुष जीवित रहते हुएभी मुर्दा होता है। हाय! जिस विषयानन्द को कामी लोग ब्रह्मानन्दसे भी बढ़कर समझते हैं, वह विषयानन्द भी ऐसे पतित पुरुष ज़्यादा दिन तक नहीं भोग सकते। इन्द्रिय दुर्बलता के और अन्यान्य रोगों के कारण वे गार्हस्थ्य सुखभी नहीं भोग सकते; उनकी सन्तानोत्पादन की शक्ति नष्ट हो जाती है। जिससे उनकी स्त्रियां वन्ध्या बनी रहती हैं। अथवा सन्तान हुई तो कन्या ही कन्या होती हैं। ऐसे लोग काम के मारे बेकाम बन जाते हैं। सन्तति सुख से वे हाथ धो बैठते हैं। उनकी स्त्रियों को कभी संतोष नहीं होता है। फिर वे व्यभिचार करने लगती हैं। स्त्रियों के बिगड़ने से संतान भी दुःसाध्य होती है व अधर्म की वृद्धि होती है। अधर्म के फैलते ही घर में व देश में दारिद्र, अकाल व अशान्ति आदि फैलते हैं। फिर सुख की आशा कहां? अन्त में सब कुल नरकगामी होता है। (गीता अ० १ला श्लोक ४१ से ४३ देखो). इस महापाप के मूलकारण व भोगी दुराचारी पुरुष ही होते हैं।

हाय ! यह बड़ा ही अधर्म और दुष्टकर्म है। जिस अभागे को इसके करने का एक बार भी दुर्भाग्य प्राप्त हुआ तो धीरे धीरे यह "शैतान" हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाता है, यहां तक कि प्राण बचना भी मुश्किल हो जाता है। ऐसे पुरुष इस महानिन्द्य कुटेव के पूर्ण गुलाम बन जाते हैं। दुर्बल चित्त के कारण इच्छा करने पर भी वे संयम नहीं कर सकते। हज़ारों प्रतिज्ञायें करने पर भी एक भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होने पाती। विषयों के सामने आते ही सभी प्रतिज्ञायें ताक में धरी रह जाती हैं। इस प्रकार वीर्य को नष्ट करने से मनुष्य का मनुष्यत्व लोप हो जाता है। और उसका जीवन उसी को भारभूत मालूम होने लगता है। जलवायु का परिवर्तन थोड़ा भी सहन नहीं होता। हर समय सर्दी गर्मी मालूम होने लगती है, जुकाम, सिर दर्द और कानों में पीड़ा होने लगती है। ऋतुओं के बदलते ही उसके स्वास्थ्य में भी फ़र्क होता है और अन्यान्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं, देश में जब कभी बीमारी फैलती है तब सबसे पहले ऐसा ही पुरुष बीमार पड़ता है और अक्सर यही काल का शिकार बनता है।

हा ! ऋषिसंतानों के दिव्यनेत्र व ज्ञाननेत्र सब मन्द होगये हैं और उनको अब उपनेत्र (चश्मे) के बिना देखना भी मुश्किल हो गया है। अज्ञान की घनघोर घटा भारत-आकाश को चारों ओर से आच्छन्न कर रही है। आर्य सन्तान आज पूर्णतया तेजहीन व दास बनकर भारत माता का मुख कलंकित कर रही है ! हा ! शोक !! शोक !!! शोक !!!

बस, अब हम इससे अधिक वर्णन करना नहीं चाहते। केवल वीर्यभ्रष्टता के प्रमुख चिन्ह ही कहकर इस विषय को समाप्त करते हैं जिससे कि हमलोग पतित बालक, बालिका व स्त्री पुरुष को फौरन पहचान सकें।

वीर्य नाश के मुख्य लक्षण।

[१] काम पीड़ित वीर्यघ्न (वीर्य को नष्ट करने वाला) बालक बड़े आदमियों की तरफ आंख से आंख मिलाकर नहीं देख सकता। किसी अपराधी की तरह शर्मिन्दा होकर नीचे देखता है अथवा इधर उधर मुँह छिपाना चाहता है।

[२] बहुत से चालाक या धूर्त लड़के झूठे ही छाती निकाल कर समाज में इतस्ततः ऐंठते हुए अकड़कर घूमा करते हैं। वे ज़रूरत से अधिक ढीठ बन जाते हैं; हेतु यह कि ऐसा करनेसे उनके दुर्गुण छिप जायंगे और लोगोंकी दृष्टि में वे निर्दोष जचेंगे।

[३] उनका आनन्दमय व हँसमुख चेहरा दुःखी व उदास हो जाता है। सूरत रोनी बन जाती है। प्रसन्न-स्वभाव नष्ट होकर चिड़चिड़ा क्रोधी व रुक्ष (रूखा) बन जाता है। चेहरा फीका, पीला व मुर्दे की तरह निस्तेज बन जाता है।

[४] गालों पर से पहले की वह गुलाबी छटा नष्ट होकर झाईं पड़ने लगती है (काले दाग़ पड़ने लगते हैं)। यह अत्यन्त वीर्यनाश का निश्चित लक्षण है।

[५] आँखें व गाल अन्दर धँस जाते हैं और गाल की हड्डियां खुल जाती हैं।

[२०] किसी समय ऊपर उठते समय एकाएक दृष्टि के सामने अन्धेरा छा जाना तथा मूर्छा आनेसे नीचे गिर पड़ना।

[२१] मस्तिष्क का बिल्कुल हलका व खाली पड़ना। स्मरण शक्ति का ह्रास होना। देखे हुए स्वप्न का याद न आना रक्खी हुई वस्तुका स्मरण न होना और कण्ठ की हुई कविता या पाठ भी भूल जाना और मानसिक दुर्बलता का बढ़ जाना।

[२२] जलवायु का परिवर्तन न सहा जाना।

[२३] चित्त का अत्यन्त चंचल, दुर्बल, कामी व पापी बनना और कोई भी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकना तथा सब काम अधूरे ही करके छोड़ देना। एक भी अच्छा काम पूर्ण न करना पर कुकर्म हर प्रयत्न पूर्वक पूरा करना। गिरगिट की तरह सदा विचार व निश्चय बदलते रहना और सदा मन, शरीर व नापाक बने रहना।

[२४] दिमाग़ में गर्मी छा जाना। नेत्रों में जलन आरम्भ होना व नेत्रों से पानी बहने लगना।

[२५] क्षण ही में रुष्ट व क्षण ही में तुष्ट होना।

[२६] माथे में, कमर में, मेरुदण्ड में और छाती में बार बार दर्द उत्पन्न होना।

[२७] दाँत के मसूड़े फूलना। मुख से महान दुर्गन्धि का आना, तथा शरीर से भी* बदबू निकलना। वीर्यनाश के

* दुर्गन्धो योगिनो देहे जायते बिन्दुसंक्षयात्।

—श्री शिवदास शर्मन

सुगन्धि निकलती है। (अतः दांत को बिल्कुल साफ रखना चाहिए।)

[२८] मेरुदण्ड का झुकजाना; फिर हर समय झुक कर बैठना।

[२९] वृषण की वृद्धि होना तथा उनका विशेष लटक जाना।

[३०] आवाज़ की कोमलता नष्ट होकर आवाज़ मोटी, रूखी व अप्रिय बन जाना।

[३१] छाती का दुर्भंग हो जाना अर्थात् छाती पर का अन्तर गहरा और विस्तृत बन जाना। और छाती की हड्डियां दीखने लगना।

[३२] नेत्ररूपी चन्द्र सूर्य को ग्रहण लगना। नाक के कोने में प्रथम कालिमा छा जाती है, फिर बढ़ते बढ़ते आंखों के चतुर्दिक ग्रहण लग जाता है अर्थात् चारों ओर से नेत्र काले पड़ जाते हैं। यह अत्यन्त वीर्यनाश का बड़ा भयानक और भीषण चिन्ह है।

[३३] किसी बात में सफलता न होना तथा सर्वत्र निन्दित व अपमानित बनना यह वीर्यनाश की पूरी निशानी है सन्तति-सम्पत्ति का धीरे धीरे नाश होना, अधर्म व्यभिचार व पाप का बढ़ना, आयु का घट जाना; शास्त्राज्ञाओं को

कुछ भी न मानना और अपनी ही मनमानी करना। अर्थात् "विनाश काले विपरीत बुद्धिः" इस कहावत के अनुसार सब उलटी ही बातें करना यह गुलामी के खास चिन्ह हैं। सम्पूर्ण अपयश, दुःख व गुलामी का कारण एक मात्र वीर्य का नाश ही है।

[२४] अन्त में कभी दुःख और पश्चाताप के मारे आत्म-हत्या करने का भी विचार करना। इति प्रमुख चिन्हानि।

—श्री शिवानन्द जी

वीर्य !

"वीर्य ही मनुष्य-शरीर का जीवन है। इसके बिगड़ने से रक्त का नाश हो जाता है और अन्त में सुधरना असम्भव हो जाता है।"

—डा० पी० टी० हार्न

हम लोग जो भोजन करते हैं जठराग्नि (पित्त) से उसके दो भाग हो जाते हैं—सार और कचरा। सार रस है और कचरा मल मूत्र। रस से क्रमशः खून, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा और वीर्य बनते हैं। सबमें श्रेष्ठ वीर्य है। जैसे दूध का सार घी है वैसे ही भोजन का सार वीर्य है। एक मन भोजन से सेर भर खून बनता है और सेर भर खून से ढाई तोला वीर्य। जैसे सूर्य अपने तेज से सब अन्धकार नष्ट कर देता है वैसे ही जिस शरीर में वीर्य (तेज) सुरक्षित है वह शरीर दिव्य प्रकाशमय बन जाता है।

वीर्य का स्थान सारा शरीर है जैसे फूल में सुगन्ध, गन्ने में रस, तिल में तेल और दूध में घी सारी जगह रहता है वैसे ही वीर्य भी शरीर के सारे भाग में रहता है। यदि इन पदार्थों से इनका तत्व चला जाय तो ये निकम्मे हो जाते हैं। सुगन्ध और रस निकलने से फूल और गन्ना घास रूप हो जाते हैं, तेल

निकल जाने से तिल की खल रह जाती है और घी निकल जाने से दूध साररहित हो जाता है। उसी प्रकार वीर्य अथवा सत्व नष्ट होने पर मनुष्य जीता हुआ भी मुर्दे के समान होता है। उसका जीवन भारी हो जाता है।

आँख, कान, नाक, मस्तिष्क, छाती, भुजाओं, कमर आदि सभी इन्द्रियों को बल देने वाली अमूल्य वस्तु वीर्य ही है। इसके नाश से शरीर का नाश है। इसकी रक्षा ही आत्म-रक्षा है।

वीर्य ही दिमाग़ी ताक़त है, वीर्य ही स्मरण शक्ति है, वीर्य ही आरोग्यता का मूल है, वीर्य ही तेज (ओज) का भण्डार है और वीर्य ही सुख का दाता है। वीर्य बुद्धिमानों को बुद्धि, बलवानों को बल, कला शालियों को कला, और वीरों को वीरता देता है। वीर्य ही शोधकों को आविष्कार बताता है, धन चाहने वालों को धन पैदा कराता है, विद्यार्थियों को विद्या प्रदान करता है, ज्ञानियों में ज्ञान प्रकट करता है, चारित्र धारियों को सच्चारित्र बनाता है, ध्यानियों को ध्यान-सिद्धि देता है और मुमुक्षुओं को मोक्ष तक प्राप्त कराता है।

जैसे बिजली या पानी और अग्नि से बनी हुई वाष्प से सहस्त्रों प्रकार के यन्त्र चलते हैं तथा जल बरसने से असंख्य जाति की वनस्पति पैदा होती है वैसे ही इस अद्भुत शक्ति देने वाले वीर्य को सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। ज्ञानी लोग इसका मूल्य समझकर इसकी रक्षा करते हैं और अज्ञानी नाश।

———o———

वीर्य रक्षा।

मृत्यु व्याधि जरानाशी पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहं ॥

—धन्वन्तरि।

वीर्य एक अमूल्य वस्तु है। एक बार के सम्भोग से महीने भर में इकट्ठा किया हुआ वीर्य नष्ट हो जाता है। इसलिए संयम अर्थात् वीर्य-रक्षा की कितनी आवश्यकता है, यह पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

हरएक पुरुषको २५ वर्ष तक इन्द्रिय-संयम रखना चाहिए। २५ वर्ष तक वीर्य कच्चा रहता है। जैसे कच्चा अण्डा या कच्चा गर्भ बाहर आते ही नष्ट हो जाता है वैसे ही कच्चे वीर्य के निकलने का नतीज़ा है। कच्चे वीर्य से पहले तो सन्तान होती ही नहीं। यदि हो भी जाय तो शीघ्र मर जाती है, दीर्घ जीवी तो कदापि नहीं होती। कुछ वर्ष जी भी जाय तो रोगी और दुखी रहती है।

वैसे तो मनुष्य की उम्र सौ वर्ष की समझी गई है परन्तु भारत में औसत उम्र (Average age) २३ वर्ष के क़रीब है जब कि इङ्गलैण्ड, एमेरिका आदि देशों में यह ५० से ६० वर्ष

तक है। इसका कारण यह है कि हम वीर्य रक्षा के नियमों का पालन नहीं करते परन्तु वे लोग ऐसा करते रहते हैं।

वीर्य रक्षा के लिये पचीस वर्ष पहले शादी नहीं करना ही उचित है। ऐसी शादी करने वाले खुद के तो शत्रु हैं ही, वे सन्तान, जाति और देश से भी महान् शत्रुता कररहे हैं; क्योंकि इससे दुर्बल, मन्दबुद्धि, निरुत्साही, ईर्षालु, क्रोधी, डरपोक, कायर, रोगी, अल्पायु, विषयी और प्रमादी प्रजा पैदा होती है। हम इस घोर पाप से बचें यही प्रार्थना है।

पचीस वर्ष तक जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य पाला है उसकी सन्तान सदा दिव्य बनती है। 'पचीस वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने' का यह अर्थ कभी नहीं किया जाय कि विवाह के बाद संयम रखा ही न जाय। सत्य तो यह है कि स्त्री संयोग केवल सन्तान की उत्पत्ति के लिये हैं, विषय वासना की तृप्ति के लिए नहीं। जो ऐसा नहीं समझता वह कभी सुखी नहीं हो सकता। जैसे खेती पकने पर भी जिस तरह टिड्डी या अतिवृष्टि से दुष्काल पड़ सकता है उसी तरह पचीस वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने पर भी अधिक भोग करने से शक्ति, बल बुद्धि और तेज का नाश हो जाता है।

वीर्य पचीस वर्ष में पकता है परन्तु उसका पूर्ण संचय होता है चालीस वर्ष में। जो चालीस वर्ष तक जरा संयमी रहे वह दिव्य शक्ति पा सकता है। पहिले पचीस वर्ष से कम उम्र में ब्याह करना, ब्रह्मचर्याश्रम (व्रत) का तोड़ना महा अपराध

माना जाता था। इसी लिए भारत उस समय संसार का शिरोमणि और गुरु समझा जाता था।

यदि कोई जीवन भर अखण्ड ब्रह्मचारी रहे और आत्मतत्व को जानकर आत्मध्यान में लग जाय तो परमात्म स्वरूप (मोक्ष) प्रकट करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। जो जीवन भर के लिये यह व्रत नहीं पाल सके उसे गृहस्थ व्रत अर्थात् स्वपत्नीव्रत का अवश्य पालन करना चाहिये।

स्त्रियों को १६ वर्ष तक प्रधान धातुएँ कच्ची रहती हैं इससे पहिले संयोग करना इनके लिये भयंकर है १६ से २४ वर्ष में स्त्रियों को प्रधान धातुओं का पूर्ण संचय होता है जो पुरुष के चालीस वर्ष में होता है। पुरुष चालीस वर्ष और स्त्रियां पचीस वर्ष तक यदि संयमी रहें तो सुखी काल कहो अथवा सतयुग कहो वह प्राप्त हो सकता है।

विवाह के बाद दम्पति धर्म की रक्षा खेती की तरह करनी चाहिये। सारे शरीर में वीर्य राजा है। जहां वह विराजमान है वह शरीर एक मज़बूत क़िले की तरह है जिसपर रोग रूपी शत्रु हमला करके कभी विजय नहीं पा सकता।

ब्रह्मचर्य की दृढ़ता के अनुसार ध्यान की प्राप्ति होती है। दुर्बल वीर्य को विषय वासना बहुत होती है। वीर्य को भोग में नाश करने वाला, रत्न से कौए उड़ाने वाले तथा अमृत को कीचड़ में डालने वाले के बराबर है; इसलिए बुरी इच्छाओं का त्याग करो।

(६) ब्रह्मचर्य व आरोग्य।

"धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगाः तस्याऽपहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च" ॥१॥

एक मात्र आरोग्य ही चारों पुरुषार्थों का सर्वोत्तम मूल है और रोग उन चारों को भी नष्ट कर डालते हैं, यही नहीं किन्तु जीवन को भी अकाल ही में चिन्ता और चिता पर चढ़ा देते हैं।

सच है रोगी पुरुष किसी काम का नहीं होता। वह सबके लिये बोझ स्वरूप बन जाता है। रोगी संसार और परमार्थ दोनों में नालायक़ बना रहता है। रोगी मनुष्य के लिये सब संसार शून्य बन जाता है। उसके लिये भोग विलासकी सम्पूर्ण वस्तुयें भी दुखदाई बन जाती हैं, रोगी पुरुष चाहे राजभवन में रहे चाहे हिमालय जाय—कहीं भी सुखी नहीं हो सकता। उसकी रोनी सूरत तब ही मिट सकती है कि वह या तो मिट्टी में मिल जाय अथवा प्रकृति के अनुसार पुनः शुद्ध बर्ताव करने लग जाय।

निसर्ग के राज्य में मूलतः प्रत्येक प्राणी निस्सीम निरोगी, परम सुन्दर, सब प्रकार से पूर्ण तथा अव्यंग पैदा होता है। स्वयं लोग ही अपने दुष्कृत्यों द्वारा अपने दिव्य स्वरूपको बिगाड़ा

आरोग्य को और सुडौल शरीर को बिगाड़ डालते हैं। "जो जस करइ सो तस फल चाखा" यह अमिट सिद्धान्त है। सम्पूर्ण विश्व में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है कि जो हमें हमारी इच्छा के विरुद्ध रोगी या निरोग बना सकती हो। गिद्ध, चील, कव्वे वगैरह उसी स्थान पर जाते हैं, जहाँ पर कोई सड़ा जानवर पड़ा रहता है; उसी तरह रोग, शोक और दुख उसी शरीर में प्रवेश करते हैं जहाँ पर उनका खाद्य उन्हें मिलता है। आज कल के ब्राह्मण किसी मरे हुए बड़े सेठ के यहाँ जैसे बिना बुलाये दौड़ आते हैं वैसे ही रोग, शोक, दुःखादि भी नष्ट-वीर्य-पुरुष के यहां तुरन्त चले आते हैं। परन्तु आरोग्य, सुख शान्ति, समृद्धि, आनन्द इनका हाल ऐसा नहीं है, वे बड़े ही मानी हैं। दुराचारी व्यभिचारी, पुरुषों से वे कोसों दूर रहते हैं; केवल सदाचारी ब्रह्मचारी पुरुषों के ही यहाँ वे निवास करते हैं। ब्रह्मचारी पुरुषों को कोई भी रोग नहीं सता सकता; प्लेग और हैज़ा (Plague and Cholera) भी उनका कुछ नहीं कर सकते। सब कोई दुर्बलों को ही मारते हैं। बलवान को कोई नहीं सता सकता। "दैवो दुर्बल घातकः" (कर्म दुर्बल को ही दुःख देते हैं सुपुरुषार्थ से बिना कटुक फल दिये ही कर्म नाश हो जाते हैं)। बस यही प्रकृति का लाभ है। अतः हमको अब सब तरह से बलवान ही बनना होगा, क्योंकि बलवान ही राजा है, चाहे वह निर्धन भले ही-हो। रोगी पुरुष को राजा होने पर भी भिखारी और पूर्ण

अभागा समझना चाहिए। "तन्दुरुस्ती हज़ार निआमत* है।" भोगी पुरुष सदा रोगी ही बना रहता है, वह कभी भी योगी यानी सुखी नहीं हो सकता, वह सदा वियोगी अर्थात् दुःखी ही बना रहता है। व्यभिचारी पुरुष कदापि निरोगी और बलवान नहीं हो सकता। एक मात्र वीर्यवान् ही बलवान्, आरोग्यवान, भक्तिवान और भाग्यवान हो सकता है। वीर्यनष्ट पुरुष सदा रोगी दुःखी, पापी और अभागा ही बना रहता है। उसका उद्धार फिर से वीर्य धारण किये बिना सात जन्म में भी होना असम्भव है।

संसार में तीन बल हैं:—

एक शरीरबल, दूसरा ज्ञानबल और तीसरा मनोबल। इन तीनों में मनोबल अर्थात् आत्मबल सबसे श्रेष्ठ बल है। बिना आत्मबल के और सब बल वृथा हैं। बाहुबल, सैन्यबल, द्रव्यबल, नीतिबल, मतिबल, चारित्र्यबल, धर्मबल, ब्रह्मबल, आदि जितने बल संसार में मौजूद हैं, सब इन्हीं तीनों बलों के अन्तर्गत हैं। इनमें सबसे पहली सीढ़ी 'शरीरबल' की है। बिना निरोग शरीर के ज्ञानबल और आत्मबल प्राप्त नहीं हो सकते। शरीरबल ही हमारे सम्पूर्ण बलों का एक मात्र मूलाधार है। अतएव हमें व्यायाम और ब्रह्मचर्य द्वारा सबसे प्रथम शरीर सुधार अवश्य कर लेना चाहिए।

* निआमत = लाभ।

आज हमें भारत के उत्थान के लिये आत्मबल अर्थात् चरित्रबलकी तो मुख्य आवश्यकता हैही, परन्तु उसके साथही साथ शारीरिक वल और ज्ञानवल की भी अत्यन्त अनिवार्यरूप से आवश्यकता है। शरीरबल न होगा तो हम संसार संग्राम में विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। दुर्वलता के कारण हम दूसरों के तथा काम क्रोध रोगादि वैरियों के सदा दास ही बने रहेंगे। हमारे घर में यदि कोई ज़बरदस्ती से घुस गया हो तो उसे बाहर घसीट कर ले आने के लिये हमारे में शरीर-बल का होना ही परम इष्ट है। बिना शरीरबल के वह डांकू खुशी से बाहर नहीं निकलेगा। अतः शरीरबल प्राप्त करना सबसे प्रथम ध्येय होना चाहिए। क्योंकि शरीरबल ही सब ध्येयों का मुख्य आधार है। बिना शरीर सुधार के हम किसी भी अवस्था में सुखी और स्वतन्त्र नहीं हो सकते और न किसी काम में सिद्धि ही प्राप्त कर सकते हैं। शरीर रोगी होने पर संसार का कोई भी पदार्थ व व्यक्ति हमें कभी सुखी व शान्त नहीं बना सकता केवल हम ही अपने को एक मात्र सुखी, स्वतन्त्र और शांत बना सकते हैं। अतएव शरीर-सुधार हमारा प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि यही चारों पुरुषार्थों का मुख्य मूल है, और इसी में हमारी मुक्ति किंवा स्वतन्त्रता भरी हुई है।

Sound mind in a sound body—यानी "शरीर सुखी और पुष्ट है तो आत्मा भी सुखी और पुष्ट है और शरीर दुःखी और दुर्वल है तो आत्मा भी दुखी और दुर्वल है," यही प्रकृति-

शास्त्र का नियम है, शरीर निरोग होने पर हमारी आत्मा भी अत्यन्त निर्मल, बली और सामर्थ्य-सम्पन्न बन जाती है। रोगी शरीर में आत्मा की उन्नति का होना कठिन है। अतएव प्रकृति के नियमानुसार चलकर सदाचरण द्वारा ब्रह्मचारी बन अपना शरीर-सुधार कर लेना हमारा सबसे प्रथम और श्रेष्ठ कर्त्तव्य है*।

—श्री शिवानन्दजी।

* "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" से साभार उद्धृत।

विषय सेवन आवश्यक नहीं।

"संसार में मनुष्य को अपना जीवन व्यभिचार रहित बनाने में ही सच्चा सुख है।"

(Socrates)
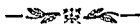
अनेक अज्ञानी लोगों का ऐसा विचार होता है कि यदि हम विषय सेवन नहीं करेंगे तो पुरुषत्व शक्ति ही चली जावेगी। यह धारणा बिल्कुल झूंठी है। एक प्रसिद्ध डाक्टर कहते हैं कि जिस प्रकार एक आदमी पचास वर्ष तक न रोवे तो उसकी रोने की शक्ति नष्ट नहीं होती। उसी प्रकार कितने ही वर्ष ब्रह्मचर्य भले ही रखो पुरुषत्व शक्ति कभी नष्ट नहीं होगी। इसके विपरीत ब्रह्मचारी ही सच्चे नर वीर बने हैं जिन्होंने लम्बी उम्र तक ब्रह्मचर्य पालन किया है वे महान प्रतापी हुए हैं और उनकी सन्तान भी वैसी ही नर-रत्न हुई है। जो अखण्ड ब्रह्मचारी हुए हैं वे महापुरुषों द्वारा ही क्या इन्द्र तक से पूजे गये हैं। ऐसे महापुरुष महान् तत्ववेत्ता और संसार का उद्धार करने वाले हुए हैं।

यदि मैथुन कर्म से पुरुषत्व शक्ति बढ़ती हो तो भोगी मनुष्य रोगी क्यों होते। गर्मी, सुज़ाक आदि रोग भोगी को क्यों होते हैं? फिर भोगी मनुष्य प्रमेह, प्रदर (स्त्री के पेशाब दस्त आदि में धातु क्षय होना) अशक्ति, क्षय, ज्वर आदि रोगों के शिकार क्यों होते हैं? वास्तव में बात तो यह है कि विषय सेवन से पुरुषत्व की रक्षा तो नहीं होती, यह शक्ति नष्ट अवश्य हो जाती है।

स्वपति व्यभिचार।

वही मैथुन जायज़ है जो वंश चलाने के लिये किया जाता है।

—महात्मा टालस्टाय।

लगभग समस्त पुरुषों की यह धारणा है कि, अपनी विवाहिता स्त्री के साथ, इच्छानुसार जिस समय चाहें उसी समय, चाहे जिस प्रकार और चाहे जितनी वार विषय वासना तृप्त की जाय तो कोई अनुचित नहीं है। परन्तु धर्मशास्त्र व समाज शास्त्र और आरोग्य शास्त्र इस वातसे इन्कार करते हैं। इनके नियमों के अनुसार यह कृत्य महापाप गिना गया है। इनकी राय में, पुरुष को विषय वासना तृप्त करने के लिए नहीं परन्तु सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही स्त्री-संग करना चाहिए। तथा गर्भ रहने के बाद या प्रसव हो जाने पर पांच वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए। लेकिन देखते हैं कि लोग इस आज्ञा की तरफ कुछ भी ध्यान नहीं देते। वे इन्द्रियों के वशीभूत होकर अपनी स्त्री को व्यभिचार के लिये सबसे सुगम और सस्ता साधन मानते हैं। हज़ारों पिताओं को एकत्रित कर उनसे सत्यता से पूछा जाय कि—क्या यह तुम्हारा धर्म पुत्र है? क्या तुमने पुत्र प्राप्ति की आवश्यकता के लिये, ऋतुकाल

के नियमानुसार शुद्ध मन से स्त्री-गमन किया था ? प्रत्येक से यही एक सच्चा उत्तर मिलेगा कि—नहीं, हमने तो केवल विषय वासना तृप्त करने के लिये ही स्त्री-गमन किया था। गर्भ तो अचानक दैवयोग से ही रहा।

जो पुरुष विषय वासना तृप्त करने के लिये स्त्री-गमन करते हैं उनसे यह आशा रखना दुराशा मात्र है कि उन्होंने गर्भावस्था में तो अपनी मनोवृत्ति पर काबू रक्खा होगा।

गर्भाधान के समय वीर्य के द्वारा जीव प्रवेश करता है। शरीर का धर्म है कि किसी भी अनावश्यक वस्तु को अपने भीतर नहीं रहने देता। यदि किसी प्रकार रह भी जाय तो सड़ने लग जाती है। रज वीर्य मिलकर पिंड और शरीर के अवयव पांच महीने में बन जाते हैं। गर्भिणी के लिये यह समय 'दोहद' अर्थात् दो हृदयवाला (एक गर्भ का हृदय और दूसरा गर्भिणी का हृदय) कहा जाता है। इस समय गर्भिणी को अनेक प्रकार की इच्छाएँ हुआ करती हैं। पर वास्तव में यह इच्छायें गर्भिणी की नहीं परन्तु गर्भस्थ बालक की होती हैं, इन इच्छाओं का गर्भ के ऊपर बड़ा असर पड़ता है। इस समय में जैसे आचार विचार होंगे वैसे ही संस्कार वाला बच्चा पैदा होगा। धर्म-शास्त्रकारों ने इस समय के लिये गर्भिणी को आवश्यक नियम पालने का उपदेश दिया है। वे अत्यन्त उपयोगी और कल्याणकारक हैं, परन्तु उनकी ओर देखने वाले भी कितने व्यक्ति होंगे ? हां, ऐसे बहुत मिल जायंगे जो इस

समय भी विषयतृप्ति करने से नहीं चूकते। इस व्यभिचार का स्त्री पर तथा बालक पर कितना बुरा असर पड़ता है क्या उन्होंने कभी यह सोचा भी है? गर्भ रहने के बाद स्त्री को, पुरुष संग की बिलकुल इच्छा नहीं होती, फिर भी वह बचने नहीं पाती यह कितने दुःख की बात है। जिस प्रकार अन्य कृत्यों का असर बालक पर पड़ता है इसी प्रकार यदि इस समय गर्भिणी के साथ विषय सेवन किया जाय तो उस विषयानन्द का अनुभव बालक को भी होता है। यहां पर एक बात विचारने योग्य है। वह यह कि यदि गर्भ में बालक पुत्री रूप में हो तो अपने पिता का ही विषयानन्द उसे प्राप्त करना पड़ता है। यदि शांत मस्तिष्क से यह बात विचारी जायगी तो मानना पड़ेगा कि यह एक प्रकार का पुत्री व्यभिचार का ही पाप कृत्य है। अनेक बार छोटे २ बच्चे कच्ची उमर में ही विषयानन्द की गन्दी चेष्टायें करते दिखाई दिया करते हैं, इसका कारण क्या है? लोग कहते हैं कि कलियुग आ गया है पर सच्चा कारण तो गर्भावस्था में की गई माता पिताओं का की कुचेष्टाओं का प्रभाव है। अनेक मूर्ख माता पिता १-२ वर्ष के बालक के सन्मुख कुचेष्टायें किया करते हैं। "ये छोटे बालक क्या समझें" इसी विश्वास के कारण किसी प्रकार का परदा नहीं रखते। यह एक भयंकर भूल है। बालक चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो उसके ऊपर सब कृत्यों का प्रभाव पड़ता ही है केवल शक्तिहीन होने के कारण वे अनुकरण नहीं कर सकते।

परन्तु शक्ति आने पर तुरन्त ही वे बालक कुचेष्टाएँ करने लग जाते हैं। क्योंकि अनुकरण करना बालक का स्वभाव है।

विशेष विषय सेवन करने से स्त्री पर भी कम असर नहीं पड़ता। जब वे व्याह कर आती हैं तब खिले हुए पुष्प के समान होती हैं पर कुछ ही समय के बाद वही रोगिणी और मुर्दार दिखाई देती हैं। अनेक स्त्रियों को प्रदर, कुसुवावड़ और छाती के रोग होते हैं इनका मुख्य कारण अति विषय ही है। स्त्री जाति का स्वभाव सहनशील होने से अनेक व्याधि में जीर्ण होकर क्षय का रूप पकड़ ले वहां तक कष्ट प्रकट नहीं करतीं। कितनी ही नाज़ुक स्त्रियों का शरीर पुरुषों की मूर्खता के कारण टूट जाता है, गर्भाशय और गुह्य अवयव शिथिल होकर स्थान भ्रष्ट हो जाते हैं और स्त्रियाँ, रक्त, प्रदर आदि रोगों की शिकार बन जाती हैं। अनेक स्त्रियों को प्रसव उचित रीति से नहीं होता इसलिये हाथ डाल कर या शस्त्रादि से बालक कांट छांटकर निकलवाना पड़ता है। अनेक स्त्रियोंको इस समय मृत्यु के बलि हो जाना पड़ता है। विश्वास के लिये आप सरकारी रिपोर्ट देख सकते हैं और मालूम कर सकते हैं कि स्त्रियों की मृत्यु संख्या भारत में किस प्रकार बढ़ती जारही है।

कलकत्ते के आरोग्य रक्षा विभाग के प्रधान (हेल्थ-आफिसर) लिखते हैं कि "स्त्रियों की मृत्यु पुरुषों से दुगुनी हो रही है।" बम्बई के हेल्थ आफिसर लिखते हैं कि "क्षय का रोग बढ़ रहा है और स्त्रियों को अतिशय क्षय हो रहा है। एक

पुरुष के पीछे आठ स्त्रियों को क्षय होता है" भारत की प्रजा की औसत-मृत्यु दूसरे देशों से प्रायः दुगुनी से भी अधिक होती है और औसत आयु अन्य देशों से आधे से भी कम। बालमृत्यु इस देश के बराबर कहीं नहीं होती, प्रसूति (जापे) में स्त्रियों की मृत्यु यहां सबसे अधिक है इन सबके कारण खोजने का कर्तव्य प्रत्येक पंचायती मंडल, सभा और समिति का है। कितने स्थानों पर इसके सुधार के उपाय किये जा रहे हैं ? उत्तर एक ही है कि इस दुःखमय हालत को जानने वाले भी कम हैं। इन सबका कारण विषय वासना की वृद्धि, स्त्रियों को विषय तृप्ति का मुख्य साधन मानना, परदा व स्त्रियों को परतन्त्र रखना, समाज में आरोग्य-शिक्षा का अभाव, निर्वीर्य की प्रजा, विलासी, विकारी, परतन्त्र, चिन्तामय, जीवन जाति व धर्म के कलहपूर्ण विकारी बन्धन, दोष समझने को व दुःख कहने की भी अज्ञानता अशक्ति व लज्जा, बाललग्न, अनमेल लग्न, और बुरे रीति रिवाज़ों, विलास या आडम्बरी गर्व, सुशिक्षा का अभाव आदि अनेक कारणों से जीवनशक्ति घटती है, परमानन्दमय मनुष्य भव दुःख मय होरहा है। प्रिय पाठक, आप तो आज से ऊपर के दोषों को छोड़ने का दृढ़ निश्चय कर लेवें और धर्मपत्नी, धर्मपुत्र, धर्मपुत्री, कुटुम्ब जाति समाज देश और जगत का हित करें, विषय संयम कर सत्कार्य में समस्त शक्ति समर्पण कर देवें। —श्री सौंदित्य

[चित्रमय जगत्]

एक बिछौना ।

तुम जितेन्द्रिय बनो और शरीर को पवित्र रखो तथा ऐसा होने के लिए अपने हृदय में कभी स्त्री का स्मरण भी मत करो।

—डा० एनी० बीसेण्ट।
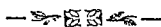
दो मनुष्यों को एक बिछौने पर कभी नहीं सोना चाहिए। इससे अनेक हानियाँ होती हैं। मनुष्य के रोम कूपों (रोंगटे के छिद्रों) से हर समय खराब हवा निकलती रहती है और वह एक दूसरे के शरीर में प्रवेश करके हानि पहुँचाती है। जो साँस शरीरसे नाक या मुंह द्वारा बाहर निकलती है, साथ सोने से एक दूसरे की यह ज़हरीली साँस लेने में आ जाती है और इससे अनेक रोग पैदा होते हैं। एक साथ सोने या साँस लेने से एक दूसरे की कई बीमारियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं।

अनेक मा बाप अपने छोटे बच्चों को शामिल या समीप सुलाते हैं। इससे ऊपर लिखे हुए नुक़सान तो होते ही हैं, कुकर्म में भी प्रवृत्ति होती है। मिरची या तम्बाकू के उड़ने से छींक आ जाती है, यह शरीर का सभाव है। इसी प्रकार दो शरीरों के परस्पर मिलने से विकार जगे बिना नहीं रहता।

इसलिये तीन वर्ष के हो जाने के बाद बच्चे भी अलग अलग सुलाये जाने चाहिए और उनकी रक्षा के लिये उन पर पूरी पूरी दृष्टि रखनी चाहिये।

स्त्री और पुरुष (दम्पत्ति) को एक ही बिछौने पर कभी नहीं सोना चाहिये। जिस प्रकार बिजली के नेगेटिव (Negative) और पोज़िटिव (Positive) तारों के मिलने से एक झटका पैदा होता है उसी प्रकार स्त्री और पुरुष के स्पर्श से विकार जगता है। जिस प्रकार नीम्बू को कटते देखकर ही मुंह में पानी आ जाता है, बादलों की गर्जना सुनकर मोर बोलने लग जाता है, चुम्बक के पास आते ही लोहा आप से आप खिंच जाता है, अग्नि के पास रखने से घी पिघल जाता है उसी प्रकार स्त्री के पास सोने से मनुष्य के विकार उत्तेजित हो जाते हैं, उसका वीर्य स्थान छोड़कर चलित हो जाता है। मैथुन करने पर वीर्य की हानि होती ही है, न करने पर धातु की दृढ़तामें तो अवश्य शिथिलता आती है। आज स्त्री पुरुषों को एक साथ सोने के नुक़सान मालूम न होने ही से विषय विकार तथा उससे होने वाले भयङ्कर रोग बढ़ रहे हैं। इसलिये एक बिछौने पर कभी नहीं सोना चाहिये, सुविधा हो तो एक कमरे में भी सोना अच्छा नहीं है।

आजकल यह प्रथा सी हो चली है कि यदि पति और पत्नी एक बिछौने पर नहीं सोवें तो उनके परस्पर में अनबन या मनमुटाव होना समझा जाता है। ऐसी प्रथाओं का गुलाम

होना समाज के अस्तित्व को खतरे में डालना है। भला जिस प्रथा के कारण अनेक रोग पैदा हों, शक्ति का नाश हो और छोटी उम्र में मृत्यु हो उसे रखना भी कोई बुद्धिमानी है ?

इस प्रथा के कारण स्त्री पुरुष व्यभिचार के इतने आधीन हो जाते हैं कि अशक्त होने परभी इस लतको नहीं छोड़ पाते। संयोग वश यदि वे विधुर या विधवा हो जावें तो टेव के आधीन होने के कारण गुप्त व्यभिचार और पाप करके नरक के भागी बनते हैं।

रहे शान्त जो युवा में, शान्त धीर वह वीर।
नष्ट हुए पर वीर्य के, को न बने गम्भीर ॥१॥

धर्मशास्त्र में यह बात स्पष्ट आती है कि पूर्व के दम्पति भिन्न मकान में सोते थे। जब किसी रानी के गर्भ में उत्तम जीव उत्पन्न होता तो शुभ स्वप्न आता और अपने महल से रानी राजा के महल में जाकर उसी समय कहती, ऐसा कथन है इससे भिन्न शय्या कितनी आवश्यक है यह स्पष्ट है। भिन्न शय्या न होने से आज धर्मपत्नि को पति वेश्या तुल्य बनाकर रोज भोग कर उभय के शरीर, बुद्धि और चरित्र नष्ट कर रहे हैं। इससे एक महान हानि यह है कि गर्भकाल में भी संयम नहीं रहता और प्रसव वेदना तथा दुर्बल, अल्पायुषी, विषयी व निस्तेज सन्तान पैदा होती है। अतः प्रिय पाठक! आज से भिन्न शय्याव्रत धारण करें।

विषय सेवन से हानियाँ

[लेखक—डा० अमृतलाल जी याफ्ना, एम. बी. बी. एस.]
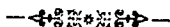
ब्रह्मचर्याभाव से कैसा हुआ क्रश गात।
मक्खियां कैसे उड़ें ? उठते नहीं हैं हाथ॥

—मैथिलीशरण गुप्त।

कची उम्र में विषय सेवन, अयोग्य उपाय से विषय सेवन, तथा योग्य वय में भी अति विषय सेवन से जो हानियाँ होती हैं वे उनके भोगने वाले ही जान सकते हैं, कारण यदि एक मनुष्य को अग्नि में डालकर अग्नि में जलावें तो उसकी वेदना का कौन वर्णन कर सके ? एक व्यापारी का सब माल सट्टे के व्यापार में नष्ट हो जावे तो उसकी चिन्ता कौन जान सके ? एक परिश्रमी नाहिम्मत ग़रीब विद्यार्थी परीक्षा में असफल (फेल) हो जावे तो उसके दिल का दर्द कौन जान सकता है ? एक बाल कन्या वृद्ध-विवाह से विधवा हो जाय तो उसकी अनन्त वेदना का दूसरा कौन अनुभव कर सकता है ? इसी प्रकार विषय सेवन से प्रमेह, गर्मी, सुज़ाक

आदि भयंकर रोग और अशक्ति, मन्दबुद्धि, चित्त-भ्रम आदि अनेक निर्बलतायें भोगनी पड़ती हैं जिससे मनुष्य युवावस्था ही में अपनी आकांक्षाओं को अपूर्ण रखकर तथा अपने छोटे बच्चों, को अनाथ व बिलखते हुए छोड़कर अपने पापों का फल पूरी तरह से भोगने के लिये घोर नरक का रास्ता लेता है। कितना दुःख! कितनी मर्म वेदना! "जहं दूखे तहं पीर"। वही अनुभव कर सकता है, जिस पर दुःखके पहाड़ गिरें। हाय! विषय सेवन का दुष्परिणाम! परन्तु जिसका वीर्य पचीस वर्ष तक क्षय नहीं हुआ है जो इस आयु तक पूर्णरूप से ब्रह्मचारी रहा है उसके शरीर का बल, चेहरे का तेज रौनक और चमक निराली ही होती है। उसका उमड़ता हुआ उत्साह, उसका प्रसन्न मुख, आनन्दित हृदय, फुर्तीला और चञ्चल अंग और उसकी हर कार्य में चञ्चलता आकर्षण की सामग्री होती हैं। आलस्य उससे दूर भागता है, शोक उसके पास नहीं फटकता। वह स्वयं तो प्रसन्न रहता ही है परन्तु उसको देख कर और भी सब प्रसन्न हो जाते हैं। उसका जीवन शान्ति, प्रेम और आनन्द का स्वरूप होता है। परन्तु हा मूर्खता! अज्ञान! जो युवकों और बालकों को पतन के गहरे खड्ड में गिरा रहे हैं।

आजकल के वीर्यक्षीण बालकों का निरीक्षण कीजिये। हम क्या देखेंगे? कान्ति, तेज, पराक्रम, पुरुषार्थ कुछ भी दृष्टिगत नहीं होते। आंखें गड़ी हुईं, गाल पिचके हुए, सरमें दर्द, कमर में दर्द, पेट में दर्द, पिण्डलियों में दर्द! शरीर निकम्मा, स्मरण

शक्ति काम की नहीं। सच है कच्चे वीर्य के क्षय होने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक, क्या २ हानियाँ नहीं होतीं ? क्या क्या विकार पैदा नहीं होते ?

शारीरिक रोग—जननेन्द्रिय के दोष—उसका शिथिल, दुर्बल, पतला व टेढ़ा पड़ जाना, नसों का फूल जाना, मूत्रेन्द्रिय के छेद का बड़ा हो जाना, वीर्य का जल्दी क्षय हो जाना, रुकावट न रहना, अण्डकोष का लटक जाना, सन्तान का न होना या दुर्बल होना, जिरियान (प्रमेह) प्रदर आदि रोग, धातुक्षय, मधु प्रमेह, इन्द्रिय व अण्डकोष का पूरा विकाश न होना, स्त्री के गर्भाशय का पूरा न बढ़ना।

साधारण—शरीर के दूसरे अंगों पर उसका असर, शरीर का दुर्बल होजाना, मन्दाग्नि, खाने का रस न बनना, गुर्दे पेशाब की थैली व हृदय की कमज़ोरी, नसों (Nerves) की दुर्बलता, आँखों की कमज़ोरी, दिमाग़ की शक्ति का घट जाना, जीवन शक्ति कम हो जाना, हृदय का धड़कना (Palpitation of heart), जिह्वा, होंठ, हाथ इत्यादि अंगों का काँपना, कमर का दर्द (Backache) थोड़े से श्रम से थक जाना, खून की कमी, (क्योंकि वीर्य की एक बूंद नष्ट होने से सौ बूंद खून नष्ट होता है। आयुर्वेदाचार्य कहते हैं कि सौ बूंद खाने के पदार्थ से १ बूंद रस बनता है, सौ बूंद रस से एक बूंद खून बनता है और सौ बूंद खून से एक बूंद वीर्य बनता

हैं), हाथ पांव में पसीना बहुत निकलना (पुस्तपाय) हाथ पैर टूटते रहना, पिंडलियों का दर्द करना, पेशाब सफेद व बार २ होना, लिवर (कलेजे) का ख़राब हो जाना, फेंफड़े की कमजोरी जिससे कि क्षयरोग, न्युमोनिया, इन्फ्लुएंजा आदि रोग जल्दी असर कर जाते हैं।

मानसिक विकार—निरोग शरीर में ही निरोग मन रह सकता है। मन की कमज़ोरी, स्मरण-शक्ति का कम हो जाना शरीर की शिथिलता, प्रमाद, आलस्य का रहना, काम पर तबीयत न लगना, चित्त प्रसन्न न रहकर व्याकुल रहना, चिन्ता उदासीनता से मन घिरा रहना, भयभीत रहना, कम हिम्मत होना और चित्त दृढ़ नहीं रहना, आत्मशासन (Self control) में कमज़ोरी, आत्मविश्वास की कमी, आविष्कार (दिमाग़ से नई बात पैश करने की) शक्ति का अभाव, सत्य न्याय व आत्म निश्चय की शक्ति की कमी (Lack of right judgment and self determination) इत्यादि।

आत्मिक विकार—वीर्यहीन पुरुष को आत्मोन्नति के मार्ग पर चलने की हिम्मत नहीं होती। शील, ब्रह्मचर्य, त्याग, और वैराग्य ही उत्तम चरित्र बनाते हैं। आत्मा की उन्नति कभी सच्चरित्र और सदाचार के बिना नहीं होती। सच्चरित्र शुद्ध मन के बिना नहीं रह सकता, और स्वस्थ शरीर ही में शुद्ध मन रह सकता है। जहाँ शरीर स्वस्थ नहीं, मन शुद्ध नहीं, सदाचार नहीं, वहां आत्मा का शुद्ध रहना असम्भव

है। शरीर व मन की व्याधि रहते हुए चित्त की एकाग्रता आत्मोन्नतिके लिये मुख्य व परमावश्यक है वह प्राप्त नहीं होती।

प्यारे बालको! अब तुम्हें मालूम होगया होगा कि वीर्य या शुक्र के नष्ट होने से शरीर को कितनी महान हानियाँ होती हैं? जवानी में बुढ़ापा आ जाता है लड़का स्कूल या कालेज से डिगरी लेकर निकलते ही क्षय (Pthisis) जैसे असाध्य रोगों से ग्रसित हो जाता है और उसका जीवन भार भूत हो जाता है। आप ऊपर देख चुके हैं कि वीर्य कितने खाद्य पदार्थ, रस और खून का सार है और इसलिये कितनी अमूल्य वस्तु है। अब यह आप से आप ख्याल कर लीजिये कि जल्दी २ वीर्य क्षय होने से क्या हाल हो सकता है? आप और व्यय, आमदनी और खर्च का भी तो हिसाब लगाइये। क्या आप उतना घी दूध खाते और पचाते हैं कि जिससे वीर्य खर्चके बराबर बनता रहे? बल्कि आजकल के अनेक बालकों को तो घी, दूध, मलाई, मक्खन देखकर ही नफ़रत होती है खाने का तो काम ही क्या? यदि दूध में मलाई आजाय तो कै (उलटी) होने लगती है। जब वीर्य वर्द्धक पदार्थ (घी दूध आदि) खाने का यह हाल है तो आप स्वयं विचारें कि वीर्य कितना और कैसे बनेगा? खर्च देखते हुए नुकसान अधिक है या नफ़ा? यदि नुकसान ही होता रहे तो थोड़े ही दिनों में दिवाला क्यों न निकलेगा?

बन्धुओ! पहले तो खाद्य पदार्थ भी (आटा, घी, शक्कर दूध) वगैरह कम मिलते हैं। जो मिलते हैं तो अच्छे व शुद्ध कहाँ? वैसे मिल भी गये तो खाये नहीं जाते। फिर हम बलिष्ट कैसे बन सकते हैं? इसलिये बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं और, सैकड़ों बालक व युवक दरख़्त के कच्चे फल की तरह समय से पहले ही कराल काल के गाल में चले जाते हैं और देश और जाति की बहुत क्षति हो रही है। क्या आप अब तो इस ओर ध्यान देकर अपने अमूल्य रत्न की रक्षा कर बलवान और वीर बनेंगे तथा भारत के प्यारे दुलारे बन कर मातृभूमि की सच्ची सेवा करेंगे?

धर्मशास्त्र में लिखा है कि जो मनुष्य सुख के ख़ज़ाने को अग्नि में जलाकर प्रकाश का आनन्द लेता है, वह जितना मूर्ख है उससे ज्यादा मूर्ख वह है जो विषय सेवन द्वारा तन, मन, धन, योवन, सुख, श्रेय और सब कल्याणों का नाश कर देता है। विषयी मनुष्य का मन सदा मलीन रहता है। उसके मन में संकल्प विकल्प बने रहते हैं। उसकी आत्मा बुरे कर्म से मलीन रहती है। उससे ध्यान, तप, संयम की आराधना हो ही नहीं सकती। वह मनुष्य रूप में नारकी है।

विषय भोग मनुष्य की प्रगतिके विनाश करने का महाशस्त्र है। जैसे वृक्ष को नष्ट करने का श्रेष्ठ उपाय उसे जड़ से काटना है उसी प्रकार इससे मनुष्य भव के सब सुखों की जड़ें कटती हैं। जड़ कटने पर मीठे फलों की इच्छा करना व्यर्थ है। इसी

प्रकार भोग करके सुख प्राप्त करनेकी इच्छा भी बिलकुल मिथ्या है। शास्त्रमें बिलकुल ठीक कहा गया है कि "विषय भोग में क्षण मात्र का मिथ्या सुख का अंश मालूम होकर बहुत काल का दुःख मिलता है और यह विषयभोग, दुःखों से छूटने के उपायों से सर्वथा विपरीत हैं। सब अनर्थों की खान भोग ही है।

शस्त्र का घाव, विष पान व सर्प डंक थोड़ी देर दुःख दे सकते हैं, परन्तु भोग के दुःख अनन्त जन्म तक भोगने पड़ते हैं। भोग की इच्छा से ही दुःख मिलते हैं तो साक्षात् भोग करने वालों की क्या दशा होयेगी ?

भोग अज्ञानी व्यसनी जीवों को सुख देते हैं। भोग में सुख का अंश भी नहीं है, जो संयमी हैं उनको जो सुख है वह दिव्य भोग के स्वामी को भी नहीं है। कुत्ता हड्डी चबाकर अपने तालू के रक्त में आनन्द मानता है इसी प्रकार भोगी अपने वीर्य रात्रा का क्षय करके आनन्द मानता है।

तम्बाकू व शराब में क्या स्वाद व सुख है ? तथापि उसके व्यसनी उसमें सुख मानते हैं इसी प्रकार भोग व्यसन मात्र है जिस प्रकार व्यसन रहित मनुष्य को संतोषामृत का परमानंद मिलता है उसी प्रकार भोग के त्यागी को अनन्त सत्य सुख का अनुभव होता है।

सब विषयी गीत विलाप तुल्य हैं, सब नाटक विडम्बना मात्र हैं, सब वस्त्र व गहने भार रूप हैं और सब काम-भोग केवल दुःख को लाने वाले हैं।

इस प्रकार विषय सेवन की हानियाँ समझकर प्रिय पाठक आज से वीर्य के पूर्ण रक्षक बनने का दृढ़ निश्चय करलें यही प्रार्थना है।

ब्रह्मचर्य व आश्रम चतुष्टय ।

हमारे शास्त्रकारों ने शास्त्रों में "प्रकृति के नियमानुसार" चार आश्रम निर्धारित किये हैं। उनमें से प्रथम और सबसे प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम है। मानो यह आश्रम सम्पूर्ण आश्रमों की नींव है और वास्तव में है भी ऐसा ही। ब्रह्मचर्य्याश्रम की मर्यादा उन्होंने पुरुष की २५ की और स्त्री की १६ वर्ष की "पूर्ण दृष्टि" से निश्चित की है। इसमें तिल भर फ़र्क़ नहीं हो सकता। यदि व्यक्ति इस नियम को तोड़े तो प्रकृति भी उस व्यक्ति को तोड़ डालती है। प्रकृति के नियम परम कठोर हैं; जो उन नियमों के अनुसार चलता है उसे वे अमृत के समान फल देने वाले होते हैं और जो उनका अतिक्रमण करता है उसके लिये वे विषतुल्य संहारक बन जाते हैं। सदुपयोग करने से अग्नि जैसे परम उपकारी हो सकती है और दुरुपयोग करने से वही अग्नि जैसे महान् विनाशक बन जाती है, ठीक यही न्याय प्रकृति के सम्पूर्ण नियमों का भी समझिये।

ब्रह्मचर्य दो प्रकार के हैं। एक "नैष्ठिक" और दूसरा "उपकुर्वाण" आजन्म ब्रह्मचारी को "नैष्ठिक" कहते हैं और गुरुगृह में यथायोग्य ब्रह्मचर्य पालन कर, विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले ब्रह्मचारी को "उपकुर्वाण" कहते हैं।

यदि कोई आजन्म-मरण ब्रह्मचर्य व्रत धारण करे तो फिर पूछना ही क्या ? वह इस लोक में सचमुच देवता ही के तुल्य पूज्यनीय बन जाता है।

दूसरा आश्रम 'गृहस्थाश्रम' है। इसकी मर्यादा २५ से लेकर ५० वर्ष तक की निश्चित की गई है। इसमें धर्माचरण से चल कर केवल सु-प्रजा निर्माण करने की आज्ञा है, न कि कु-प्रजा।

तीसरा ५० से लेकर ७५ वर्ष तक 'वानप्रस्थाश्रम' है। इस अवस्था में अपनी स्त्री को माता तुल्य मानकर, उसके साथ विषय-रहित शुद्ध व्यवहार रखने की आवश्यकता है।

चौथा और अन्तिम 'संन्यासाश्रम' (मुनि आश्रम) है, जिसमें कि सर्वसंग परित्याग कर आत्म कल्याणार्थ एकान्त का आश्रय लेना पड़ता है और अहर्निशि आत्मचिन्तन करना पड़ता है, न कि विषय चिन्तन या पक्षबन्धन अथवा मान प्रतिष्ठा का चिन्तन।

एक मात्र ज्ञानी और विरक्त पुरुष ही मुनिधर्म का अधिकारी हो सकता है। मूर्ख व रोगी पुरुषों को मुनि होना पूर्ण लांछनास्पद और अवनतिप्रद है। मूर्ख पुरुष हारकर पेट के लिये ही बीच में सन्यासी, मुनि, बाबा बन जाते हैं। लेखक ने ऐसे कई मूर्ख और दुराचारी सन्यासी और अधम वानप्रस्थाश्रमी अपनी आँखों देखे हैं और गृहस्थाश्रमियों को तो आप हम सभी देख रहे हैं।

चार आश्रम से जीवन के चार विभाग हैं। यह क्रम आज नहीं पालन करने से रोगी, अल्पायु वीर्यहीन अयोग्य प्रजा, वृद्ध लग्न, विधवा वृद्धि और गुप्त गर्भपात आदि महा दुःखदायी हालत समाज भोग रही है। ब्रह्मचर्य का पालन ७५ वर्ष तक तीनों आश्रम में करने का है परन्तु वर्तमानमें बचपन से कुचेष्टा शुरू होकर मृत्यु समयतक विषयेच्छा कायम रहती अनेक स्थान में दृष्टिगोचर होती हैं। पूर्व काल में गृहस्थाश्रम का त्यागकर अनेक महापुरुष अखण्ड ब्रह्मचारी रहते थे परन्तु ऐसे मनुष्य विरले थे। गृहस्थाश्रम का कर्तव्य तीनों आश्रमवासियों की तन मन, धन से सेवा करना, भोगों में मर्यादित रहना और संयम का अभ्यास करना है। आज गृहस्थाश्रम पूर्ववत् सेवाश्रम नहीं है परन्तु भोगाश्रम हो रहा है और बाकी के तीन आश्रम तो दुष्कर हो गये हैं। इसके फल में भारतवासियों का औसत आयु पूर्व में १०० वर्ष था वह आज २३ वर्ष का हो गया है यदि विद्यार्थी समाज सुधार कर चारों आश्रम का पालन करेंगे तो समाज देश व धर्म की रक्षा हो सकेगी। गृहस्थाश्रम में भोग लालसा भयंकर है। एक कमरे में दम्पत्ति का शयन ही विषय बढ़ाता है। भोजनगृह में जाने वाला बिना भूख के भी थोड़ा खा लेता है, ऐसी ही यह दशा है। फल में रोग अशक्ति और शीघ्र मृत्यु तथा दुर्बल प्रजा का दुःख मिलता है। दूसरा अनर्थ एक बिछौने का बहुमैथुन है कभी स्त्री पुरुष को एक बिछौने में नहीं सोना चाहिये अन्यथा अग्नि में घृत की जो दशा (विनाश) होती है वही होगी। तीसरा महान्

अनर्थ सगर्भा स्त्रीके से मैथुन है इससे स्त्री के शरीर को बहुत हानि, भावी प्रजा में विषय वासना के गाढ़ संस्कार और अकाल काल के जोखिम होते हैं। आज ये फल प्रत्यक्ष देखकर भी माता पिता बहू व पुत्रियों को बचाने के लिये अलग नहीं सुलाते यह शत्रुता है अज्ञान है विषमय प्रेम है। पाठक स्वयं बचें व औरोंको बचानेका प्रयत्न करें। यह याद रखना जरूरी है जितना विषय संयम (ब्रह्मचर्य) होगा उतना ही शारीरिक मानसिक और आत्मिक सुख प्रगट हो सकेगा।

(स्वामी शिवानन्द जी)

ब्रह्मचर्य और विद्यार्थी

ब्रह्मचर्याश्रम को विषयरूपी कुल्हाड़ से उड़ाने वाले आज लाखों करोड़ों स्त्री-पुरुष जिधर देखो उधर चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। जड़ काटने से जैसे पेड़ की स्थिति होती है, वैसे ही खराब और गिरी दशा ब्रह्मचर्यरूपी जड़ को काटने वाले गृहस्थाश्रमियों की हो गई है। "नष्टे मूले नैव शाखा न पत्रम्" (मूल नाश होने से डाली व पत्ते नहीं होते) इस न्याय से बेचारे दिन व दिन सूखे जा रहे हैं और निःसन्तान बन रहे हैं। बाल पके हुये, अन्धे बने हुये, चश्मे लगे हुये, कमर टूटी हुई, बाहर भीतर रोगों से घुले हुये, आंखे गाल अन्दर धंसे हुये, दुःखी दुर्बल और निरुत्साही बने हुए। निःसत्व निस्तेज बनकर अत्यन्त डरपोक बने हुये, सब तरह से शक्ति-रहित,

पापी और गुलाम बने हुये, असंख्य दुःखों में सने हुये, ऐसे २०-२५ वर्ष के निर्वीर्य बूढ़े विद्यार्थी और गृहस्थाश्रमी ही आज सर्वत्र दिखलाई दे रहे हैं! हा! यह दृश्य बड़ा ही भयानक मालूम हो रहा है। इस हृदयद्रावक दृश्य से भारत प्रेमियों का हृदय आज भीतर ही भीतर जल रहा है। जिनके ऊपर भारत का सच्चा उद्धार निर्भर है, जो कि भारत के मुख्य आशास्थल और आधारस्तम्भ हैं। ऐसे नौजवानों को ऐसी पतित और शोकपूर्ण दशा में देखकर किस भारतपुत्र का हृदय दुःख से हिल नहीं जाता! हमें तो रुलाई आने लगती है।

प्रभो! यह हमारा बड़ा ही भारी पतन हुआ है। जो भारत एक समय परमोच्च उन्नति का केन्द्र था, जिस भारतवर्ष में हज़ारों बलशाली और वीर्यशाली नरसिंह वास करते थे, जिसकी ओर कोई भी राष्ट्र आँख उठाकर नहीं देख सकता था, जो सम्पूर्ण विद्याओं में सबका गुरु था, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण दुनियाँ पर पड़ा हुआ था, जिसके अंगुलिनिर्देश से सम्पूर्ण दिग्मण्डल काँप उठता था, वही भारत आज गुलामों का कैद-खाना सा बन रहा है और सब तरह से पीसा, निचोड़ा और जलाया जा रहा है। हाय! इससे बढ़कर पतन और कौनसा हो सकता है? नहीं, हमको अब तुरन्त उठ खड़े होना चाहिये। इसी में हमारी भलाई है। यदि न चलेंगे तो भारत का चिन्ह तक मिट जाने की संभावना है। इसलिये ऐ मेरे भारतवासी भ्रातृ-भगिनी-मित्रगण! सब सावधान होइये! आँखें खोलकर

अपने तथा अन्य देशों की ओर फिर निहारिये और निहार कर अपना पूर्व वैभव प्राप्त करने के लिये निश्चय से कटिबद्ध हो ब्रह्मचर्य द्वारा अपना पुनः उद्धार कर लीजिये। एक ब्रह्मचर्य ही के द्वारा हमारा उद्धार होना 'सहज सम्भव' है, अन्य सब उपाय वृथा हैं। बिन्दु को साधने वाला सब सिन्धुओं को भी अपनी मुट्ठी में (कब्जे में) ला सकता है! सम्पूर्ण संसार में ऐसी कोई भी वस्तु व स्थिति नहीं है, जिसे ब्रह्मचारी पुरुष प्राप्त न कर सकता हो। हाथी का रहस्य जैसे अंकुश है वैसे ही हमारे सम्पूर्ण विद्या वैभव और सामर्थ्य का रहस्य एक मात्र हमारा ब्रह्मचर्य ही है। अब भी हम ब्रह्मचारी बन सकते हैं और वीर्य धारण करके अपना तथा भारत का सच्चा उद्धार कर सकते हैं। अतः, ऐ मेरे परमप्रिय भारत पुत्रो! अब नींद को छोड़ दो, अब तक बहुत कुछ सो चुके हो और खो चुके हो। अब जागृत होकर खड़े हो जाओ और खड़े होकर निश्चय के साथ अपने पैर सिंह के समान उन्नति की ओर निर्भयता से बढ़ालो अवश्य विजय होगी, निश्चय जानो।

[श्री शिवानन्दजी]

सब सिद्धियां ब्रह्मचारीको ही मिलती हैं। शारीरिक, मानसिक, औद्योगिक, व्यापारिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक और आत्मिक उन्नति ब्रह्मचारी ही कर सकता है। अधःपतन का मूल विषय है और उन्नति का मूल ब्रह्मचर्य है।

काल विवाह ।

बाल-विवाह यह प्रत्यक्ष काल-विवाह ही है। यह पूर्णतया ब्रह्मचर्य का नाशक है। बाल विवाह सर्वथा धर्म-विरुद्ध व अप्राकृतिक है।

(१) जो पेड़ जल्दी बढ़ते, जल्दी फूलते फलते हैं (जैसे केला,पपीता,एरंड इत्यादि) वे उतने ही जल्दी नष्ट भी होते हैं। वैसे ही जो बालक बालिकायें जल्दी व्याही जाती हैं, जल्दी ऋतुमति होती हैं (केवल ऋतु प्राप्त होना यही स्त्री की युवावस्था का लक्षण नहीं है दुध-मुंहे दाँत को ईख चूसने के लायक समजना घोर मूर्खता है। ऋतुकाल का सच्चा अर्थ समझो! कम से कम गर्भाधान के समय स्त्री की आयु १६ वर्ष की होनी चाहिए। और पुरुष की २५ वर्ष की) और जो जल्दी लड़के, बच्चे वाली होती हैं, वे बहुत जल्द रोगग्रस्त हो मृत्यु को प्राप्त होती हैं। प्रत्यक्ष उनकी ही यह हालत है, तब फिर उनकी सन्तान की कौन कहे ? "बाप से बेटे व जमाई" जल्दी मरते हैं। तदनन्तर माता पिता रोते हैं और अपने ही हाथ से अपने कन्या-पुत्रों को चिता पर लिटा कर फूंकते हैं और अपना काला मुंह लेकर घर वापिस आते हैं। वाह रे प्रेम!

(२) जो पेड़ जल्दी नहीं बढ़ते (जैसे आम, इमली, अमरूद इत्यादि) और जल्दी फलते-फूलते नहीं वे जल्दी

मरते भी नहीं। वैसे ही जो बालक बालिकायें ज़्यादा उम्र में ब्याही जाती हैं और गर्भाधान के समय स्त्री की १६ व पुरुष की २५ वर्ष की आयु होती है और जो धर्म-नियमों के अनुसार चलते हैं, वे निस्संदेह सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं, ऐसा भीष्म पितामह का सिद्धान्त है। परन्तु अकाल ही में माता-पिता बने हुए अकाल ही में यमपुर सिधारते हैं।

(३) घास की अग्नि जैसी जल्दी बढ़ती है वैसी ही जल्दी बुझ भी जाती है और खैर, आम, इमली की अग्नि जल्दी नहीं बढ़ती और इस कारण जल्दी बुझती भी नहीं। "जो जल्दी बढ़ता है सो जल्दी गिरता भी है" यही प्रकृति का नियम है।

(४) आम को जब बौर आती है तो उसमें से बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। फिर छोटे छोटे फल (अमियां) लगती हैं फिर आंवले जैसे बड़े होते हैं तिसमें से भी बहुत कुछ नष्ट होते हैं। जब वे और भी पुष्ट होते हैं तब कहीं वे आखिर तक उस पेड़ पर स्थिर रह सकते हैं। वैसेही जो बालक-बालिकायें बचपन ही में ब्याहे जाते हैं उनमें से बहुत मर जाते हैं, जिसका अनुभव आज प्रत्यक्ष हम आप कर रहे हैं, और जो पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन कर गृहस्थाश्रम में विधिपूर्वक प्रवेश करते हैं वे ही केवल सौ वर्ष तक जीवित रहकर जीवन का पूर्ण आनन्द लूटते हैं।

(५) कच्ची कलियां तोड़ने से पुष्पों की महक मारी जाती है। उनमें सुगन्धि नहीं मिल सकती। कच्चे फल रसहीन,

कसैले और रोगकारी होते हैं। कच्चा भोजन पेट में अनेक रोग पैदा करता है वैसे ही कच्चेपन में विवाह करने और वीर्य को नष्ट करने से अर्थात् अ-पक वीर्यपात से नपुंसकता, दुर्बलता, क्षय, प्रमेहादि भीषण रोग उत्पन्न होते हैं, जो उस व्यक्ति को अकाल ही में मृत्यु की गोद में पहुँचाने में पूर्ण सहायक बनते हैं।

(६) कच्चा बीज कोई भी किसान खेत में नहीं बो सकता क्योंकि उससे खेती का और बीज वाले मालिक दोनों का नाश होता है। किसान लोग खेत में बोने वाले बीज को प्राण के तुल्य सम्भाल कर रखते हैं। यदि कभी भूखे भी रहना पड़े तो कुछ परवाह नहीं करते परन्तु उस बीज को ऋतुकाल (फसल) तक हाथ नहीं लगाते। वैसे ही मनुष्य को भी अपने वीर्यरूपी बीज को पच्चीस वर्ष तक पूरे तौर से सम्हालना चाहिए और बहु-मैथुनसे सर्वथा बचे रहना चाहिये। "जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे" यह ध्यान में रक्खो।

(कच्चे भुट्टों में या कच्चे काठ में घुन जल्दी लग जाता है और पक्के में बिल्कुल नहीं लगता। वैसे ही बचपन में वीर्य को नष्ट करने वाले। जब गांव में कोई रोग फैलता है तब सब से पहले कालके शिकार बनते हैं; वैसे २५ वर्ष वाले ब्रह्मचारी शिकार नहीं बनते। यथार्थ में ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्य नाश ही मृत्यु है)।

(८) भट्टी में कम पका हुआ घड़ा (सेवर घड़ा) पानी के संयोग से बहुत जल्दी फट जाता है, परन्तु पक्का जल्दी

मरते भी नहीं। वैसे ही जो बालक बालिकायें ज़्यादा उम्र में ब्याही जाती हैं और गर्भाधान के समय स्त्री की १६ व पुरुष की २५ वर्ष की आयु होती है और जो धर्म-नियमों के अनुसार चलते हैं, वे निस्संदेह सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं ऐसा भीष्म पितामह का सिद्धान्त है। परन्तु अकाल ही में माता-पिता बने हुए अकाल ही में यमपुर सिधारते हैं।

(३) घास की अग्नि जैसी जल्दी बढ़ती है वैसी ही जल्दी बुझ भी जाती है और खैर, आम, इमली की अग्नि जल्दी नहीं बढ़ती और इस कारण जल्दी बुझती भी नहीं। "जो जल्दी बढ़ता है सो जल्दी गिरता भी है" यही प्रकृति का नियम है।

(४) आम को जब बौर आती है तो उसमें से बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। फिर छोटे छोटे फल (अमियां) लगती हैं फिर आंवले जैसे बड़े होते हैं तिसमें से भी बहुत कुछ नष्ट होते हैं। जब वे और भी पुष्ट होते हैं तब कहीं वे आख़िर तक उस पेड़ पर स्थिर रह सकते हैं। वैसेही जो बालक-बालिकाएँ बचपन ही में ब्याहे जाते हैं उनमें से बहुत मर जाते हैं, जिसका अनुभव आज प्रत्यक्ष हम आप कर रहे हैं, और जो पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन कर गृहस्थाश्रम में विधिपूर्वक प्रवेश करते हैं वे ही केवल सौ वर्ष तक जीवित रहकर जीवन का पूर्ण आनन्द लूटते हैं।

(५) कच्ची कलियां तोड़ने से पुष्पों की महक मारी जाती है। उनमें सुगन्धि नहीं मिल सकती। कच्चे फल स्पर्शन,

कसैले और रोगकारी होते हैं। कच्चा भोजन पेट में अनेक रोग पैदा करता है वैसे ही कच्चेपन में विवाह करने और वीर्य को नष्ट करने से अर्थात् अपक्व वीर्यपात से नपुंसकता, दुर्बलता, क्षय, प्रमेहादि भीषण रोग उत्पन्न होते हैं, जो उस व्यक्ति को अकाल ही में मृत्यु की गोद में पहुँचाने में पूर्ण सहायक बनते हैं।

(६) कच्चा बीज कोई भी किसान खेत में नहीं बो सकता क्योंकि उससे खेती का और बीज वाले मालिक दोनों का नाश होता है। किसान लोग खेत में बोने वाले बीज को प्राण के तुल्य सम्भाल कर रखते हैं। यदि कभी भूखे भी रहना पड़े तो कुछ परवाह नहीं करते परन्तु उस बीज को ऋतुकाल (फसल) तक हाथ नहीं लगाते। वैसे ही मनुष्य को भी अपने वीर्यरूपी बीज को पचीस वर्ष तक पूरे तौर से सम्हालना चाहिए और बहु-मैथुनसे सर्वथा बचे रहना चाहिये। "जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे" यह ध्यान में रक्खो।

(कच्चे भुट्टों में या कच्चे काठ में घुन जल्दी लग जाता है और पक्के में बिल्कुल नहीं लगता। वैसे ही बचपन में वीर्य को नष्ट करने वाले। जब गांव में कोई रोग फैलता है तब सब से पहले कालके शिकार बनते हैं, वैसे २५ वर्ष वाले ब्रह्मचारी शिकार नहीं बनते। यथार्थ में ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्य नाश ही मृत्यु है)।

(८) भट्टी में कम पका हुआ घड़ा (सेवर घड़ा) पानी के संयोग से बहुत जल्दी फट जाता है, परन्तु पक्का जल्दी

नहीं फलता वैसे ही कच्चे वीर्य का पुरुष स्त्री संयोग से अथवा अनुचित वीर्यपात से जल्दी ही नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

प्रकृति के इन आठ प्रमाणों से आपने अब भली भांति समझ लिया होगा कि "बाल-विवाह प्रत्यक्ष काल विवाह ही है।" "विद्यार्थी ब्रह्मचारी स्यात्।" अर्थात् सच्चा विद्यार्थी वह ही है जो ब्रह्मचारी है। वह किसी बात में असफल नहीं होता क्योंकि उसकी बुद्धि, प्रतिभा, विचार-शक्ति स्मरण शक्ति आदि, सभी शक्तियाँ तीव्र होती हैं। वीर्य भ्रष्ट विद्यार्थी ज्ञानप्राप्ति में पूर्ण असफल सिद्ध होता है। हा ! जिस देश में विद्यार्थी-अवस्था ही में—बचपन ही में—ब्रह्मचर्य का नाश किया जाता है, लड़के को तैरना सीखने के पहले ही जो माता-पिता उस बेचारे के गले में स्त्री रूपी पत्थर बांधकर उसे दुस्तर संसार-सागर में ढकेल देते हैं, उस देश की उन्नति कैसे हो सकती है ?

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः॥

श्री महात्मा स्कन्द कहते हैं:—जो पुरुष धन के अथवा दहेज के लालचसे अपनी अबोध कन्या किसी वृद्ध को—खूसट बुड्ढे को, नीच को, दुराचारी को, कुरूप को, अर्थात् अन्धे, लंगड़े लूले, कुबड़े, रोगी, कोढ़ी, अपाहिज—इनमें से किसी को अथवा दुर्गुणी, दुर्व्यसनी को यदि ब्याह दे तो वह मरने के

वाद नीच पिशाच योनि में बराबर जन्म लेता है, और अपने नीच कर्मों के नीच फल भोगता है।

बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह आदि दुष्ट-विवाहों की कुप्रथायें उठा देने ही से देश में ब्रह्मचारी बालक-बालिकायें उत्पन्न होसकती हैं और उनकी बागडोर केवल माता-पिताओं ही के हाथ में है! अतएव ऐ माता-पिताओ! अब विवेक से काम लो लकीर के फकीर मत बनो। धर्म के तथा प्रकृति के नियमानुसार चलकर पुण्य के भागी बनो और कुल तथा देश का उद्धार करो!

सद्गुण ही सुख है।

जीव मात्र सुख की इच्छा करते हैं परन्तु वे सुख को नहीं प्राप्त कर सकते, कारण सुख का सत्य मार्ग धारण करने वाले विरले ही आत्मा सुख के स्वामी बन सकते हैं। "सुख" का सच्चा उपाय सद्गुण है और दुःखों का मूल कारण दुर्गुण है, इसको जानते हुए भी अपन कई दुर्गुणों का त्याग नहीं कर सकते इसी कायरता से अनन्त काल से दुःख भोग रहे हैं! जो महापुरुष सकल दुर्गुणोंका त्याग करदेते हैं वे अजर अमर, अविनाशी, अनन्त आत्मिक सुखके स्वामी—सिद्ध (परमात्मा) बनते हैं। इसी को मोक्ष कहते हैं। जितने जितने अंश से दुर्गुण छूटते जाते हैं उतने अंश में मुक्ति का सुख यहां पर ही अनुभव होता है। मुख्य दुर्गुण ये हैं—१-हिंसा, २-झूठ, ३-चोरी, ४-मैथुन, ५-ममत्व, ६-क्रोध, ७-गर्व, ८-कपट, ९-तृष्णा, १०-प्रमाद, ११-ईर्षा, १२-निन्दा, १३-राग, १४-द्वेष १५-मोह, १६-अज्ञान, १७-कलह, १८-कुविचार आदि। इन दुर्गुणों का नाश होते ही दुःखों का नाश होता है। दुर्गुणों का त्याग करने योग्य एक मनुष्य भव ही है, इसलिये इसको सबसे श्रेष्ठ कहा है।

परम कल्याणकारी मनुष्य-भव को पाकर अपन भी जगत् के अनन्त जीवों में श्रेष्ठ माने गये हैं। देखो, असंख्य पशु

पत्ती, कीड़े आदि दिखाई देते हैं। ये सब मनुष्य से नीचे की पंक्ति के हैं। अपन किस बात से श्रेष्ठ हैं? यह प्रश्न बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है। मनुष्य श्रेष्ठ इसीलिए है कि वह अपने जीवन को परम पवित्र बना सकता है। जब कि दूसरे प्राणियों में इतनी बुद्धि, शक्ति व संयम नहीं प्रकट हो सकता कि वे स्वयं अपने जीवन को परम पवित्र बना सकें। मनुष्य की शक्ति यदि पवित्र मार्ग में लगाई जाय तो वह देव व परमात्मा बन सकता है। इसी प्रकार यदि मनुष्य की शक्ति कुमार्ग में लगाई जाय तो वह नर पिशाच और नारकी बन सकता है। मनुष्य शक्ति से चाहे स्वर्ग और मोक्ष का अनन्त सुख सम्पादन करलो चाहे नरक के अनन्त दुःख एकत्रित करलो।

यह पुस्तक खासकर विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है। इसलिये अन्य दिशाओं को छोड़कर केवल विद्यार्थी जीवन पर ही विचार करें।

प्रिय विद्यार्थियो! आप आशा के घर हैं। आपके द्वारा समाज की गुप्त आशाओं को हमें पूर्ण करना है। आप हमारे जीवन हैं। जाति, देश और धर्म आप ही के कारण उन्नति पा सकते हैं। जैसे निरोग बीज से वृक्ष निरोग रह सकता है और उत्तम फल दे सकता है वैसे ही आपके आरोग्य पर जगत् के आरोग्य का आधार है।

जैसे शरीर में आंखें तेजमय हैं वैसे ही समाज शरीर में आप चक्षुभूत हैं। हम चक्षु की रक्षा इसीलिये करते हैं कि,

चक्षु शरीर भर का रक्षक है। चक्षु का नाश शरीर को बड़ा दुःखरूप होता है। आप यदि अपने ही उद्धार में सफल हुए तो समाज और देश का उद्धार दूर नहीं। आप समाज के भावी नेता हैं। आप ही देश के भविष्य के विधाता हैं। आप की उन्नति हो यही भावना है। यदि उन्नति-सुख व श्रेय की अभिलाषा है तो निम्न गुणों को धारण करें।

(१) सत्य—जगत में सर्वोत्कृष्ट सद्गुण है, सत्य ही आत्मा का शुद्ध स्वरूप है, परमात्म पद देने वाला है, सत्य से सब व्यवहार चलते हैं, सत्य से ही मनुष्य विश्वास पात्र बन सकता है; सत्यवादी सदा निर्भय, आनन्दी और विजयी बनता है। आज सत्य की कमी होने से भारत की प्रजा सुख शान्ति व उन्नति हीन हो रही है। सब प्रकार के व्यापार परदेशियों के हाथ में जा रहे हैं। भाई भाई का विश्वास नहीं करता। सत्य के अभाव में झूठ, कपट, दंभ, ईर्षा, और कलह उत्पन्न होकर समाजरूपी शरीर सड़ रहा है, इस दुर्दशा को देख प्रिय पाठक! आज से परम सुखदायी, इस लोक और परलोक में उन्नति,आनन्द और समृद्धि देने वाला सत्यव्रत धारण करें। "सत्यमेव जयते"।

(२) शील—दूसरा सद्गुण है शील, इसका अर्थ है ब्रह्मचर्य स्थिरता इसके धारे बिना मनुष्य पशु से भी हीन है। कारण पशु घास खाकर दूध देते हैं। आठ आने का घास खाकर एक रुपये की मजूरी कर देते हैं। हड्डी, चमड़ा, केश और सींग देकर मरने के पश्चात् भी जगत् का हित कर जाते हैं, परन्तु

मनुष्य तो बिना सच्चरित्र के माल मसाले खाकर जंगल बिगाड़ता है। अनेक ग़रीब मनुष्य व पशुओं की मिहनत का फल स्वयं भोगकर कृतघ्नी बनता है। देखिये, हज़ारों पशु एक साथ चारा चरते हैं परन्तु दो व्यापारी बिना ईर्षा के नहीं रहते। पशु पक्षी ज़रूरत जितना खाकर छोड़ देते हैं; पर मनुष्य तो दुनियाँ की सम्पत्ति अपनी करना चाहते हैं और इसके लिये अनेक अन्याय भी करते हैं। मनुष्य देह यदि सत्कर्म करे तो परमात्म-पद की प्राप्तिका साधन है और दुष्कर्म करे तो अनन्त दुर्गति का कारण है। वस्तुमात्र के दो उपयोग हैं—एक भला, दूसरा बुरा। मनुष्य देह से भले काम कर लेना ही सुख का उपाय है। सच्चरित्रवान यहां पर आन्तरिक अनुपम सुख का अनुभव करता है और दुष्कर्म वाले का हृदय सदा अन्दर पीड़ा पाया करता है। परोपकारी पुरुष निर्भयता से मध्यरात्रि को मैदान में सोते हैं और सर्वत्र घूम सकते हैं; परन्तु स्वार्थी और अन्यायी लोग मध्याह्न को भी आते जाते शस्त्रबद्ध रक्षकों को साथ रखते हैं। इस प्रकार भोगी, लोभी, स्वार्थी मनुष्यों को सदा चिन्ता, भय शोक, गर्व, तृष्णा और कलह से इस लोक दुःखी और परलोक में नरक गति के अनन्त दुःखों के स्वामी होते देखकर हे प्रिय बन्धुओ! क्या आप आज से सब विलास, ऐश आराम, फ़िज़ूलख़र्च, अत्याचार और तृष्णा को छोड़कर सच्चरित्रवान् बनने का व्रत धारण नहीं करेंगे? मुझे विश्वास है कि बुद्धिमान पाठक अवश्य धारण करेंगे।

(३) ज्ञान—मनुष्य और दूसरे जीव समूह में अन्तर है तो मुख्यता से मनुष्य में ज्ञानशक्ति ज्यादा है, मनुष्य ज्ञान बल से दुस्साध्य कामों को भी सुख साध्य बना लेता है। ज्ञान की प्राप्ति करना परम आवश्यक है। ज्ञान के कई प्रकार हैं, भाषा ज्ञान, कला ज्ञान, आरोग्य विद्याज्ञान और तत्वज्ञान आदि। आज बी० ए०, एम० ए०, एल० एल० बी०, एडवोकेट, एम० बी० बी० एस०, आदि पदवी का मोह बढ़ रहा है। इन सब प्रकार की पढ़ाई का हेतु खूब धन कमाकर मौज शौक करना प्रायः होता है। इसी से वकील बनकर देश में झगड़े बढ़ाये, डाक्टर बनकर विदेशी करोड़ों रुपयों की औषध और अनेक बीमारियों की आपत्ति बढ़ाई। इस प्रकार भारत के सन्तान देशोद्धार के स्थान देश दरिद्रता के साधक बने। यदि शिक्षित वर्ग अन्य उद्योग से आजीविका करके वकील झगड़े मिटावें, करोड़ों रुपये कोर्टों में नष्ट न होने देवें, और डाक्टर लोग

शरीर की सब नाड़ियों से है। यदि मन में भय उत्पन्न हो तो सारे शरीर में उसका असर पहुँचाती है, कई बार तीव्र भय के प्रसंग में मूर्छा आदि का आना इसी मनोवाहिनी नाड़ी का सारे शरीरमें असर होनेसे होता है। यदि मनप्रसन्न हो तो सारे शरीरमें प्रसन्नताका प्रभाव दीखता है। भावना गुणोंकी करे तो गुणरूप बनते हैं, और दोषों की करें तो दोष रूप। इसलिए किसी के दोष देखने से हम दोषी और गुण देखने से गुणी बनते हैं ऐसा कहा गया है। यदि खुद के दोषों को कहकर पश्चाताप करें तो यह त्याग रूप भावना है। इसका फल निज के दोषों का नाश है। जो मनुष्य विषय भोग के विचार करते हैं पुरुष होकर सुन्दर स्त्रियों के संयोग और स्त्री होकर पुरुष संयोग की चाह करने वाले मनसे व्यभिचारी रूप देखने वाले दृष्टि व्यभिचारी, शरीर छूने वाले व्यभिचारी, और संयोग करने वाले दुराचारी, (काय व्यभिचारी) बनते हैं। यह सब दोष मनोविकारसे पैदा होते हैं। अतः मनमें विषय जगते ही उसको दूसरे काम में लगा देना चाहिए। विषयेच्छा पैदा होने का कारण रूप देखना है। अतः सदैव दृष्टि नीची रक्खें और ऐसे संयोग से बचते रहें। तथा हमेशा "अनन्त दुःख हेतु विषयेच्छा नाश हो" "अनन्त सुख हेतु विषय संयम प्रकट हो" ऐसी भावना करें। विषय जगते ही उत्तम वाँचन, मनन, सत्संग व उद्योग का अवलम्बन लेवें, एकान्त त्याग करें तो वह मनुष्य शुद्ध रह सकता है।

प्रत्येक कार्य में उत्तम भावना करने से अतुल फल होता है, बिना भावना के फल जघन्य होता है और भावना से वह उत्कृष्ट बनता है। जैसे औषध को पुट लगाने से उसमें हजारों गुणा गुण बढ़ जाता है। भावना के कुछ नमूने—(१) प्रातः काल में जल्दी उठकर—हे प्रभु! मुझमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख

जाती हैं और शुभ कर्मों से, सदुद्योग से, सम्पूर्ण दैवी शक्तियाँ एक एक करके प्रकट होने लगती हैं। और इसी जन्म में मनुष्य के जीवन का प्रचण्ड विकास हो, उसकी कीर्ति सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है। निरुद्योगी अर्थात् आलसी पुरुष इस जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। एकमात्र सदुद्योगी ही ब्रह्मचर्य को धारण कर सकता है। आलसी पुरुष जीते जी ही मुर्दा बन जाता है। आलसी पुरुष सदा सर्वदा पापी बना रहता है। संक्षेपतः उद्योग ही जीवन है, और आलस्य ही मरण है, उद्योग ही पुण्य है और आलस्य ही पाप है, नरक है। अतः जिन्हें पुण्यवान्, भाग्यवान् कीर्तिवान् और वीर्यवान महापुरुष बनना हो, उन्हें परमावश्यक है कि वे सदा, सर्वदा शुभ कर्मों ही में फँसे रहें। जब कभी कुकर्म की ओर मन जाय तब "तत्काल" कोई अच्छी किताब पढ़ने अथवा इस ग्रन्थ के उन्हीं नियमों को पढ़ने व कोई अच्छा काम करने या भगवान् का ज़ोर से नाम स्मरण करने लगें व कोई अच्छा भजन गाने लग जायँ। निस्सन्देह तुम्हारी नीच वासनायें दब जायँगी और पवित्र वासनाओं का उदय होगा। किंवा उस स्थान से हटकर तत्काल सन्मित्रों में आकर बैठने से और कोई अच्छा विषय छेड़ देने से हमें पूर्ण विश्वास है कि, तुम साफ़ बच जाओगे। अतः वीर्य रक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति को आलस्य पर लात मार सदुद्योगी अवश्य ही बनना होगा। क्योंकि आलसी पुरुष को कामदेव पटक पटक कर मारता है। यदि हम सतत शुभ उद्योगी न बनेंगे तो आलस्यही हमको लात मारकर मिट्टी में मिला देगा, यह पूर्ण निश्चय जानो। अतः ब्रह्मचारी को सदैव शुभ कर्मोंमें ही डूबे रहना चाहिए। हाथपर हाथ रखकर निठल्ले बैठने में कुछ विश्रान्ति नहीं है। सच्ची विश्रान्ति काम को बदल बदल कर करने में अर्थात् भिन्न भिन्न कार्य करने ही में है।"

९-सादगी—सुखी व स्वतन्त्र बनना हो तो सादगी धारण करो। विदेशी चीजों के उपयोग से विलास, हिंसा, निर्धनता, आलस्य और परतन्त्रता प्राप्त होती है। जो देश विदेशों की तैयार चीजें खरीदता है वह शीघ्र दरिद्र बनता है और यही दशा भारत की है। सारे देश के मनुष्यों की आय एकत्र करके एक मनुष्य की औसत (एवरेज) आय निकालिये। अमेरिका निवासी की वार्षिक आय ३३२८ रुपये, इंगलैंडवासी की १४५६ रुपये, फ्रान्सवासी की १२६२ रुपये और भारत वासी की वार्षिक आय केवल तीस रुपया है जिसमें प्रतिमास लाखों रुपये के फिजूल खर्च करने वाले राजा, महाराजा और सेठ भी आगये। यहां पर यह प्रश्न होता है कि भारतवासियों की आय क्यों कम है? उत्तर एक ही है कि, भारत अपना कच्चा माल—रुई, धान्य, अलसी, किरियाएं, काष्ठिक औषधियाँ विदेश को देता है और वे ही चीजें (पका माल) तैयार करके दशगुनी बीस गुनी और कई स्थान पर सौगुनी कीमत देकर खुशीसे खरीदता है; जैसे कपड़ा,कटलरी,आदि। इसको विदेशी लूट कहते हैं। देश के हितचिन्तक नेता लोग कहते हैं कि विदेशी लूट को सादगी, संयम और उद्योग से रोकोगे तो दुःखों से छुटकारा हो सकेगा। आपको यदि निर्धनता, परतन्त्रता और दीनता के दुःखों से बचना है तो आवश्यकताएँ घटाओ, संयमी बनकर औरों को यही उपदेश दो।

१०-विनय—से सकल गुणों का विकाश होता है जिस प्रकार हाथ की अंगुलियां सीधी रहें तो एक सुई भी नहीं उठ सकती और विधि पूर्वक नवाई जावें तो कई मन वजन उठा सकती हैं। विना विनय के विद्या, बल, बुद्धि, और ऐश्वर्य का लाभ नहीं होता अतः सदा विनय गुण धारण करना चाहिए। अभिमानी को शत्रुता बहुत होती है और विनयी को मित्रता। अभिमानी

बहुत खर्च करके दरिद्र बन जाता है, कई कामों में निष्फलता प्राप्त करता है अतः हमेशा अहंकार को छोड़ विनयी बनो।

११–एकता—से ही शक्ति प्राप्त होती है। कुसंग से विनाश होता है। हमेशा अपने दोषों को देखकर उन्हें दूर करो। दूसरों के दोषों की निन्दा मत करो, उन्हें सप्रेम कहो, न सुधरे तो उनके सुधार के ऐसे संयोग प्राप्त कराओ।

१२–अक्रोध—हरएक काम में श्रद्धा पुरुषार्थ और बुद्धि का उपयोग करो यही विजय की तीन कुंजियाँ हैं। क्रोध न करके क्षमा और प्रेमसे काम लो, निर्बल और कायर मनुष्य ही क्रोध करते हैं। क्रोध से अमृत भोजन विषरूप हो जाता है, सुधरे हुए काम बिगड़ जाते हैं, खून सूखता है, ज्ञान का नाश होता है। यह भाव अग्नि ज्यादा बढ़े तो सब गुण समूह को जलाकर नाश कर देता है इसलिये क्षमावान् बनो। "क्षमा वीरस्य भूषणम्"।

१३–ब्रह्मचर्य—शास्त्रकार यहांतक कहते हैं कि "सब तपमें उत्तम तप ब्रह्मचर्य है" कारण तप का अर्थ "इच्छाओं का संयम" है। जिसने विषयेच्छा सर्वथा रोक ली वह संसार समुद्र तिर गया। इस लोक में आरोग्य, बल, बुद्धि, विज्ञान, सुख, शान्ति, निर्भयता, परमानंद उच्चता, कीर्ति आदि देने वाला और परलोक में स्वर्ग व मोक्ष देने वाला ब्रह्मचर्य गुण अवश्य हमें धारण करना चाहिये।

इस प्रकार गुणों को धारण करने से परमसुख यहीं पर ही प्रकट होता है। गुणों की प्राप्ति करना कडुवी औषधि के तुल्य दुष्कर है, परन्तु फल में दुःख नाश का अनुपम आनन्द मिलता है। सब जीव अज्ञान, मिथ्यात्व औरदुश्चरित्र से छूटकर सत्यज्ञान, सुश्रद्धा और सच्चरित्रको प्राप्तकरें यही अंतिम भावनाहै।

जैन पुस्तक माला और सुख साधन ग्रंथ माला की

सस्ती और उपयोगी पुस्तकें

इन दोनों मालाओं की पुस्तकों में महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला जाता है। इनके पढ़ने से मनुष्य जीवन की बहुत सी कठिनाइयां दूर करके, शान्ति मार्ग पर आ सकते हैं। आत्मोन्नति के इच्छुकों के लिए इन मालाओं की पुस्तकें अमूल्य रत्न होती हैं। इन की बिक्री का कुल मूल्य नई पुस्तकों के प्रकाशित करने में ही लगाया जाता है। और मूल्य भी अन्य प्रकाशकों से आधा अर्थात् लगभग लागत मात्र रक्खा जाता है।

दो पैसे ३५ का १) सै० २॥)

१—जैनधर्म क्या है ?
२—जैन दर्शन जैनधर्म
३—जैनधर्म की विशेषताएं
४—मुक्ति का स्वरूप
५—जैन दर्शन
६—बड़े बड़े अंकों की आनुपूर्वी
७—पचीस बोल का थोकड़ा
८—सर्व मान्य धर्म
९—श्री रत्नाकर पचीसी
१०—वैदिक धर्म जैन धर्म
११—हम जैनी कैसे हुए ?

तीन पैसे २४ का १) सै० ४)

१—मार्गानुसारी के ३५ गुण
२—जैन सिद्धान्त
३—वैराग्य शतक
४—वीर की विशेषताएं

एक आना १८ का १) सै० ५)

१—भारत का प्राचीन धर्म
२—जैनधर्म पर विद्वानों की सम्मतियां भाग १ व २

डेढ़आना १) की १२ सै० ७॥)

१—स्याद्वाद की सार्थकता पृष्ठ १००
२—नारी धर्म पृष्ठ ६०
३—विद्यार्थी भावना पृष्ठ ५०

दो आना ६ का १) सै० १०)

१—नित्य पाठ संग्रह पृष्ठ १००
२—हितोपदेश रत्नावली

भिन्न भिन्न मूल्य की पुस्तकें

१—जैनधर्म ≈)
२—आत्म जागृति भावना ≈)
३—नूल्यवान मोती पृष्ठ १२० ≈)॥
विधवा सती का चरित्र
४—श्रावक धर्म दर्पण पृष्ठ ४०० ॥—)
५—कर्त्तव्य कौमुदी पृष्ठ ४०० २)

इनकी प्रभावना कर पुण्य व यश कमाइये, स्वयं पढ़कर ज्ञानामृत पीजिये।

जैन पुस्तक प्रकाशक व जैन जागृति कार्यालय मु० ब्यावर (राजपूताना)

सुख का साधन

इस लोक और परलोक में सकल सुखों की प्राप्ति ज्ञान से होती है। जैन-" पुस्तक-प्रकाशक कार्यालय " ब्यावर १४ साल से नैतिक धार्मिक व तात्विकज्ञान की उत्तम पुस्तकों का देश-देशान्तर में अल्प मूल्य पर अनेक दातारों की द्रव्य सहायता से प्रचार कर रहा है।

ज्ञान प्रचार करना हरएक मनुष्य के लिए, अपने निज के हित के लिए परम आवश्यक है, ज्ञान-प्रचार के काम से निर्मल कीर्ति और बहुत पुण्य प्राप्त होता है। ऐसा जान कर प्राप्त धन का सदुपयोग उत्तमोत्तम पुस्तकों के प्रकाशित कराने में सहायता देकर कीर्ति अमर करने का यह साधन या शोक पुस्तकें मंगाकर प्रभावना करने में करें। सहायदाताओं के शुभ नाम प्रत्येक पुस्तक पर छपते रहते हैं।

" जैन जागृति " मासिक पत्रिका

प्रति अङ्क सौ पृष्ट वार्षिक २)

इसमें नीचे लिखे विषय रहेंगे ज्ञान ज्योति, सिद्धान्त संग्रह, अजैन विद्वानों की दृष्टि में जैन धर्म, समाधान, जैन जीवन, मुनि दर्शन, विज्ञान व जैन धर्म, समाज सुधार, आदर्श चरित्र, आरोग्य साधन, सादगी ही सुख, समाचार पत्रों का सार, व्यापार, देश विदेश समाचार, जैन समाचार, दयामय दुनियां, मनोरंजन आदि बड़े २ विद्वानों ने स्थाई लेखक होना स्वीकार किया है। ग्राहक संख्या तेजी से बढ़ रही है। केवल ६०० सौ ग्राहकों को ३०० पृष्ट के ग्रंथ भेट किये जावेंगे और ग्राहक बनाने व बनने तथा धन की सहायता देने व दिलाने वालों के शुभ नाम पत्र में छपेंगे।

२०१) रु० व इससे विशेष सहायदाताओं के चित्र भी पत्र में छपते रहेंगे।

छपने को तयार रखी हुई पुस्तकें द्रव्य सहायता देकर प्रकाशित करावें। १—जैन धर्म अन्य धर्मों से क्यों श्रेष्ठ है, २—जैन दर्शन में कर्मवाद, ३—जैन दर्शन में ज्ञान मीमांसा, ४—जैन दर्शन में साम्यवाद, ५—स्याद्वाद [illegible]

[illegible] सिद्धि, ८—[illegible] रहस्य, ९—वीर की [illegible], १०—[illegible] वीर की कथाएँ, ११—जैन और [illegible], १२ स्वामी दयानन्द और जैन संस्कृति, १३—पवित्र जीवन का परिचय, १४—भावना [illegible] इत्यादि। [illegible]

केवल सेवा भाव से प्रकाशित होती हुई

उत्तम पुस्तकें मालाएँ व पत्र

१—जैन पुस्तक प्रकाशक कार्यालय। इसमें साम्प्रदायिक पक्षपात को छोड़ कर छोटी बड़ी लगभग ४० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पता—मैनेजर श्रीमोतीलालजी रांका, ब्यावर।

२—शेठिया जैन पुस्तकालय। अनेक पुस्तकें निकल चुकी हैं। पता-श्रीअगरचन्दजी भैंरूंदानजी शेठिया, बीकानेर

३—सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल अजमेर। इसमें दो पुस्तक मालाएँ, सामाजिक व नैतिक सुधार की चार साल से निकल रही हैं मूल्य दोनों मालाओं का ८)रुपये पोष्टेज सहित।

४—त्याग भूमि मासिक पत्रिका अजमेर पृष्ठ १२० मूल्य रु० ४) लागत से भी अल्प अनेक उत्तम लेखों और सात्विक का भंडार स्वरूप है। सम्पादक हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक श्री हरिभाऊ उपाध्याय जी हैं।

५—आत्म जागृति कार्यालय—जैन शिक्षा भाग १ से ५ (पाठ्य पुस्तकें) मूल्य -)॥ =) =)॥ ≡) ≡)॥ आत्म बोध भाग १, २, ३, मूल्य ।=) आत्म जागृति भावना ≡) मोक्ष की कुंजी भा० १ =) भा० २ ≡) बालगीत -)॥ भाव अनुपूर्वि -) सब पुस्तकें नीति व तत्वज्ञान से भरपूर हैं लागत से भी प्रायः मूल्य कम रक्खा गया है। पता—जैन गुरुकुल, ब्यावर।

६—जैन प्रकाश—हिन्दी गुजराती संयुक्त साप्ताहिक पत्र वार्षिक मूल्य २॥) रु०।पता—१७० कांदावाड़ी बम्बई (४)

७—जैन पथ प्रदर्शक—हिन्दी साप्ताहिक पत्र वार्षिक उपहार के अनेकों ग्रन्थ सहित ४) रु० पता—
जैन-पथ प्रदर्शक जौहरी बाजार, आगरा।